वैदिकपुस्तकमाला—प्रथम पुष्प

ऋग्वेदसंहिता

[हिन्दी टीका-सहित]



रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी-टीका-सहित)

प्रथम अष्टक

प्रेमोपहार

ऋग्वेद-संहिता

(सरल हिन्दी-टीका-सहित)

प्रथम अष्टक

टीकाकार

प० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

["दर्शनपरिचय", "हिन्दी-विष्णुपुराण", "राजर्षि प्रह्लाद", "महासती मदालसा" आदिके लेखक, "सेनापति", "विश्वदूत" आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के जन्मदाता, "दक्षिण अफ्रीकन सनातनधर्म-महामण्डल" (डरबन, नेटाल) के आजीवन सभापति, "गंगा" के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक]

—और—

प० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर तथा "गङ्गा" और "वैदिकपुस्तकमाला" के अन्यतम जन्मदाता और सम्पादक)

प्रकाशक

प० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ,

संचालक, "वैदिकपुस्तकमाला," कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर

मूल्य २) | आश्विन, १९८८ विक्रमीय | प्रथम बार ५०००



बनैली के अधिपति

कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर

समर्पण

जिन्होंने साहित्यिक दान-वीरता द्वारा अपने राज-वंशकी कीर्त्ति अक्षय की, जिन्होने एक लाख रुपये दान कर "गंगा" जैसी श्रेष्ठ हिन्दी पत्रिका और "वैदिकपुस्तक-माला" का जन्म दिया, जो संस्कृत और अंग्रेजीकी शिक्षाके लिये अनेक विद्यालय चला रहे हैं और जो सदाचार, साधुता, धार्मिकता तथा निरहंकारिताकी दिव्य मूर्त्ति हैं, उन

मैथिलब्राह्मण-कुलभास्कर, आदर्श राजकुमार

बनैलीराज्याधिपति

कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर

के

कमनीय कर-कमलोंमें

सादर समर्पित

—रामगोविन्द त्रिवेदी,
गौरीनाथ झा

वेदरहस्य

संस्कृतसाहित्यके किसी भी ग्रन्थका अर्थ-निर्णय करनेमें उतना विवाद नहीं है, जितना वेद-संहिता-ओंका अर्थ-निर्णय करनेमें। नैरुक्त, याज्ञिक, ब्रह्मवादी, स्वर-मुक्तिवादी, ऐतिहासिक, वेदान्त, परिव्राजक, नास्तिक आदि आदि कितने ही ऐसे दल हैं, जो वेदार्थके सम्बन्धमें विभिन्न मत रखते हैं। औपमन्यु, कौत्स, यास्क, स्कन्द स्वामी, रावण, सायण, भट्टभास्कर, वेङ्कट माधव, भरत स्वामी, महीधर, उव्वट, सत्यव्रत, दयानन्द, ए० सी० दास, तिलक, एस० पी० पण्डित, रमेशचन्द्र दत्त, राजेन्द्रलाल मित्र, लाहिड़ी, राथ, ग्रिफिथ, मैक्डानल, रेले, दाराशिकोह आदि दर्जनों वेदालोचकों और वेद-टीकाकारोंकी दर्जनों अर्थ-सम्बधिनी सम्मतियाँ हैं! कोई ब्राह्मण-ग्रन्थोंका अर्थ पसन्द करता है, कोई यास्कका, कोई उद्‌गीथभाष्यकी शैली पसन्द करता है, कोई सायणकी, किसीको राथकी अर्थ-मीमांसा अभीष्ट है, किसीको रेलेकी, कोई दयानन्दकी आलोचनाका अनुधावन करता है, कोई कीथकी। वेदके एक-एक शब्दके अनेकानेक अर्थ किये जाते हैं—और ये अर्थ करनेवाले साधारण जन नहीं, ब्राह्मण-ग्रन्थ, यास्क, सायण आदि जैसे हैं। इन्द्रका अर्थ देव, ईश्वर, ज्ञान और बिजली तक किया जाता है और वृत्रका अर्थ असुर, दैत्यराज, अज्ञान और मेघतक! अनेक वेदाभ्यासी तो यह भी कहते हैं कि, "वेदके हजारों शब्दोंका आजतक अर्थ ही नहीं लगा!" ऐसी दशामें हमारे जैसे अल्पज्ञोंके लिये वेदार्थका निर्णय करना दुस्साध्य कार्य है।

यद्यपि भारतवर्षके अधिकांश वेदानुयायी सायणके मतका ही अनुधावन करते हैं, तथापि सायण-विरोधियोंकी संख्या भी नगण्य नहीं है। पाश्चात्य विद्वानोंमें तो सायणके कट्टरसे कट्टर द्रोही हैं; और, हो गये हैं। विलायती पण्डितोंमें "Los Von Sayan" (सायणका बहिष्कार करो) की आवाज कई बार उठायी गयी है। सम्पूर्ण सायण-भाष्य प्रकाशित करनेवाले स्वयं मैक्समूलरने सायणको "Blind man's stick" (अन्धेको लकड़ी) कहा है। वैदिक कोष लिखनेवाले राथ और ग्रासमानका सायण-द्रोह तो सर्वोपरि है ही। यह सब कुछ हैं; परन्तु कई ऐसे कारण हैं, जिनसे सायणके अर्थका अनुगमन करना बुरा नहीं कहा जा सकता। कारणोंको पढ़िये—

(१) वेदार्थ निर्णय करनेमें सायणने आर्य-जातिको प्राचीन धार्मिक और सामाजिक परम्पराका अनुगमन किया है।

(२) सायणने अपने विहित अर्थको, अधिकांश स्थलोंमें, वैदिकसंहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, निरुक्त, प्रातिशाख्य, बृहद्देवता, पाणिनीय व्याकरण एवं अन्यान्य संस्कृत-ग्रन्थों और आर्यजातिके प्राचीन इतिहासों तथा आचार-विचारोंसे समर्थित रखा है।

(३) ऋग्वेदकी प्राचीन टीकाओं—स्कन्द स्वामीके भाष्य, वेङ्कट माधवके भाष्य और उद्‌गीथ भाष्य—के अनुकूल ही सायणका भाष्य है।

(४) संसारकी भाषाओंमें वेदके सम्बन्धमें जितनी पुस्तकें निकली हैं, उनके अधिकांश प्रणेता सायणानुयायी हैं।

(५) सायणके सिवा सम्पूर्ण ऋग्वेदसंहितापर किसीका भी भाष्य या अर्थ सुलभ नहीं है, न था; इसलिये सायण न रहते, तो कदाचित् ऋग्वेदसंहिताका भाषान्तरानुवाद असाध्य कार्य हो पड़ता। यदि सायण न ीं रहते, तो कदाचित् रोठरावार्यकी "पीटर्सबर्ग डिक्शनरी" (St. Petersburg Dictionary—by Roth and Boehtlingk, 7 vols. price Rs. 1000/–/–) भी अधूरी रहती। ग्रासमानके "ऋग्वेदिक कोष" की तो कौन कथा !

(६) भूतकालीन और वर्त्तमानकालीन—सभी सनातनधर्मावलम्बी विद्वान् सायण-भाष्यको आर्य-जातिकी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास और आचार-विचारके अनुकूल मानते हैं।

यहाँ यह लिख देना हम आवश्यक समझते हैं कि, हम भी सनातनधर्मावलम्बी हैं; इसलिये हम भी सायणके अर्थके ही अनुमोदक हैं। यद्यपि हम प्रकरण और युक्तिसे हीन सायण-भाष्यके अंश–विशेषको माननेके पक्षपाती नहीं हैं; परन्तु ऐसे अंश–विशेष नगण्य हैं। पहले अवश्य ही हमारा यह विचार था कि, अपने हिन्दी-अनुवादके साथ सायण-भाष्य, सायणके विरुद्धार्थवादियोंके पक्ष, उनका यथाशक्य निराकरण, स्वर, पद–पाठ, विशद हिन्दी-व्याख्या, शब्दोंकी व्युत्पत्ति आदि भी प्रत्येक मंत्रपर रखें; परन्तु यह कार्य अतीव श्रम-समय-साध्य था; और, ऐसा करनेसे इस पुस्तकका मूल्य इतना अधिक हो जाता कि, साधारण जनके लिये यह पुस्तक दुर्लभ हो रहती। इसलिये ऐसा व्यापार–वैशद्य करनेका हमने साहस नहीं किया और हमने केवल सायण-भाष्यका मथितार्थ लेकर सरल हिन्दीमें मंत्रोंका अनुवाद करना ही उचित समझा। ऐसा ही किया भी। इसी रूपमें ऋग्वेदसंहिताके आठ अष्टकोंमेंसे प्रथम अष्टक निकल रहा है। मंत्रोंपर यत्र तत्र आवश्यक टिप्पनियाँ भी दी गयी हैं। आगे भी ऐसा ही होगा।

इसके सिवा हम "वेद-रहस्य" नामका एक ऐसा ग्रन्थ लिखनेकी चेष्टामें भी हैं, जिसमें वेद–सम्बन्धिनी प्रत्येक ज्ञातव्य बातकी साङ्गोपाङ्ग आलोचना रहे और जिसमें सायण-मतका विस्तृत समीक्षण भी रहे। यह "वेद-रहस्य" प्रायः १००० पृष्ठोंका होगा। इसके अनेक अंश लिखे भी जा चुके हैं। यह ग्रन्थ जब कभी लिखकर तैयार हो जायगा, तभी प्रकाशित कर दिया जायगा—आदि, मध्य और अन्तकी कोई बात नहीं। "वेद-रहस्य" में जिन विषयोंपर आलोचना रहेगी, उनकी अत्यन्त संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

१ वेद क्या है ?
२ वेदके, मण्डल, अनुवाक, सूक्त और वर्ग
३ वेद और पद, क्रम, घन, जटा प्रभृति
४ वेदोक्त देवता, ऋषि, छन्द और विनियोग
५ वेद और प्रातिशाख्य, अनुक्रमणी तथा बृहद्देवता आदि
६ वेद और यास्क
७ वेदके प्राचीन टीकाकार
८ वेद और शब्द-विद्या
९ क्या वेद नित्य है ?
१० वेदकी नित्यता और हिन्दू-दर्शन
११ वेद-काल-निर्णय
१२ वेदार्थके अधिकारी
१३ वेदका शाखा-भेद
१४ यूरोपियनोंके वैदिक कोष और व्याकरण
१५ वेदपर यूरोपियनोंकी आलोचनाएँ
१६ सायण-भाष्यपर विविध मत
१७ सायण-भाष्यकी श्रेष्ठता
१८ वेदके आधुनिक टीकाकार
१९ क्या उपनिषद् और ब्राह्मण भी वेद हैं
२० वेद और वेदाङ्ग
११ वैदिक यज्ञ
२२ वेद और विज्ञान
२३ वैदिक धर्म
२४ वैदिक-देवतावाद
२५ वेदमें सोमरस
२६ वैदिक सभ्यता
२७ वेद और हिन्दू-समाज-व्यवस्था
२८ वेदमें जाति-विभाग
२९ वैदिक आचार-विचार
३० वेद-धर्म और अन्य धर्म

३१ वेद और ईश्वर
३२ वेद और सृष्टि
३३ वेद और बलि
३४ वेदमें इतिहास
३५ वेद और अवस्ता
३६ वेद और भूगोल
३७ वेद और गणित
३८ वेदमें प्राचीन आर्य-निवास
३९ संसारके प्रसिद्ध वेदज्ञ
४० वेदका यूरोपीय भाषाओंमें अनुवाद
४१ वैदिक साहित्यका विश्व-साहित्यपर प्रभाव
४२ विश्वकी भाषाओंमें वैदिक साहित्य
४३ वेद और समुद्रयात्रा
४४ वेद और स्वर्ग-नरक
४५ वेद और आर्यसमाज
४६ जैनियोंके वेद
४७ वेदपर अन्यान्य सम्प्रदायोंकी धारणा
४८ वेदके अप्राप्य ग्रन्थ
४९ वेदपर आधुनिक भारतीयोंका मत
५० वेदपर आधुनिक यूरोपियनोंका मत
५१ चार उपवेद
५२ तामिल वेद
आदि, आदि

आवश्यकतानुसार यह सूची घट-बढ़ और कट-छँट भी सकती है। हमारे द्वारा सम्पादित "गंगा" नामकी मासिक पत्रिकाके "वेदांक"में भी इस विषय-सूचीके अनेक विषय आ गये हैं।

अन्तमें हम बड़ी नम्रताके साथ इस ग्रन्थमें विद्यमान त्रुटियोंके लिये विद्वानोंसे क्षमा-याचना चाहते हैं। हम यह लिखना भी भूलना नहीं चाहते कि, साहित्याचार्य प० महेन्द्र मिश्र "मग"ने इस ग्रन्थका प्रूफ देखनेमें बहुत परिश्रम किया है। द्वितीय अष्टक भी छप रहा है।

कृष्णगढ़,
महालया, १९८८ विक्रमीय

रामगोविन्द त्रिवेदी,
गौरीनाथ झा

ऋग्वेद-सम्बन्धी उल्लेखनीय ग्रन्थ

जिन सज्जनोंको ऋग्वेदसंहिताके सम्बन्धमें अन्य अनुवाद, समालोचनाएँ आदि देखनेकी इच्छा हो, वे निम्न लिखित ग्रन्थ देख सकते हैं—

लेखकोंके नाम— विवरण—	मूल्य—
१ सायणाचार्य—संस्कृत-भाष्य। प्रो० मैक्समूलर और श्रीयुत पशुपति आनन्द गजपति द्वारा सम्पादित और प्रकाशित। सम्पूर्ण। (१८४९-७५) द्वितीय संस्करण। चार भाग। (१८९०-९२)	३००)
२ राजाराम शिवराम शास्त्री—सायण-भाष्य। सम्पूर्ण। (शकाब्द १८१०-१२)	१५०)
३ दुर्गादास लाहिड़ी—सायण-भाष्य। सम्पूर्ण। एक अष्टकका स्वतंत्र बँगला अनुवाद। १६ भाग। पद-पाठ-सहित। (१९२५)	२५१)
४ एफ० रोजन—यूरोपमें सर्व-प्रथम ऋग्वेदके प्रथम अष्टकका लैटिन भाषामें अनुवाद। (१८३८)	३।=)
५ अल्फ्रेड लुडविक—जर्मन अनुवाद। ६ भाग। सम्पूर्ण। (१८७६-८८)	२००)
६ एच० ग्रासमान—जर्मन-भाषामें पद्य-बद्ध अनूदित। दो भाग। रोमन-लिपि। सम्पूर्ण। (१८७६-७७)	३०)
७ हारमन ओल्डेनबर्ग—जर्मन अनुवाद। दो भाग। सम्पूर्ण। (१९०९-१२)	३५)
८ थ्युडर आउफरेस्ट—सम्पादित। दो भाग। रोमन-लिपि। सम्पूर्ण। (१८७७)	३५)
९ एस० ए० लांगलोआ—फ्रेंच अनुवाद। चार भाग। (१८४८)	२०)
१० एच० एच० विल्सन—अंग्रेजी अनुवाद। छ भाग। सम्पूर्ण। (१८५०-८८)	१२५)
११ टी० एच० ग्रिफिथ—अंग्रेजी-पद्यानुवाद। दो भाग। सम्पूर्ण। (१८८९-९२)	१४)
१२ विद्यानिधि प० सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव—केवल मराठी अनुवाद। सम्पूर्ण।	१२)
१३ कोल्हटकर और पटवर्धन—मराठी अनुवाद।	१०)
१४ रमेशचन्द्र दत्त—बँगला अनुवाद। दो भाग। सम्पूर्ण (१८८५-८७)	२०)
१५ महामहोपाध्याय प० आर्यमुनिजी—ऋग्वेद-भाष्य। सप्तम-भाग-रहित।	३७)
१६ एस० पी० पण्डित—तीन मण्डल तक। मराठी और अंग्रेजी।	७५)
१७ राथ और बोहट्लिङ्क—"पीटर्सबर्ग संस्कृत-जर्मन-महाकोष।" सात भाग। पृष्ठ १०००० (१८५५-७५)	१०००)
१८ एच० ग्रासमान—ऋग्वैदिक कोष। जर्मन भाषा। (१८७३-७५)	५०)
१९ हंसराज—वैदिक कोष।	१२)
२० मैकडानल—वैदिक ग्रामर। अंग्रेजी। (१९१०)	६)
२१ शौनक—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। उव्वट-भाष्यके साथ।	६)
२२ आर्नाल्ड—वैदिक मीटर (१९०५)	५)
२३ ए० वेबर—इण्डिस स्टडियम (पत्रिका)	६)
२४ शौनक—सर्वानुक्रमणी। संस्कृत। मैकडानल द्वारा प्रकाशित। वेदार्थ-दीपिका-सहित।	१६)
२५ शौनक—बृहद्देवता। मैकडानल द्वारा सटिप्पन प्रकाशित।	२५)
२६ शौनक—ऋग्विधान। रूडाल्फ मेयर द्वारा जर्मन भूमिकाके साथ प्रकाशित।	४)
२७ सी० वी० वैद्य—हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (वेदिक पीरियड)। अंग्रेजी। (१९३०)	१०)

२८ पी० पी० एस० शास्त्री—वैदिक-साहित्य-परिचय। संस्कृत। ३)

२९ ब्लूमफिल्ड—वैदिक कंकार्डेन्स। ११९ ग्रन्थोंके आधारपर यह "मंत्र-महासूची" बनायी गयी है। (१९०६) ६०)

३० मैकडानल और कीथ—वैदिक इण्डेक्स। १०)

३१ सायण—संस्कृत-भाष्य। ऐतरेय ब्राह्मण। (कलकत्ता) १८)

३२ सायण—संस्कृत-भाष्य। ऐतरेय ब्राह्मण। दो भाग (पूना) १०)

३३ सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेय ब्राह्मण। सायण-भाष्य-सहित। २०)

३४ थ्युडर आउफरेस्ट—ऐतरेय ब्राह्मण। सम्पादित। रोमन लिपि। (१८७९) १०)

३५ मार्टिन हाग—ऐतरेय ब्राह्मण। अंग्रेजी अनुवाद। दो भाग। सम्पूर्ण। (१८६३) ६)

३६ सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेयालोचन। (१८६२) ५)

३७ ए० बी० कीथ—ऋग्वेद-ब्राह्मण (ऐतरेय-कौषीतकीय)। अँग्रेजी अनुवाद। २२)

३८ सायण—संस्कृत-भाष्य। ऐतरेय आरण्यक। ५)

३९ लो० तिलक—आर्कटिक होम इन दि वेदाज। अंग्रेजी। ८॥)

४० लो० तिलक—ओरायन। अँग्रेजी और हिन्दी। ३), १)

४१ अविनाशचन्द्र दास—ऋग्वेदिक इण्डिया। अँग्रेजी। १२)

४२ डा० रेले—दि वेदिक गाड्स। अंग्रेजी। (१९३१) ६॥)

४३ ए० बरगेन—रिसर्चेज एबाउट ऋग्वेद। जर्मन भाषा। दो भाग। १२)

४४ लुइस रेनो बाइब्लोआग्राफिया वेदिका। नौ भाग। फ्रेंच भाषा। (१९३१) १२)

४५ वी० एस० घाटे—ऋग्वेदपर व्याख्यान। अँग्रेजी। ३)

४६ स्वामी दयानन्द—ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका। १॥)

४७ शिवराम आहिताग्नि—ऋग्वेद-सार-संग्रह। ३)

४८ वी० जी० बीजापुरकर—ऋक्-संग्रह। २)

४९ नरदेव शास्त्री—ऋग्वेदालोचन। १॥)

५० प० भगवद्दत्त—ऋग्वेदपर व्याख्यान। १)

५१ महेशचन्द्रराय तत्त्वनिधि—ऋग्वेदकी समालोचना। बँगला भाषा। ५)

इन ग्रन्थोंके मूल्यका ठिकाना नहीं रहता। कई ग्रन्थ तो अप्राप्य हो रहे हैं; परन्तु जो मिलते हैं, उनका मन-माना मूल्य प्रकाशक वसूल करते हैं।

ऋग्वेदपर के० एफ० गेल्डनर, अलफ्रेड हिलेब्रान्ड्ट, अडाल्फ कैगी, प्रिंस ओल्ड, पी० पिटर्सन, एमिल सेग, एड मेयर, ई० जे० टामस, जेड० ए० रैगोजिन, आर० वी० कुंटे, ए० सी० क्लेम, डबल्यू० कैलेण्ड, एम० विण्टर्निट्ज आदि आदिके भी आंशिक तथा खण्डित अनुवाद और समालोचना-ग्रन्थ हैं; परन्तु विस्तारके भयसे इनके ग्रन्थोंकी सूची यहाँ नहीं दी गयी।

उपर्युक्त पुस्तकें निम्न लिखित स्थानोंपर मिल सकती हैं:—

1. Otto Harrassowitz, Leipzig, Germany.
2. B. H. Blackwell Ltd. 50/51, Broad Street, Oxford, England.
3. The Oriental Book Agency. 15, Shukrawar, Poona.
4. The Sanskrit Book Depot, Said Mitha Bazar, Lahore.

ऋग्वेदके अष्टक, मण्डल आदि

मण्डलोंकी संख्या	अनुवाकोंकी संख्या	सूक्तोंकी संख्या	अष्टकोंकी संख्या	वर्गोंकी संख्या
१	२४	१९१	१	२६५
२	४	४३	२	२२१
३	५	६२	३	२२५
४	५	५८	४	२५०
५	६	८७	५	२३८
६	६	७५	६	३३१
७	६	१०४	७	२४८
८	१०	९२	८	२४६
९	७	११४		२०२४*
१०	१२	१९१		
	८५	१०१७		

* बालखिल्य भी इसमें सम्मिलित हैं और इसी कारण १६ का अन्तर है। आठ अध्यायोंका एक अष्टक होता है। ऋग्वेदमें सब ६४ अध्याय हैं।

ऋग्वेद-संहिताकी मंत्र-संख्या

मंत्रोंकी संख्याके सम्बन्धमें यथेष्ट मत-भेद है। शौनककी "अनुक्रमणी"के मतसे ऋग्वेदमें १०५८०½ मंत्र, १५३८२६ शब्द और ४३२००० अक्षर हैं अर्थात् औसतन प्रत्येक सूक्तमें दस मंत्र और प्रत्येक मंत्रमें ४५ अक्षर हैं। जो हो, परन्तु अपने पासकी पुस्तकोंके मंत्रोंकी गणना करने पर हमें अक्षरोंके अनुसार जो मंत्रोंकी संख्या विदित हुई है, उसे भी पढ़ लीजिये—

अ १४३८, आ ६०६, इ ४४२, ई ३३, उ ४७२, ऊ ३४, ऋ ६३, ए ३०८, ऐ १०, ओ २१, औ २, अं २६, क २७५, क्ष १४, ख १, ग ६७, घ २०, च ५३, छ २, ज ८७, त ११३७, द २६१, ध ४७, न ३८८, प ८५२, ब ६१, भ ८३, म ३५१, य ११९३, र ७६, व ५७१, श २२६, ष ४, स १०२३, ह १०३

स्वर ३५८६, कवर्ग ४०७, चवर्ग १४२, तवर्ग १८३३, पवर्ग १३७७, अन्तःस्थ १७६३, ऊष्म १३५६।

सब मंत्रोंकी पूर्ण संख्या १०४६७

ऋग्वेदके विभिन्न छन्दों और उनके मंत्रोंकी संख्या इस प्रकार है,

छन्दोंके नाम	मंत्रोंकी संख्या
१ गायत्री	२४६७
२ उष्णिक्	३४१
३ अनुष्टुप्	८५५
४ बृहती	१८१
५ पंक्ति	३१२
६ त्रिष्टुप्	४२५३
७ जगती	१३४८
८ अतिजगती	१७
९ शाकवरी	१९
१० अतिशाकवरी	९
११ अष्टि	६
१२ अत्यष्टि	८४
१२ धृति	२
१४ अतिधृति	१
पूर्ण संख्या	९८८५
१ केवल एक ही चरणवाले मंत्र	६
२ केवल दो चरणवाले मंत्र	१७
३ प्रगाथा बार्हत	१९४
४ ककुभ	५५
५ महाबार्हत	२५७
सारे मंत्रोंकी संख्या	१०४१४

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ऋषि और उनके सूक्त तथा ऋचाएं—

ऋषियोंके नाम	सूक्तोंकी संख्या	ऋचोंकी संख्या
१ मधुच्छन्द और उनके पुत्र	११	११३
२ मेधातिथि कण्व	१२	१४३
३ शुनःशेप अजीगर्ति	७	९७
४ हिरण्यस्तूप आंगिरस	५	७१
५ घोर कण्व	८	६६
६ प्रस्कण्व कण्व	७	८२
७ सव्य आंगिरस	७	७२
८ नोधा गौतम	७	७४
९ पराशर शाक्त्य	१०	६१
१० गौतम रहूगण	२०	२०४
११ कुत्स आंगिरस	५	४२
१२ कश्यप मारीच	१	१
१३ ऋज्राश्व आम्बरीष	१	१९
१४ कुत्स आंगिरस	४	३९
१५ आप्त्य त्रित कुत्स	१	१९
१६ कुत्स आंगिरस	१०	१०७
१७ दीर्घतमस	१२	१६०
१८ परुच्छेप दैवोदासी	१३	१००
१९ दीर्घतमस औचथ्य	२४	२३१
२० अगस्त्य	१३	१०३
२१ लोपामुद्रा	१	६
२२ अगस्त्य	११	९९
२३ विषशान्ति अगस्त्य	१	१६

सायणाचार्यके मतानुसार प्रथम अष्टकमें पौराणिक कथाओंका अंकुर;

(प्रत्येक कथाके आगे सूक्त और मंत्रकी संख्याएँ हैं)

१ पणिने गायें चुरायीं, इन्द्रने उन्हें ढूँढ़ा ६।५
२ बल दैत्यका गो-हरण ११।५
३ कक्षीवान्‌की कथा १८।१
४ हरि घोड़ेकी उत्पत्ति २०।२
५ ऋभुओंने माँ-बापको जवानो दी २०।४
६ ऋभुओं द्वारा देवशिल्पीका चमस तोड़ा जाना २०।६
७ ऋभुगणकी देवत्वप्राप्ति २०।८
८ देव-रमणियोंका यज्ञमें आना २२।९,१०
९ वामनावतारकी कथा २२।१७,९०।९
१० किसानोंका खेत जोतना २३।१५
११ पूषा द्वारा सोमका पाया जाना २३।१४
१२ औषधियोंको खबर रखनेवाले चन्द्र २३।२०
१३ शुनःशेपकी कथा २४।१ से १५
१४ वरुण द्वारा सूर्य-पथका विस्तार २४।८
१५ सोमरसोत्पादन २८ सूक्त पूरा
१६ मनुको स्वर्गकी कथा सुनाना और पुरूरवा द्वारा अग्निका अनुगृहीत होना ३१।४
१७ पुरूरवाके पौत्र नहुषका वृत्तान्त ३१।११
१८ विश्वकर्मा द्वारा इन्द्रका वज्र-निर्माण ३२।२
१९ इन्द्र-वृत्र-युद्ध ३२।३ से १५
२० विजेता इन्द्रका सेवाओंमें पुरस्कार-वितरण ३३।३
२१ वृत्र-वध ३३।४ से १५
२२ सूर्योपाख्यान ३५।१ से ११
२३ अग्नि द्वारा प्रस्कण्वका जीवित होना ४४।६
२४ अग्निका पिजवन-पुत्र सुदासका सेनापति होना ४७।६
२५ स्वर्गपुत्री उषा ४८।१,४९।१ से ४
२६ राजा शार्यातकी कथा ५१।१२
२७ बूढ़े कक्षीवान्‌ने युवती पायी ५१।१३
२८ त्रितका कुएँमें गिरना ५२।५
२९ इन्द्र द्वारा नमुचिका वध ५३।७
३० अतिथिग्व राजाके शत्रु करंज और पर्णय असुरोंका वध तथा ऋजिश्वान् राजा द्वारा वेष्टित वृंगद असुरके नगरोंका इन्द्र द्वारा विनाश ५३।८
३१ सुश्रवाके साथ बीस नरपतियोंके युद्धमें इन्द्रद्वारा साहाय्य ५३।९
३२ नर्य, तुर्वश और यदुकी रक्षा करके एतश ऋषिके लिये इन्द्रने शम्बरके निन्यानबे नगरोंका विनाश किया ५१।६
३३ तुर्वीतका जलमग्न होना ६१।११
३४ पर्वतका इन्द्रसे डरना ६१।१४
३५ सरमा कुतियाकी सहायतासे गौओंका उद्धार ६२।२
३६ इन्द्रने तरुण कुत्सकी सहायता की और शुष्णको मारा ६३।३
३७ अग्नि कुमारियोंके जार हैं ६६।४
३८ अग्निका राक्षसोंको मारना ७१।५
३९ अग्निका देवोंकी सम्पत्ति चुराना ७२।४
४० अग्निका देवोंका दूत होना ७ ।६ से ७
४१ अथर्वा, मनु और दध्यङ्का यज्ञ सफल करना ८०।१६
४२ दधीचिकी कथा ८४।१३
४३ गौतमकी पिपासा-शान्ति ८५।१०
४४ उषाके कर्म ९२ सूक्त पूरा
४५ अग्नि और सोमका वायु तथा बाज चिड़िया द्वारा लाया जाना ९३।६
४६ अग्नि अपनी माताके जन्मदाता हैं ९५।४
४७ इन्द्रका बायें हाथ द्वारा शत्रु-निवारण और दाहिने हाथ द्वारा हव्य-ग्रहण १००।९
४८ कृष्णासुरकी गर्भवती स्त्रीको इन्द्रका मारना १०१।१
४९ शुष्ण, शम्बर और व्यंसका वध १०१।२
५० इन्द्र द्वारा दस्युओंका वध १०१।५

किस मंत्रको टिप्पणीमें क्या है ?

वेद क्यों पढ़ना चाहिये ?

इसलिये कि—

(१) वेद हिन्दूधर्मकी मूल पुस्तक है।

(२) वेद मनुष्यजातिकी सबसे प्राचीन पुस्तक है।

(३) सदाचार, वीरता, परोपकार, देश—सेवा, सत्य, त्याग आदि मनुष्यजातिकी जितनी उन्नतम गुणावली है, सबका वेदमें बड़ा ही सुन्दर विवरण है।

(४) वेद हमारी जातिका प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर्म-प्रेम, समाज-व्यवस्था, राष्ट्र—धर्म, यज्ञ—रहस्य आदि आदिको दर्पणकी तरह दिखाता है।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर एक मुसलमान कुरानको, गाड और खुदाकी विमल वाणी जानकर, अपने पास रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश समझ कर वेदको अपने पास रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य है।

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रान्स, अमेरिका, इङ्गलैण्ड आदिके विद्वानोंने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दीमें एक भी ऋग्वेदका सरल अनुवाद नहीं। इसी अभावकी पूर्त्तिके लिये हमने "वैदिक-पुस्तकमाला" द्वारा सरस सरल हिन्दीमें चारो वेदोंका अनुवाद कराना निश्चित किया है, जिसका प्रथम पुष्प आपके सामने है। इसका मूल्य केवल लागत भर २) रु० रखा गया है; क्योंकि इसके प्रधान संरक्षक भारतप्रसिद्ध बनैलीराज्यके अधीश्वर हैं।

॥) देकर "वैदिक-पुस्तकमाला" के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको आगे कभी भी डाकखर्च नहीं देना होगा और पुस्तक निकलते ही, सूचना देकर, वी० पी० से भेज दी जायगी।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर

ऋग्वेद-संहिता



अग्निदेव

"यज्ञके पुरोहित, दीप्तिमान, देवोंको बुलानेवाले ऋत्विक
और रत्नधारी अग्निको मैं स्तुति करता हूँ।"

(ऋग्वेद-संहिताका प्रथम मंत्र)

ओं तत्सत्

सानुवाद

ऋग्वेद-संहिता

१ अष्टक । १ मण्डल । १ अध्याय । १ अनुवाक ।

१ सूक्त । यहांसे लेकर १० सूक्तों तकके विश्वामित्रके पुत्र मधुच्छन्दा ऋषि हैं । यहांसे गायत्री छन्दके मंत्र प्रारम्भ हैं । इस सूक्तके देवता अग्नि हैं ।

ओं अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥
अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

---

१ यज्ञके पुरोहित, दीप्तिमान्, देवोंको बुलानेवाले ऋत्विक् और रत्नधारी अग्निकी मैं स्तुति करता हूं । *

२ प्राचीन ऋषियोंने जिनकी स्तुति की थी, आधुनिक ऋषि लोग जिनकी स्तुति करते हैं, वह अग्नि देवोंको, इस यज्ञमें, बुलावें ।

---

* संसारके अधिकांश विद्वान् हिन्दू, ग्रीक, रोमन, परशियन आदि जातियोंको आर्यजातिकी शाखाएं मानते हैं और इन सबमें सदासे अग्निकी पूजा प्रचलित है । ग्रीकोंकी रायसे जो देवता, मनुष्यकी भलाईके लिये, स्वर्गसे, पहले पहल, अग्नि चुरा लाया, उसका नाम प्रोमेथियस (Prometheus) या प्रमन्थ (संस्कृत) है । उस देवताके ग्रीक (यूनानी) अनन्य उपासक हैं । रोमनोंमें वल्कन (Vulcan) या उल्काके नामसे अग्निकी पूजा प्रचलित है । लाटिनभाषाभाषी अग्निको इग्निस (Ignis) और स्लाव लोग ओग्नि (Ogni) कहते हैं । ईरानी या परशियन लोग "अतर" नामसे अग्निकी उपासना करते हैं । हिन्दुओंके तो प्रसिद्ध देवता अग्नि हैं ही । निरुक्त (७ । ५) का मत है कि, " पृथ्वीपर अग्नि, अन्तरीक्षमें वायु या इन्द्र और आकाशमें सूर्य देवता हैं ।" इनमें प्रधान देवता अग्नि हैं——ऋग्वेदको देखनेसे यह बात स्पष्ट विदित होती है । ऋग्वेदमें अग्नि-सम्बन्धिनी जितनी ऋचाएं हैं, उतनी, इन्द्रको छोड़कर, किसी भी देवताके सम्बन्धकी नहीं ।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद् देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥
अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरागमत् ॥ ५ ॥
यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

---

३ अग्निके अनुग्रहसे यजमानको धन मिलता है और वह धन अनुदिन बढ़ता और कीर्त्तिकर होता है तथा उससे अनेक वीर पुरुषोंकी नियुक्ति की जाती है।

४ हे अग्निदेव ! जिस यज्ञको तुम चारों ओरसे घेरे रहते हो, उसमें राक्षसादि द्वारा हिंसा-कर्म सम्भव नहीं है और वही यज्ञ देवोंको तृप्ति देने स्वर्ग जाता है या देवताओंका सन्निकर्ष प्राप्त करता है।

५ हे अग्नि ! तुम होता, अशेषबुद्धिसम्पन्न या सिद्धकर्मा, सत्यपरायण, अतिशय कीर्त्तिसे युक्त और दीप्तिमान् हो। देवोंके साथ इस यज्ञमें आओ।

६ हे अग्नि ! तुम जो हविष्य देनेवाले यजमानका कल्याण-साधन करते हो, वह कल्याण, हे अङ्गिरः ! वास्तवमें तुम्हारा ही प्रीति-साधक है।×

ऋग्वेदके अनेक स्थानोंमें अग्निको पुरोहित कहा गया है। वह पुरोहित या अग्रणी इसलिये हैं कि, उनके बिना यज्ञ ही नहीं हो सकता। अग्नि होता या देवोंको बुलानेवाले इसलिये हैं कि, उनका जलना ही देवोंके आगमनका कारण है। होता, पोता, अध्वर्यु आदि कई तरहके कर्मानुसार पुरोहित या ऋत्विक् होते हैं। उनमें होता या देवाह्वानकारी ऋत्विक्का ही यहां उल्लेख है। ऋत्विक् शब्दका अर्थ है निर्दिष्ट समयपर यज्ञ करानेवाला। अग्नि रत्नधारी इसलिये हैं कि, यज्ञफलरूप रत्नों (धनों) के धारण या पोषण करनेवाले हैं।

ऋग्वेद जैसे प्राचीनतम ग्रन्थमें सर्व-प्रथम अग्निपूजाका मन्त्र देखकर अनेक पश्चिमी विद्वान् आर्योंको जड़ोपासक, असभ्य और बर्बर कहते हैं; और, कुछ विद्वान् यहां अग्निका अर्थ प्रकाश-स्वरूप ईश्वर करते हैं। वे कहते हैं कि, इस मंत्रमें तेजोमय ईश्वरकी अभ्यर्थना है। ईश्वर ही पुरोहित (संसार-हितैषी), दीप्तिमान् (तेजोरूप या दाता), ऋत्विक् होता (देवाह्वानकारी) और रत्नधारी (निखिल-सम्पत्ति-स्वामी) हैं।

हमारी राय है कि, कोई भी जड़ पदार्थ स्वयम् कार्य करनेमें असमर्थ है। हां, यदि उसका कोई चैतन्य अधिष्ठाता हो, तो वह कार्य करनेमें समर्थ हो सकता है। इसी विचारसे आर्य लोग जड़ अग्नि, वायु आदिके सिवा उनके अधिष्ठातृ-रूपसे एक-एक चेतन अग्नि, वायु आदि चैतन्य देव भी मानते थे। ऐसे असंख्य देव हैं और चूंकि परमात्मा सबके अधिष्ठाता हैं; इसलिये इन सब देवोंको ईश्वर-अंश माना जाता है। फलतः शासक-रूपमें, कर्मानुसार, देवोंके अनेक नाम अवश्य हैं; परन्तु सबके चेतन-रूप होनेसे सामुदायिक रूपसे सब देव एक हैं और वही परमात्मा हैं।

यहांसे प्रारम्भ कर नौ ऋकों, ऋचाओं या मंत्रोंमें अग्निकी स्तुति-प्रशंसा है; इसलिये इनके देवता अग्नि हैं और इन मंत्रोंका एक नाम आग्नेय सूक्त है।

× अङ्गिरा या अङ्गारा अग्नि और ऋषि—दोनोंका नाम है। यास्कने निरुक्तमें अङ्गारेको ही अङ्गिरा लिखा है। ऐतरेय ब्राह्मणमें भी यही बात है। उसमें यह भी लिखा है कि, अङ्गिरोवंशज ऋषिगण पहले अंगारे ही थे। विल्सन और स्मोरकी राय है कि, अङ्गिरा ऋषि लोग प्रख्यात वंशके थे और बहुत करके उन्होंने ही भारतवर्षमें अग्नि-पूजाका प्रथम प्रचार किया। यह निर्विवाद है कि, अङ्गिरोवंशके ऋषि लोग वेद-मंत्रोंके स्मारक थे।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

२ सूक्त। वायु आदि देवता हैं।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः। सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥

७ हे अग्नि! हम अनुदिन, दिन-रात, अन्तस्तलके साथ तुम्हें नमस्कार करते-करते तुम्हारे पास आते हैं।

८ हे अग्नि! तुम प्रकाशमान, यज्ञ-रक्षक, कर्मफलके द्योतक और यज्ञशालामें वर्द्धनशाली हो।

९ जिस तरह पुत्र पिताको आसानीसे पा जाता है, उसी तरह हम भी तुम्हें पा सकें या तुम हमारे अनायास-लभ्य बनो और हमारा मंगल करनेके लिये हमारे पास निवास करो।

---

१ हे प्रियदर्शन वायु! आओ। सोमरस तैयार है। इसे पान करो और पानके लिये हमारा आह्वान सुनो।*

२ हे वायुदेव! यज्ञज्ञाता स्तोता लोग अभिषुत या अभिषवादि संस्कार-रूप प्रक्रिया-विशेष द्वारा परिशोधित सोमरसके साथ तुम्हारे उद्देश्यसे स्तुति-वचन कह कर तुम्हारा स्तव करते हैं।

* यास्कके निरुक्त (७। ९) से मालूम होता है कि, आर्योंके प्राचीन देवोंमें वायु भी हैं। अनेक मंत्रोंसे वायुकी स्तुति की गयी है। ईरानियोंमें भी खूब वायु-पूजा प्रचलित है। ग्रीक और रोमन लोग पान (Pan) (संस्कृत-पवन) शब्दसे वायुकी उपासना करते थे। परन्तु भारतमें, वर्त्तमान समयमें, एक ऐसा दल है, जो वायु शब्दका भी अर्थ ईश्वर करता है। पहली ऋचा (१ म सूक्त) की टिप्पणीमें हम अपनी राय लिख चुके हैं।

सोमरसके सम्बन्धमें यथेष्ट मतवाद है। एक दलकी राय है कि, सोमलताको पीसनेसे खट्टापन लिये हुए दूधकी तरह सादा रस निकलता है, जिसे सड़ानेसे मादकता निकलती है और जो सोमरसके नामसे यज्ञमें व्यवहृत होता था। साफ मतलब यह है कि, सोमरस एक मदिराका नाम है, जिसे आर्यलोग पीते थे। ऐतरेय ब्राह्मणकी अनुक्रमणिकामें मार्टिन हागने लिखा है कि, उन्होंने सोमरस तैयार कराके पान किया था। ईरानी लोग भी सोमरसका व्यवहार करते थे। उनके यहां इसका नाम "हउमा" है। ईरानी सोमरसका कच्चा ही पान कर जाते थे। उनके जेन्द भाषाके "अवस्था" ग्रन्थमें इसकी प्रशंसा लिखी है। चन्द्रको भी रस-संयुक्त मानकर हमारे यहां अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मणमें चन्द्रमाका भी नाम सोम रखा गया है। विष्णुपुराणमें ये दोनों अर्थ हैं। चरक-संहितामें लिखा है कि, सोम नामकी ऐसी लता है, जिसके पन्द्रह पत्ते हैं। यह लता चन्द्रमाकी तरह दोनों पक्षोंमें घटती-बढ़ती है। ओखल और मूसलसे कूटकर इसका रस निकाला जाता था। प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और तृतीय सवन नामके यज्ञोंमें इसका खूब व्यवहार किया जाता था। मैक्समूलरकी राय है कि, हिमालयके उत्तर, मध्य एशियामें, सोमलता होती थी। मैडम ब्लावत्स्कीकी सम्मति है कि, वेदका सोम और बाइबिलका ज्ञान-वृक्ष (Tree of Knowledge) एक ही वस्तु है। कलकत्तेके बेलगछिया नामक स्थानमें एक बार एक बनियालाल बाबाजी नामके संन्यासीने एक ऐसी लता दिखायी थी, जो परीक्षार्थ लन्दन भेजी गयी थी और जिसे हुटिंग विड कम्पनीने

वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुपद्रवत् ॥ ५ ॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतं । मक्ष्वित्था धिया नरा ॥ ६ ॥

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसं । धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥

---

३ हे वायु ! तुम्हारा सोमगुण-प्रकाशक वाक्य सोमरस पीनेके लिये हव्यदाता यजमान और अनेक लोगोंके निकट जाता है ।

४ हे इन्द्र और वायु ! दोनों अन्न लेकर आओ ; सोमरस तैयार है ; यह तुम दोनोंकी अभिलाषा करता है ।*

५ हे वायु और इन्द्र ! तुम सोमरस तैयार जानो । तुम अन्नसहित हव्यमें रहनेवाले हो । शीघ्र यज्ञ-क्षेत्रमें आओ ।

६ हे वायु और इन्द्र ! सोमरसके दाता यजमानके सुसंस्कृत सोमरसके पास आओ । हे देवद्वय ! आगमनसे वह कर्म शीघ्र सम्पन्न होगा ।

७ मैं पवित्र-बल मित्र और हिंसक-रिपु-विनाशक वरुणको यज्ञमें बुलाता हूं । वे दोनों घृताहुति-दान-स्वरूप कर्म करते हैं ।×

८ हे यज्ञ-वर्द्धक और यज्ञ-स्पर्शी मित्र और वरुण ! तुम लोग, यज्ञ-फल देनेके लिये, इस विशाल यज्ञको व्याप्त किये हुए हो ।

९ इन्द्र और वरुण बुद्धिसम्पन्न, जनहितकारी और विविध-लोकाश्रय हैं । वे हमारे बल और कर्मकी रक्षा करें ।

सोमलता बताया था । यह सब कुछ है ; परन्तु प्रसिद्ध वेदज्ञ पण्डित दुर्गादास लाहिड़ीने लिखा है कि, सोमलता और सोमरस क्रमशः विशुद्ध बुद्धि और निष्कलंक ज्ञानका नाम है—वस्तुतः वह कोई लता या वल्ली नहीं है ।

हमारा मत है कि, ज्ञान-काण्डमें लाहिड़ी महाशयका अर्थ ठीक है ; परन्तु कर्मकाण्डके लिये लाहिड़ीजीका अर्थ ठीक नहीं है । वस्तुतः सोमलता नामकी एक लता है और आर्य लोग यज्ञोंमें सोमरसका पान करते थे ।

* ऋग्वेदमें इन्द्रके सम्बन्धके जितने मंत्र हैं, उतने किसीके भी नहीं । इन्द्र आर्योंके प्रधान-देवोंमें हैं ।

× मित्र भी आर्योंके प्राचीन देवता हैं । ईरानी लोग मिथ्र नामसे मित्रकी पूजा करते हैं । वरुण इससे भी प्रसिद्ध देव हैं । ईरानी वरण नामसे वरुणकी पूजा करते हैं । ग्रीक तो वरुण या उरानोस (Uranos) को सब देवताओंका पिता भी मानते हैं । अलेक्जेण्डर वानकी राय है कि, वरुण पहले आकाश-देव थे, पीछे जल-देव हुए । रोथका कहना है कि, वरुण समुद्र-देव ही हैं । वेस्टर्गार्डकी भी यही सम्मति है । वेदमें, अधिकांश मंत्रोंमें, मित्र और वरुणका एक साथ ही प्रसङ्ग आया है । हमारा मत है कि, आर्योंके मित्र और वरुण अत्यन्त प्रतिष्ठित और प्राचीनतम देवता हैं ।

३ सूक्त। अश्विद्वय आदि देवता हैं।

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती। पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया। धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः। आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥
इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥
इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥
इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥

---

१ हे क्षिप्रबाहु, सुकर्मपालक और विस्तीर्ण-भुज-संयुक्त अश्विद्वय! तुम लोग यज्ञीय अन्नको ग्रहण करो।*

२ हे विविधकर्मा, नेता और पराक्रमशाली अश्विद्वय! आदर-युक्त बुद्धिके साथ हमारी स्तुति सुनो।

३ हे शत्रुनाशक, सत्यभाषी और शत्रुदमनकारी अश्विद्वय! सोमरस तैयार कर छिन्न कुशों पर रखा हुआ है; तुम आओ।

४ हे विचित्र-दीप्ति-शाली इन्द्र! अंगुलियोंसे बनाया हुआ नित्य-शुद्ध यह सोमरस तुम्हें चाहता है; तुम आओ।

५ हे इन्द्र! हमारी भक्तिसे आकृष्ट होकर और ब्राह्मणों द्वारा आहूत होकर सोम-संयुक्त वाघत् नामके पुरोहितकी प्रार्थना ग्रहण करने आओ।

६ हे अश्वशाली इन्द्र! हमारी प्रार्थना सुनने शीघ्र आओ। सोमरस-संयुक्त यज्ञमें हमारा अन्न धारण करो।

---

* अश्विद्वय या अश्विनीकुमारद्वयके सम्बन्धमें ऋग्वेदमें अनेकानेक मंत्र हैं। इस सूक्तका तो नाम ही अश्विसूक्त है। परन्तु इस विषयमें बड़ा जबर्दस्त मतवाद है कि, ये दोनों कौन थे। यास्ककी राय है कि, "इन्हें कोई द्यावापृथिवी मानता, कोई दिन-रात कहता, कोई सूर्य-चन्द्रमा बताता और कोई पुण्यवान् राजा कहता है। म्योर्स संस्कृत टेक्स्ट पर नोट लिखनेवाले डाक्टर गोल्डस्टकरका मत है कि, ये दोनों ऋभुगणकी तरह प्रसिद्ध मनुष्य थे। अश्विनीकुमारोंकी तरह ग्रीसमें कैस्टर और पोलक्स नामके दो देवता हैं। मैक्समूलरकी राय है कि, ये दोनों आलोक और अन्धकार हैं। पुराणोंमें ये यमज माने गये हैं और मानसिक और दैहिक तापोंके त्राता भी कहे गये हैं। ऋग्वेदमें दस्र और नासत्य भी इनके नाम हैं। ऋग्वेदके १० वें मण्डलके १७ वें सूक्तमें इनकी उत्पत्तिकी बात यों लिखी गई है—त्वष्टाकी कन्या सरण्यूसे सूर्य द्वारा अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई है। प्रथम मण्डलके ११६ वें सूक्तसे पता चलता है कि, वे बड़े भारी चिकित्सक थे। खेल नामके राजाकी विश्पला नामकी स्त्रीका पैर दो खण्ड हो गया था। सो, इन्होंने उसे लोहेकी जंघा दे दी और वह चंगी हो गयी। ऋज्राश्व राजाके पिताकी अन्धी आँखें भी इन्होंने अच्छी की थीं। इसी मण्डलके ११७ वें सूक्तमें लिखा है—कक्षिवान्की ब्रह्मवादिनी घोषा नामकी कन्याका इन्होंने कुष्ट दूर किया था। इसी प्रकार १ म मण्डलके १७ वें और ३४ वें सूक्तोंमें भी इनकी असाधारण प्रतिभाका उल्लेख है। २० वें सूक्ततकमें जो इनके बारेमें मंत्र हैं, उनसे मालूम पड़ता है कि, दोनों भाई व्याधि और विपत्तिके भी देवता थे।

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥७॥
विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमागन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥ ८॥
विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥९॥
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

२ अनुवाक । ४ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

---

७ हे विश्वेदेवगण ! तुम रक्षक हो तथा मनुष्योंके पालक हो। तुम हव्यदाता यजमानके प्रस्तुत सोमरसके लिये आओ। तुम यज्ञ-फल-दाता हो।*

८ जिस तरह सूर्यकी किरणें दिनमें आती हैं, उसी तरह वृष्टिदाता विश्वेदेव शीघ्र प्रस्तुत सोमरसके लिये आगमन करें।×

९ विश्वेदेवगण अक्षय, प्रत्युत्पन्नमति, निर्वैर और धन-वाहक हैं। वे इस यज्ञमें पधारें।

१० पतितपावनी, अन्न-युक्त और धनदात्री सरस्वती धनके साथ हमारे यज्ञकी कामना करें।

११ सत्यकी प्रेरणा करनेवाली, सुबुद्धि पुरुषोंको शिक्षा देनेवाली सरस्वती हमारा यज्ञ ग्रहण कर चुकी हैं।

१२ प्रवाहित होकर सरस्वतीने जलराशि उत्पन्न की है और इसके सिवा समस्त ज्ञानोंका भी जागरण किया है।+

---

१ जिस तरह दूध दूहनेवाला दोहनके लिये गायको बुलाता है, उसी प्रकार अपनी रक्षाके लिये हम भी सत्कर्मशील इन्द्रको प्रति दिन बुलाते हैं।

---

* विश्वेदेवास एतन्नामका देव-विशेषाः। सायण।

× इस मंत्रके मूल शब्द "उस्रा इव स्वसराणि" का अर्थ रमानाथ सरस्वतीने "जिस तरह गायें घर आती हैं" किया है।

+ नदी और ज्ञानदात्री—इन दोनों अर्थोंमें यहां सरस्वती शब्दका प्रयोग हुआ है। यास्कने भी इन दोनों रूपोंको स्वीकार किया है। मैक्समूलरकी राय है कि, आर्य लोग सरस्वती नदीके किनारे यज्ञ करते थे। कुछ दिनोंके अनन्तर उच्चारित मंत्रोंकी अधिष्ठात्री और वाक्प्रेरयित्री देवी सरस्वती मान ली गयीं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि, आर्य लोग जब मध्य एशियासे भारतवर्ष आ रहे थे, तब रास्तेमें सरस्वतीका सुस्वादु जल पीकर उसपर लट्टू हो गये और उसकी स्तुति करने लगे। परन्तु सच बात यह है कि, संसारकी सब विभूतियोंको ईश्वर-रूप मानकर आर्य लोग उनका सम्मान करते थे। तत्स्वरूप जड़ पदार्थकी सरस्वतीको अधिष्ठात्री देवी माननेका जो कारण है, उसका उल्लेख हम १ म सूक्त १ म मंत्रकी टिप्पणीमें कर आये हैं। हम आर्यों और मनुष्य मात्रकी उत्पत्तिका स्थान भारतको ही मानते हैं—मध्य एशियाको नहीं। इसका विचार "वेद-रहस्य" नामके प्रकरणमें किया गया है।

उप नः सवनागहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनां । मा नो अति ख्य आगहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितं । यस्ते सखिभ्य आवरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनं । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

२ हे सोमपानकर्ता इन्द्र ! सोमरस पीनेके लिये हमारे त्रिसवन-यज्ञके निकट आओ। तुम धनशाली हो ; प्रसन्न होनेपर गाय देते हो।

३ हम तुम्हारे पास रहनेवाले बुद्धिशाली लोगोंके बीच पड़कर तुम्हें जानें। हमारी उपेक्षा कर दूसरोंमें प्रकाशित नहीं होना। हमारे पास आओ।

४ हिंसा-द्वेष-रहित और प्रतिभाशाली इन्द्रके पास जाओ और मुझ मेधावीकी कथा जाननेकी चेष्टा करो। वही तुम्हारे बन्धुओंको उत्तम धन देते हैं।

५ सदा इन्द्र-सेवक हमारे सम्बन्धी पुरोहित लोग इन्द्रकी स्तुति करें और इन्द्रके निन्दक इस देश और अन्य देशोंसे भी दूर हो जायँ।*

६ हे रिपुमर्दन इन्द्र ! तुम्हारी कृपासे शत्रु और मित्र—दोनों हमें सौभाग्यशाली कहते हैं। हम इन्द्रके प्रसाद-प्राप्त सुखमें निवास करें।

७ यह सोमरस शीघ्र मादक और यज्ञका सम्पत्‌स्वरूप है। यह मनुष्यको प्रफुल्ल करता, कार्य-साधन करता और हर्ष-प्रदाता इन्द्रका मित्र है। यज्ञ-व्यापी इन्द्रको इसे दो।

८ हे शतयज्ञकर्ता इन्द्र ! इसी सोमरसका पान कर तुमने वृत्र आदि शत्रुओंका विनाश किया था और रणाङ्गण अपने योद्धाओंकी रक्षा की थी।×

* इस मंत्रमें जो इन्द्र-निन्दकोंके लिये देश-निर्वासनकी बात कही गयी है, उसको ध्यानमें रखकर अनेक विद्वानोंने निश्चय किया है कि, "यद्यपि पारसी लोग वृत्रघ्न या वेरेथ्रघ्नके पूजक थे ; परन्तु इन्द्रके कट्टर शत्रु थे ; क्योंकि "अवस्था" (दसवें फर्गार्द) में इन्द्रको पापमति कहा गया है और संसार भरसे इन्द्र-पूजकोंको निकाल देनेकी बात कही गयी है। इसके प्रतिवाद-स्वरूप इस मंत्रमें भी इन्द्र-शत्रुओं (पारसियों) को संसार-निर्वासनकी बात कही गयी है।" जो हो ; परन्तु इस मंत्रसे यह बात अवश्य प्रमाणित होती है कि, उन दिनों संसारमें जो इन्द्र-शत्रु थे, वे आर्य-रिपु भी थे।

× इन्द्र द्वारा वृत्रासुरके वधकी बात यहां ध्यान देने योग्य है। देवीभागवत आदि कई पुराणोंमें लिखा है कि, ब्रह्मासे वर प्राप्तकर वृत्रासुर त्रिलोक-विजयी हो गया था। अन्तको आदर्श ब्राह्मण महर्षि दधीचिकी हड्डीसे विश्वकर्मा द्वारा वज्र-निर्माण किया गया, जिससे इन्द्रने वृत्र-वध किया। यह कथा घर-घर प्रचलित है। इधर प्रसिद्ध वेदज्ञ रमानाथ सरस्वतीने ३२वें सूक्तकी टीकामें लिखा है कि, "वृत्र असीरियाका नामी दलपति था। "अवस्था" से मालूम पड़ता है कि, बेबीलोन नगरके ध्वंस-साधन करनेके लिये वृत्रने अद्विसुर नामक देवीकी उपासना की ; परन्तु प्रयत्नमें असफल रहा। अन्तको आर्य इन्द्रने उसे ध्वस्त कर

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत॥१०॥

५ सूक्त। इन्द्र देवता हैं।

आत्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणां । इन्द्रं सोमे सचासुते ॥ २ ॥
स घानो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्यां । गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६॥

---

९ हे शतक्रतु इन्द्र! तुम संग्राममें बड़े योद्धा हो। इन्द्र! धन-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें हविष्य देते हैं।

१० जो धनके त्राता और महत्पुरुष हैं, जो सत्कर्म-पालक और भक्तोंके मित्र हैं, उन इन्द्रको लक्ष्य कर गाओ।

---

१ हे स्तुतिकारक सखा लोग! शीघ्र आओ और बैठो तथा इन्द्रको लक्ष्य कर गाओ।

२ सोमरसके तैयार हो जाने पर सब लोग एकत्र होकर बहु-शत्रु-विध्वंसक और श्रेष्ठ धनके धनपति इन्द्रको लक्ष्य कर गाओ।

३ अनन्तगुण-सम्पन्न वे ही इन्द्र हमारे उद्देश्योंका साधन करें, धन दें, बहुविध बुद्धि प्रदान करें और अन्नको साथ लेकर हमारे पास आगमन करें।

४ युद्धके समयमें जिन देवताके रथ-युक्त अश्वोंके सामने शत्रु नहीं आते, उन्हीं इन्द्रको लक्ष्य कर गाओ।

५ यह पवित्र,स्नेहगुण-संयुक्त और विशुद्ध सोमरस सोमपान करनेवालेके पानार्थ उसके पास आप ही आता है।

६ हे शोभनकर्मा इन्द्र! सोमपानके लिये, सदासे ज्येष्ठ होनेके कारण, तुम सबके आगे रहते हो।

डाला। वृत्र आर्योंका घोर शत्रु था; इसलिये उसके वधपर आर्योंने परमानन्द अनुभव किया। फारसके राजा साइरस (Cyrus) ने जिस तरह टाइग्रीस नदीका प्रवाह रोक कर बेबीलोनको जीता था, उसी प्रकार वृत्रने भी आर्यभूमि दखल करनेकी सोची थी। अस्तु। यह अत्यन्त प्राचीन कथा है; इसलिये तथ्य-निर्णय कठिन है; तो भी ऋग्वेद और "अवस्था" की बातोंसे इतना तो विदित ही हो जाता है कि, इन्द्र-वृत्र-युद्ध हुआ था।" कुछ लोगोंकी ऐसी भी धारणा है कि, "ऋग्वेदके वृत्र और अहि शब्द मेघके नामान्तर मात्र हैं। इन्द्रने मेघको आहत कर वृष्टि करायी थी; इसी कथा-कल्पना पर वृत्रासुर-वध बनी बात है।" परन्तु ऋग्वेदको देखने पर यह धारणा तर्क-शून्य मालूम पड़ती है।

ग्रीसके जियस और अपोलो देवताओंकी कथाएं भी इन्द्र-कथा-तुल्य हैं। मैक्समूलरकी राय है कि, वृत्र-युद्धके ढंगपर ही होमरके इलियड ग्रन्थमें ट्राय-युद्धकी कल्पना है। वेदका पणिगण ट्राय-युद्धका पैरिस है। इस प्रकार यहां खूब "मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना" कहावत चरितार्थ हो रही है। परन्तु यह बात निःसन्दिग्ध है कि, इन्द्र आर्योंके सर्व-श्रेष्ठ वायुमण्डल-शासक अन्तरिक्ष-देव हैं और उन्होंने वृत्रका वध कर भारतमें सुखद आर्य-राज्य स्थिर रहनेमें सहायता की थी। वृत्रासुर-वधकी नकलमें प्रायः सभी प्राचीन जातियोंमें अनेक कल्पना-कथाएं गढ़ ली गयी हैं

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शन्ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्द्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणं । यस्मिन्विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥
मा नो मर्ता अभिद्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥१०॥

६ सूक्त । इन्द्र और मरुद्गण देवता हैं ।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥

७ हे स्तुति-पात्र इन्द्र ! सवनत्रय-व्याप्त सोमरस तुम्हें प्राप्त हो और उच्च ज्ञानकी प्राप्तिमें तुम्हारा मंगलकारी हो ।

८ हे सौ यज्ञोंके करनेवाले इन्द्र ! तुमको सोममंत्र और ऋकमंत्र—दोनों प्रतिष्ठित कर चुके हैं । हमारी स्तुति भी तुमको प्रतिष्ठित या सम्वर्द्धित करे ।*

९ इन्द्र रक्षामें सदा तत्पर रहकर यह सहस्र-संख्यक अन्न ग्रहण करें । इसी अन्न या सोमरसमें पौरुष रहता है ।

१० हे स्तवनीय इन्द्र ! तुम सामर्थ्यवान् हो । ऐसा करना कि, विरोधी हमारे शरीर पर आघात न कर सकें । हमारा वध नहीं होने देना ।

---

१ जो प्रतापान्वित सूर्य-रूपसे, हिंसा-शून्य अग्नि-रूपसे और विहरण-कर्ता वायु-रूपसे अवस्थित हैं, उन्हीं इन्द्रसे सब लोकोंमें रहनेवाले मनुष्य सम्बन्ध स्थापित करते हैं ।

२ वे मनुष्य इन्द्रके रथमें सुन्दर, तेजस्वी, लाल और पुरुष-वाहक हरि नामके घोड़ोंको संयोजित करते हैं ।

३ हे मनुष्यो ! सूर्यात्मा इन्द्र बेहोशको होशमें करके और रूप-विरहितको रूप दान करके प्रचण्ड किरणोंके साथ उग रहे हैं ।

४ इसके अनन्तर मरुद्गणने यज्ञोपयोगी नाम धारण करके अपने स्वभावके अनुकूल, बादलके मध्य, जलकी गर्भाकार रचना की ।

५ इन्द्र ! विकट स्थानको भी भेदन करनेवाले और प्रवहमान मरुद्गणके साथ तुमने गुफामें छिपी हुई गायोंको खोजकर उनका उद्धार किया था ।×

* इस मंत्रमें, मूलमें, स्तोम और उक्थ शब्द हैं, जिनका क्रमशः अर्थ साम-मंत्र और ऋक्-मंत्र है । जो लोग वेदोंको नित्य नहीं मानते और ऋग्वेदके बाद सामवेदकी रचना मानते हैं, वे, रमेशचन्द्रदत्त आदि, यहां बड़े घबराये हैं । परन्तु सायणाचार्यके इस अर्थका वे खण्डन भी नहीं कर सके हैं ।

× सायणाचार्यने लिखा है कि, पणि नामके वैश्योंने देवलोकसे गायें चुराकर अन्धकारमें रख दी थीं, जिनका

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम्॥ ६॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा॥ ७॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः॥ ८॥
अतः परिज्मन्नागहि दिवो वा रोचनादधि। समस्मिन्नृञ्जते गिरः॥ ९॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि। इन्द्रं महो वा रजसः॥१०॥

७ सूक्त। इन्द्र देवता हैं।

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत॥ १॥
इन्द्र इद्धर्य्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥ २॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य्यं रोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्॥ ३॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः॥ ४॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे। युजं वृत्रेषु वज्रिणम्॥ ५॥

६ स्तुति करनेवाले, देव-भावकी प्राप्तिके लिये, धन-सम्पन्न, महान् और विख्यात मरुद्गणको कल्पकर इन्द्रकी तरह स्तुति करते हैं।

७ हे मरुद्गण! तुम लोगोंकी इन्द्रसे संकोच-रहित अभिन्नता देखी जाती है। तुम लोग सदा प्रसन्न और समान-प्रकाश हो।

८ निर्दोष, सुरलोकाभिगत और कामनाके विषयीभूत मरुद्गणके साथ इन्द्रको बलिष्ठ समझकर यह यज्ञ पूजा करता है।

९ सर्वदिशा-व्यापक मरुद्गण! अन्तरिक्ष, आकाश या ज्वलन्त सूर्यमण्डलसे आओ। इस यज्ञमें पुरोहित लोग तुम लोगोंकी भली भांति स्तुति करते हैं।

१० हम इन इन्द्रके निकट इसलिये याचना करते हैं कि, ये पृथिवी, आकाश और महान् वायु-मण्डल (अन्तरिक्ष) से हमें धन-दान दें।

---

१ सामवेदियोंने साम-गान द्वारा, ऋग्वेदियोंने वाणी द्वारा और यजुर्वेदियोंने वाणी द्वारा इन्द्रकी स्तुति की है।

२ इन्द्र अपने दोनों घोड़ोंको, बातकी बातमें, जोतकर सबके साथ मिलते हैं। इन्द्र वज्रयुक्त और हिरण्मय हैं।

३ दूरस्थ मनुष्योंको देखनेके लिये ही इन्द्रने सूर्यको आकाशमें रखा है। सूर्य, अपनी किरणों द्वारा, पर्वतोंको आलोकित किये हुए हैं।

४ उग्र इन्द्र! अपनी अप्रतिहत रक्षण-शक्ति द्वारा युद्ध और लाभकारी महासमरमें हमारी रक्षा करो।

५ इन्द्र हमारे सहायक और शत्रुओंके लिये वज्रधर हैं;इसलिये हम धन और महाधनके लिये इन्द्रका आह्वान करते हैं।

मरुद्गणके साथ इन्द्रने उद्धार किया था। गायोंको खोजनेके लिये इन्द्रने सरमा नामकी एक देव-कुक्कुरीको नियुक्त किया था और सरमाने दैत्योंके साथ भाई-चारा बढ़ाकर गायोंका पता लगाया था। वायुदेवका नामान्तर मरुत् अथवा मरुद्गण है।

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

३ अनुवाक । ८ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहं । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयं । सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥

---

६ अभीष्ट-फलदाता और वृष्टिप्रद इन्द्र ! तुम हमारे लिये इस मेघको भेदन करो । तुमने कभी भी हमारी प्रार्थना अस्वीकार नहीं की ।

७ जो विविध स्तुति-वाक्य विभिन्न देवताओंके लिये प्रयुक्त होते हैं, सो सब वज्रधारी इन्द्रके हैं । इन्द्रकी योग्य स्तुति मैं नहीं जानता ।

८ जिस तरह विशिष्ट-गतिवाला बैल अपने गो-दलको बलवान् करता है, उसी प्रकार इच्छित-वितरण-कर्त्ता इन्द्र मनुष्यको बलशाली करते हैं । इन्द्र शक्ति-सम्पन्न हैं और किसीकी याचनाको अग्राह्य नहीं करते ।

९ जो इन्द्र मनुष्यों, धन और पञ्चक्षितिके ऊपर शासन करनेवाले हैं ।*

१० सबके अग्रगी इन्द्रको तुम लोगोंके लिये हम आह्वान करते हैं । इन्द्र हमारे ही हैं ।

---

१ इन्द्र ! हमारी रक्षाके लिये भोगके योग्य, विजयी और शत्रु-जयी यथेष्ट धन दो ।

२ उस धनके बलसे सदा-सर्वदा मुष्टिकाघात करके हम शत्रुको दूर करेंगे या तुम्हारे द्वारा संरक्षित होकर हम घोड़ोंसे शत्रुको दूर करेंगे ।

३ इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हम कठिन अस्त्र धारण करके द्वाह करनेवाले शत्रुको पराजित करेंगे ।

४ इन्द्र ! तुम्हारी सहायतासे हम हथियारबन्द लड़ाकोंकी सजी-धजी सेनावाले शत्रुको भी जीत सकेंगे ।

५ इन्द्रदेव महान् और सर्वोच्च हैं । वज्रवाही इन्द्रको महत्त्व आश्रय करे । इन्द्रकी सेना आकाशके समान विशाल है ।

---

* सायणाचार्यने "पञ्चक्षिति"का अर्थ चार वर्ण और निषाद किया है । रमानाथ सरस्वतीने पञ्चनद अर्थ लिखा है । मैक्समूलर, रमेशचन्द्र दत्त, वेबर आदि सायणका अर्थ नहीं मानते । परन्तु सायणका अर्थ हमें युक्ति-विरुद्ध नहीं जँचता ।

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थञ्च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

९ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥
संचोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यं । असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥
अस्मान् सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥

६ जो पुरुष रण-स्थलीमें जानेवाले हैं, पुत्र-प्राप्तिके इच्छुक हैं अथवा जो विशेषज्ञ ज्ञानाकाङ्क्षामें तत्पर हैं, वे सब इन्द्रकी स्तुति द्वारा सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

७ इन्द्रका जो उदरदेश सोमरस-पानके लिये तत्पर रहता है, वह सागरकी तरह विशाल है । वह उदर जीभके जलकी तरह कभी नहीं सूखता ।

८ इन्द्रके मुखसे निकला हुआ वाक्य सत्य, वैचित्र्य-विशिष्ट, महान् और गो-प्रदाता है और हव्यदाता यजमानके पक्षमें तो वह वाक्य पके हुए फलोंसे संयुक्त वृक्ष-शाखाके समान है ।

९ इन्द्र ! तुम्हारा ऐश्वर्य ही ऐसा है । वह हमारे जैसे हव्यदाताका रक्षक और शीघ्रफलदायी है ।

१० इन्द्रके सामवेदीय और ऋग्वेदीय मंत्र इन्द्रको अभिलषित हैं और इन्द्रके सोमपानके लिये वक्तव्य हैं ।

---

१ इन्द्र ! आओ । सोमरस-रूप खाद्योंसे हृष्ट बनो । महाबलशाली होकर शत्रुओंमें विजयी बनो ।

२ यदि प्रसन्नतादायक और कार्य-सम्पादनमें उत्तेजक सोमरस तैयार हो तो, हर्ष-युक्त और सकल-कर्म-साधक इन्द्रको उत्सर्ग करो ।

३ हे सुन्दर नासिकावाले और सबके अधीश्वर इन्द्र ! प्रसन्नता-कारक स्तुतियोंसे प्रसन्न हो और देवोंके साथ इस सवन-यज्ञमें पधारो ।

४ इन्द्र ! मैंने तुम्हारी स्तुति की है । तुम इच्छित-वर्षक और पालन-कर्ता हो । मेरी स्तुति तुम्हें प्राप्त हुई है ; तुमने उसे ग्रहण कर लिया है ।

५ इन्द्रदेव ! उत्तम और नाना विध सम्पत्ति हमारे सामने भेजो । पर्याप्त और प्रचुर धन तुम्हारे पास ही है ।

६ अनन्त-धनशाली इन्द्र ! धन-सिद्धिके लिये हमें इस कर्ममें संयुक्त करो । हम उद्योगी और यशस्वी हैं ।

संगोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम्॥ ७ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः॥ ८ ॥
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये॥ ९ ॥
सुते सुते न्योकसे बृहद्बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति॥ १० ॥

१० सूक्त। इन्द्र देवता हैं। अनुष्टुप् छन्द है।

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः। ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे॥ १ ॥
यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्। तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥ २ ॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर॥ ३ ॥
एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्यारुव। ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय॥ ४ ॥
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे। शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत् सख्येषु च॥ ५ ॥
तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये। स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः॥ ६ ॥
सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः। गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः॥ ७ ॥

---

७ इन्द्रदेव ! गौ और अन्न से युक्त, प्रचुर और विस्तृत, सारी आयु चलने योग्य और अक्षय धन हमें दो।

८ इन्द्र ! हमें महती कीर्त्ति, बहुदान-सामर्थ्ययुत धन और अनेक-रथपूर्ण अन्न दान करो।

९ धनकी रक्षाके लिये हम स्तुति करके इन्द्रको बुलाते हैं। इन्द्र धन-रक्षक, ऋचा-प्रिय और यज्ञ-गमन-कर्त्ता हैं।

१० प्रत्येक यज्ञमें यजमान लोग सदाधिवासी और प्रौढ़ इन्द्रके महान् पराक्रमकी प्रशंसा करते हैं।

---

१ शतक्रतु इन्द्र ! गायक तुम्हारे उद्देश्यसे गान करते हैं। पूजक पूजनीय इन्द्रकी अर्चना करते हैं। जिस प्रकार नर्त्तक वंश-खण्डको उन्नत करते हैं, उसी प्रकार स्तुति करनेवाले ब्राह्मण तुम्हें ऊंचा उठाते हैं।

२ जब सोमलता के लिये एक पर्वत-मार्गसे दूसरे पर्वत-प्रदेशको यजमान जाता और अनेक कर्म सिरपर उठाता है, तब इन्द्र यजमानका मनोरथ जानते और इच्छित-वर्षणके लिये उत्सुक हो कर मरुद्दलके साथ यज्ञ-स्थलमें आनेको प्रस्तुत होते हैं।

३ अपने केशर-संयुक्त, पराक्रमी और पुष्टांग दोनों घोड़ोंको रथमें जोड़ो। इसके बाद हमारी स्तुति सुननेके लिये आओ।

४ हे जनाश्रय इन्द्र ! आओ। हमारी स्तुतिकी प्रशंसा करो; समर्थन करो और शब्दोंसे आनन्द प्रकाश करो। इसके सिवा हमारा अन्न और यज्ञ एक साथ ही बढ़ाओ।

५ अनन्त-शत्रु-निवारक इन्द्रके उद्देश्यसे ऋग्वेदके गीत परिवर्द्धमान हैं, जिनसे शक्तिशाली इन्द्र हमलोगोंके पुत्रों और बन्धुओंके बीच महानाद करें।

६ हमलोग मैत्री, धन और शक्तिके लिये इन्द्रके पास जाते हैं और शक्तिशाली इन्द्र हमें धन देकर हमारी रक्षा करते हैं।

७ इन्द्र ! तुम्हारा दिया हुआ धन सर्वत्र फैला हुआ और सुख-प्राप्य है। हे वज्रधारक इन्द्र ! गौका वसति-द्वार उद्घाटन करो और धन सम्पादन करो।

न हि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः। जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥
आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः। इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्। वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥१०॥
आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब। नव्यमायुः प्रसूतिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥११॥
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनुवृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥१२॥

११ सूक्त। इन्द्र देवता हैं। मधुच्छन्दा ऋषिके पुत्र जेता ऋषि हैं।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः। रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते। त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो वि दस्यन्त्यूतयः। यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत। इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

८ इन्द्रदेव! शत्रु-वधके समयमें स्वर्ग और मर्त्य दोनों ही तुम्हारी महिमाको धारण नहीं कर सकते। स्वर्गीय जल वृष्टि करो और हमें गौ दो।

९ इन्द्र! तुम्हारे कान चारों तरफ सुन सकते हैं; इसलिये हमारा आह्वान शीघ्र सुनो। हमारी स्तुति धारण करो। हमारा यह स्तोत्र और हमारे मित्रका स्तोत्र अपने पास रखो।

१० इन्द्र! हम तुम्हें जानते हैं। तुम यथेप्सित वर्षा करते हो। लड़ाईके मैदानमें तुम हमारी पुकार सुनते हो। इष्ट-साधक तुमको अशेष-सुख-साधक रक्षणके लिये हम बुलाते हैं।

११ इन्द्र! शीघ्र हमारे पास आओ। हे कुशिक ऋषिके पुत्र! प्रसन्न होकर सोमरस पान करो। कार्यकारी शक्ति बढ़ाओ। इस ऋषिको सहस्र-धन-सम्पन्न करो।

१२ हे स्तवनीय इन्द्र! चारों ओरसे यह स्तुति तुम्हारे पास पहुंचे। तुम चिरायु हो; तुम्हारा अनुगमन करके यह स्तुति बढ़ती पावे। तुम्हारा सन्तोष-साधन करके यह स्तुति हमारे लिये प्रीतिकर हो।

---

१ सागरकी तरह व्यापक, रथि-श्रेष्ठ, अन्नपति और साधु-रक्षक इन्द्रको हमारी सारी स्तुतियां परिवर्द्धित कर चुकी हैं।

२ बलपति इन्द्र! तुम्हारी मित्रतासे हम ऐसे शक्तिशाली हों कि, हमें भय न मालूम पड़े। इन्द्र! तुम जयशील और अपराजेय हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

३ इन्द्रका धन-दान चिर प्रसिद्ध है। यदि इन्द्र प्रार्थी लोगोंको गो-संयुक्त और सामर्थ्य-सम्पन्न धन-दान करें तो प्रार्थियोंकी चिर रक्षा होगी।

४ युवा, मेधावी, प्रभूत-बलशाली, सब कर्मोंके परिपोषक, वज्रधारी और सर्व-स्तुत इन्द्रने असुरोंके नगर-विदारक रूपसे जन्म ग्रहण किया था।

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलं । त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् । उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः । विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत । सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥

४ अनुवाक । १२ सूक्त । अग्नि देवता हैं । यहांसे २३ सूक्तों
तकके कण्वके पुत्र मेधातिथि ऋषि हैं । गायत्री छन्द है ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिं । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥
अग्ने देवाँ इहावह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥
ताँ उशतो विबोधय यदग्ने यासि दूत्यं । देवैरासत्सि बर्हिषि ॥ ४ ॥
घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥ ५ ॥
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ६ ॥

---

५ वज्र-युक्त इन्द्र ! तुमने गो-हरण-कर्त्ता बल नामके असुरकी गुहा उद्घाटित की थी । उस समय बलासुरके निपीड़ित होनेपर देव लोगोंने निर्भय हो कर तुम्हें प्राप्त किया था ।*

६ वीर इन्द्र ! मैं चूते हुए सोमरसका गुण सर्वत्र व्यक्त करके और तुम्हारे धन-प्रदानसे आकृष्ट हो कर लौटा हूँ । स्तवनीय इन्द्र ! यज्ञ-कर्त्ता तुम्हारे पास आते थे और तुम्हारी सत्पुरुषता जानते थे ।

७ इन्द्र ! तुमने मायावी शुष्णका माया द्वारा वध किया था । तुम्हारी महिमा मेधावी लोग जानते हैं । उन्हें शक्ति प्रदान करो ।

८ अपने बलके प्रभावसे जगत्के नियन्ता इन्द्रको प्रार्थियोंने स्तुत किया था । इन्द्रका धन-दान हजारों या हजारोंसे भी अधिक तरीकोंसे होता है ।

---

१ देवदूत, देवाह्वानकारी, निखिल-सम्पत्संयुक्त और इस यज्ञके सुसम्पादक अग्निको हम भजते हैं ।

२ प्रजा-रक्षक, हव्यवाहक और बहुलोक-प्रिय अग्निको यज्ञकर्त्ता आवाहक मंत्रों द्वारा निरन्तर आह्वान करते हैं ।

३ हे काष्ठोत्पन्न अग्नि ! छिन्न-कुशोंवाले यज्ञमें देवोंको बुलाओ । तुम हमारे स्तोत्र-पात्र और देवोंको बुलानेवाले हो ।

४ अग्निदेव ! चूँकि देवताओंका दूत-कर्म तुम्हें प्राप्त हो चुका है; इसलिये हव्याकाङ्क्षी देवोंको जगाओ । देवोंके साथ इस कुश-युक्त यज्ञमें बैठो ।

५ हे अग्नि ! तुम घीसे बुलाये गये और प्रकाशमान हो । हमारे द्रोही लोग राक्षसोंसे मिल गये हैं । उन्हें तुम जलाओ ।

६ अग्नि अग्निसे ही प्रज्वलित होती हैं । अग्नि मेधावी, गृह-रक्षक, हव्यवाहक और जुहू-(घृतपात्र)-मुख हैं ।

---

* रेवरेण्ड कृष्णमोहन वन्द्योपाध्यायने अपने "Aryan witness" में लिखा है कि, ऋग्वेदका बल ही बेबीलोनाधिपति बेल था ।

कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्म्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ ७ ॥
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८ ॥
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहावह । उपयज्ञं हविश्चनः ॥ १० ॥
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥

१३ सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

सुसमिद्धो न आवह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥
मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥
नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उपह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आवह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥
स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥

---

७ मेधावी, सत्यधर्मा और शत्रु-नाशक देव अग्निके पास आकर यज्ञ-कार्यमें उसकी स्तुति करो ।

८ अग्निदेव ! तुम देवदूत हो । जो हव्यदाता तुम्हारी परिचर्या करता है, उसकी तुम भली भाँति रक्षा करो ।

९ जो हव्यदाता देवोंके हव्य-भक्षणके लिये अग्निके पास आकर भली भांति परिचर्या करता है, उसको, तुम, हे पावक ! सुखी करो ।

१० हे ज्वलन्त पावक ! हमारे लिये तुम देवोंको यहां ले आओ और हमारा यज्ञ और हव्य देवोंके पास ले आओ ।

११ अग्निदेव ! नये गायत्री-छन्दके मंत्रोंसे स्तुत हो कर हमारे लिये धन और वीर्यशाली अन्न प्रदान करो ।

१२ अग्नि ! तुम शुभ्र-प्रकाश-स्वरूप और देवोंको बुलानेमें समर्थ स्तोत्रोंसे युक्त हो । तुम हमारा यह स्तोत्र ग्रहण करो ।

---

१ हे सुसमिद्ध नामक अग्नि ! हमारे यजमानके पास देवताओंको ले आओ । पावक ! देवाह्वानकारी ! यज्ञ सम्पादन करो ।

२ हे मेधावी तनूनपात् नामक अग्नि ! हमारे सरस यज्ञको, आज, उपभोगके लिये, देवोंके पास ले जाओ ।

३ इस यजन-देशमें, इस यज्ञमें, प्रिय, मधुजिह्व और हव्य-सम्पादक नराशंस नामक अग्निको हम आह्वान करते हैं ।

४ हे इलित (इला) अग्नि ! सुखकारी रथपर देवोंको ले आओ । मनुष्यों द्वारा तुम देवोंको बुलानेवाले समझे जाते हो ।

५ बुद्धिशाली ऋत्विक् ! परस्पर-संबद्ध और घीसे आच्छादित बर्हिः-(अग्नि)-कुश विस्तार करो । कुशके ऊपर घी दिखाई देता है ।

६ यज्ञशालाका द्वार खोला जाय । वह द्वार यज्ञका परिवर्द्धक है । द्वार प्रकाशमान और जन-रहित था । आज अवश्य यज्ञ सम्पादन करना होगा ।

नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उपह्वये। इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥
ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी। यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥
इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये। अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥
अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः। प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥ ११ ॥
स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे। तत्र देवाँ उपह्वये ॥ १२ ॥

१४ सूक्त। अग्नि देवता हैं।

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये। देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १ ॥
आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः। देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥
इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगं। आदित्यान् मारुतं गणं ॥ ३ ॥

७ सौन्दर्यशाली रात्रि और उषा (अग्नि) को अपने इन कुशोंपर बैठनेके लिये, इस यज्ञमें, हम बुलाते हैं।

८ सुजिह्व, मेधावी, आह्वानकारी देव-द्वय (अग्नि) को बुलाता हूं। वे हमारा यह यज्ञ सम्पादन करें।

९ सुखदात्री और अविनाशिनी इला, सरस्वती और मही आदि तीनों देवियां (अग्नि) इन कुशोंपर विराजें।

१० उत्तम और नाना-रूपधारी त्वष्टा (अग्नि) को इस यज्ञमें बुलाते हैं। त्वष्टा केवल हमारे पक्षमें ही रहें।

११ हे देव वनस्पति ! देवोंको हव्य समर्पण करो, जिससे हव्यदाताको परम ज्ञान उत्पन्न हो।

१२ इन्द्रके लिये यजमानके घरमें स्वाहा द्वारा यज्ञ सम्पन्न करो। उसी यज्ञमें हम देवोंको बुलाते हैं।*

---

१ अग्निदेव ! इन विश्वदेवोंके साथ सोमरस पीनेके लिये हमारी परिचर्या और हमारी स्तुति ग्रहण करने पधारो। हमारे यज्ञका सम्पादन करो।

२ हे मेधावी अग्नि ! कण्व-पुत्र तुम्हें बुला रहे हैं; साथ ही तुम्हारे कर्मोंकी प्रशंसा भी कर रहे हैं। देवोंके साथ आओ।

३ इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुद्गणको यज्ञ-भाग दान करो।×

---

* इस त्रयोदश सूक्तका नाम आप्रीसूक्त है। आप्री शब्दका अर्थ है विशेष प्रीतिकर। इस सूक्तका पशु-यज्ञमें विनियोग होता है। पहले प्रत्येक गोत्रका अलग अलग आप्री सूक्त था। ऋग्वेदमें ये दश आप्री सूक्त हैं:—

प्रथम मण्डलमें १३, १४२ और १८८ सूक्त, द्वितीयमें ३, तृतीयमें ४, पञ्चममें ५, सप्तममें २, नवममें ५, दशममें ७० और ११० सूक्त। इस त्रयोदश सूक्तकी १२ ऋचाओंमें इन १२ नामोंसे अग्निकी स्तुति की गयी है:—

१ सुसमिद्ध, २ तनूनपात, ३ नराशंस, ४ इला, ५ बर्हिः, ६ देवीद्वार, ७ नक्त और उषा, ८ दैव्यद्वय, ९ इला, सरस्वती, मही, १० त्वष्टा, ११ वनस्पति, १२ स्वाहा। नराशंस या नैर्योसंघ नामक अग्निकी पूजा ईरानी भी करते हैं।

× बृहस्पति स्तुतिदेव हैं। बृहस्पतिका एक नाम ब्राह्मणस्पति भी है। जिस सूर्यका तेज अत्युग्र नहीं है, उसका नाम पूषा है। आदित्य लोग अदितिकी सन्तान हैं। ऋग्वेदके दूसरे मण्डलके २७ वें सूक्तमें ये छः आदित्य माने गये हैं—मित्र,

प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४ ॥
ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरंकृतः ॥ ५ ॥
घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ६ ॥
तान् यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥
ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ॥ ८ ॥
आकीं सूर्य्यस्य रोचनाद्विश्वान्देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥ ९ ॥
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥
त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११ ॥
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहावह ॥ १२ ॥

---

४ तुम लोगोंके लिये तृप्तिकर, प्रसन्नता-वाहक, बिन्दु-रूप, मधुर और पात्र-स्थित सोमरस तैयार हो रहा है।

५ अग्निदेव ! हव्य-संयुक्त और विभूषित कण्व-पुत्र कुश तोड़कर तुमसे रक्षा पानेकी अभिलाषासे तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं।

६ अग्नि ! संकल्प मात्रसे ही तुम्हारे रथमें जो जुटनेवाले दीप्तपृष्ठ वाहक तुम्हें ढोते हैं; उनके द्वारा ही देवोंको सोम-रस-पान करनेके लिये बुलाओ।

७ अग्नि ! पूजनीय और यज्ञ-वर्द्धक देवोंको पत्नी-युक्त करो। सुजिह्व ! देवोंको मधुर सोमरस पान कराओ।

८ जो देव यजनीय और स्तुति-पात्र हैं, अग्नि ! वे वषट्कार-कालमें तुम्हारी रसना द्वारा सोमरस पान करें।*

९ मेधावी और देवोंको बुलानेवाले अग्नि प्रातःकाल जागे हुए सारे देवोंको, सूर्य-प्रकाशित स्वर्गलोकसे, इस स्थानमें, निश्चय, ले आवें।

१० अग्निदेव ! तुम सब देवों, इन्द्र, वायु और मित्रके तेजःपुञ्जके साथ सोम-मधु पान करो।

११ अग्नि ! मनुष्य-सञ्चालित और देवोंको बुलानेवाले यज्ञमें बैठो। तुम हमारा यज्ञ सम्पादन करो।

१२ अग्निदेव ! रोहित नामके गति-शील और वहन-समर्थ घोड़ोंको रथमें जोतो और उनसे देवोंको इस यज्ञमें ले आओ।

अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश। नवम मण्डलके ११४ वें सूक्तमें तो ७ आदित्योंका उल्लेख है। दशम मण्डलके ७२ वें सूक्तमें लिखा है कि, अदितिके आठ पुत्र थे, जिनमें मार्तण्डको त्याग कर शेष ७ को देवोंके पास अदिति ले गयीं। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें इन आठ आदित्योंका उल्लेख है—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान्। शतपथ ब्राह्मणमें बारह महीनोंके बारह आदित्य (सूर्य) माने गये हैं। महाभारत (आदि पर्व, १२१ अ०) में बारह आदित्योंके ये बारह नाम हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु। अदिति शब्दका अर्थ है अखण्ड। अदिति देवोंकी माता हैं। यास्कने अदितिको देव-माता ही माना है।

* यज्ञकी समाप्तिके समय वषट्कार शब्दका प्रयोग किया जाता है।

१५ सूक्त । ऋतु प्रभृति देवता हैं ।

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥ १ ॥
मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद्यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥
अग्ने देवाँ इहावह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ॥
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५ ॥
युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभं । ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥
द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥
यत्त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥
अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥

१ इन्द्र ! ऋतुके साथ सोमरस पान करो । तृप्तिकर और आश्रय-योग्य सोमरस तुमको प्राप्त हो ।

२ मरुद्गण ! ऋतुके साथ पोत्र नामके ऋत्विक्‌के पात्रसे सोम पीओ । हमारा यज्ञ पवित्र करो । सचमुच तुम दान-परायण हो ।

३ पत्नीयुक्त नेष्टा या त्वष्टा ! देवोंके पास हमारे यज्ञकी प्रशंसा करो । ऋतुके साथ सोमरस पान करो; क्योंकि तुम रत्नदाता हो ।

४ अग्नि ! देवोंको यहां बुलाओ । तीन यज्ञ-स्थानोंमें उन्हें बैठाओ । उन्हें अलङ्कृत करो और तुम ऋतुके साथ सोम-पान करो ।

५ ब्राह्मणाच्छंसी पुरोहितके धनोपेत पात्रसे, ऋतुओंके पश्चात्, तुम सोम पान करो; क्योंकि तुम्हारी मित्रता अटूट है ।

६ धृत-व्रत मित्र और वरुण ! तुम लोग ऋतुके साथ हमारे इस प्रवृद्ध और शत्रुओं द्वारा अदहनीय यज्ञमें व्याप्त हो ।

७ नानाविध यज्ञोंमें धनाभिलाषी पुरोहित सोमरस तैयार करनेके लिये हाथमें पत्थर लेकर द्रविणोदा या धन-प्रद अग्नि-की स्तुति करते हैं ।

८ जिन सब सम्पत्तियोंकी कथा सुनी जाती है, द्रविणोदा (अग्नि) हमें वह सब सम्पत्ति दें और वह सम्पत्ति देवयज्ञके लिये हम ग्रहण करेंगे ।

९ द्रविणोदा, ऋतुओंके साथ, त्वष्टाके पात्रसे सोम पान करना चाहते हैं । ऋत्विक् लोग ! यज्ञमें आओ, होम करो; अनन्तर प्रस्थान करो ।

१० हे द्रविणोदा ! चूंकि ऋतुओंके साथ तुम्हें चौथी बार पूजता हूं; इसलिये अवश्य ही तुम हमें धन-दान करो ।

११ प्रकाशमान अग्निसे संयुक्त और विशुद्ध-कर्मा अश्विनीकुमारद्वय ! मधु सोम पान करो । तुम्हीं ऋतुओंके साथ यज्ञके निर्वाहक हो ।

१२ गृहपति, सुन्दर और फल-प्रद अग्निदेव ! तुम ऋतुके साथ यज्ञके निर्वाहक हो । देवाभिलाषी यजमानके लिये देवोंकी अर्चना करो ।

१६ सूक्त । इन्द्र देवता हैं।

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
उप नः सुतमागहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः । सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥
सेमं नः स्तोममागह्युपेदं सवनं सुतं । गौरो न तृषितः पिब ॥ ५ ॥
इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि । ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः । अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥
विश्वमित् सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥
सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥

१७ सूक्त । इन्द्र और वरुण देवता हैं।

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्त्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

---

१ अभीप्सित-वर्षक इन्द्र ! तुम्हारे घोड़े, तुम्हें सोम-पान करानेके लिये, यहां ले आवें। सूर्यकी तरह प्रकाश-युक्त पुरोहित मंत्रों द्वारा तुम्हें प्रकाशित करें।

२ हरि नामके दोनों घोड़े घृत-स्यन्दी धान्यके पास, सुखकारी रथसे, इन्द्रको ले आवें।

३ मैं प्रातःकाल इन्द्रको बुलाता हूं, यज्ञ-सम्पादन-कालमें इन्द्रको बुलाता हूं और यज्ञ-समाप्ति-समयमें, सोमपानके लिये, इन्द्रको बुलाता हूं।

४ इन्द्रदेव ! केशर-युक्त अश्वोंके साथ तुम हमारे संस्कृत सोमरसके निकट आओ। सोमरस तैयार होनेपर हम तुम्हें बुलाते हैं।

५ इन्द्र ! तुम हमारी यह स्तुति ग्रहण करने आओ; क्योंकि यज्ञ-सवन (सोमरस) तैयार है। प्यासे हुए गौरे हरिणोंकी तरह आओ।

६ यह तरल सोमरस बिछाये हुए कुशोंपर पर्याप्त अभिषुत (संस्कृत) है; इन्द्र ! बलके लिये इस सोमका पान करो।

७ इन्द्र ! यह स्तुति श्रेष्ठ है; यह तुम्हारे लिये हृदयस्पर्शी और सुखकर हो। अनन्तर संस्कृत सोम पीओ।

८ वृत्रासुरका वध करने वाले इन्द्र सोमपान और प्रसन्नताके लिये सारे सोमरस-संयुक्त यज्ञोंमें जाते हैं।

९ सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! गायों और घोड़ोंसे तुम हमारी सारी अभिलाषाएँ भली भांति पूर्ण करो। हम ध्यानस्थ होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं।

---

१ मैं सम्राट् इन्द्र और वरुणसे, अपनी रक्षाके लिये, याचना करता हूं। ऐसी याचना करनेपर ये दोनों हमें सुखी करेंगे।

२ तुम मेरे जैसे पुरोहितोंकी रक्षाके लिये मेरा आह्वान ग्रहण करो। तुम मनुष्योंके स्वामी हो।

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनां । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानां । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥
तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म्म यच्छतम् ॥८ ॥
प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥

५ अनुवाक । १८ सूक्त । ब्रह्मणस्पति आदि देवता हैं ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥
यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥२॥

---

३ इन्द्र और वरुण ! हमारे मनोरथके अनुसार, धन देकर हमें तृप्त करो । हमारी यही इच्छा है कि, तुम लोग हमारे पास रहो ।

४ चूंकि हमारे यज्ञमें हव्य मिला हुआ है और इसमें पुरोहितोंका स्तोत्र भी सम्मिलित हो गया है; इसलिये हम अन्न-दाताओंमें अग्रणी हों ।

५ असंख्य धन-दाताओंमें इन्द्र धनके दाता और स्तवनीय देवोंमें वरुण स्तुति-पात्र हैं ।

६ उनके रक्षणसे हम धनका उपभोग और संचय करते हैं । इसके अतिरिक्त हमारे पास यथेष्ट धन हो ।

७ इन्द्र और वरुण ! तरह-तरह के धनोंके लिये मैं तुम लोगोंको बुलाता हूं । हमें भली भांति विजयी बनाओ ।

८ इन्द्र और वरुण ! तुम्हारी अच्छी तरहसे सेवा करनेके लिये हमारी बुद्धि अभिलाषिणी है । हमें शीघ्र सुख दो ।

९ इन्द्र और वरुण ! जिस स्तुतिसे हम तुम्हें बुलाते हैं, अथवा जिस स्तुतिको तुम परिवर्द्धित करते हो, वही सुशोभन स्तुति तुम्हें प्राप्त हो ।

---

१ हे ब्रह्मणस्पति ! मुझ सोमरस-दाताको उशिज्-पुत्र कक्षीवान्की तरह देवताओंमें प्रसिद्ध करो ।*

२ जो सम्पत्तिशाली, रोगापहारक, धन-दाता, पुष्टि-वर्द्धक और शीघ्र फल-दाता हैं, वे ही ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करें ।

---

* मत्स्य-पुराण, वायुपुराण और महाभारतमें कक्षीवान्की कथा है। कहा गया है कि, कलिङ्गदेशके राजा निःसन्तान थे। उन्होंने पुत्र प्राप्तिकी लालसासे अपनी रानीको दीर्घतमा ऋषिके पास, सहवासके लिये, भेजा। परन्तु स्वयं ऋषिके पास न जाकर रानीने अपनी दासी उशिज्को भेज दिया । फलतः दीर्घतमा द्वारा उशिज्के गर्भसे कक्षीवान्की उत्पत्ति हुई, जो प्रसिद्ध ऋषि और ऋग्वेदके प्रथम अष्टकके ११९ से १२१ तकके सूक्तोंके आविष्कर्ता हुए । पाश्चात्य और पौरस्त्य—दोनों नवीन विचारके विद्वान् यही बात मानते हैं । परन्तु सनातन-धर्मी विद्वान् इस कथानकको रूपकालङ्कार मानते हैं । कुछ विद्वानोंका तो यह मत है कि, यह उशिज् और कक्षीवान् दूसरे ही थे । हम भी इसी मतके हैं ।

मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यं । दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यं । सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरं । होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमं । दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥

१९ सूक्त । अग्नि और मरुद्गण देवता हैं ।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४ ॥

---

३ ऊधम मचानेवाले मनुष्योंकी डाह-भरी निन्दा हमें न छू सके । हे ब्रह्मणस्पति ! हमारी रक्षा करो ।

४ जिसे इन्द्र, वरुण और सोम उन्नयन करते हैं, वह वीर मनुष्य विनाशको नहीं प्राप्त होता ।

५ हे ब्रह्मणस्पति ! तुम, सोम, इन्द्र और दक्षिणा देवी—सब उस मनुष्यको पापसे बचाओ ।

६ आश्चर्यकारक, इन्द्र-प्रिय, कमनीय और धनदाता सदसस्पति (अग्नि) के पास हम स्मृति-शक्तिकी याचना कर चुके हैं ।

७ जिनकी प्रसन्नताके बिना ज्ञानवान्का भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता, वही अग्नि हमारी मानसिक वृत्तियोंको सम्बन्ध-युक्त किये हुए हैं ।

८ अनन्तर वही अग्नि हव्य-सम्पादक यजमानको उन्नयन और अच्छी तरह यज्ञकी समाप्ति करते हैं । उनकी कृपासे हमारी स्तुति देवोंको प्राप्त हो ।

९ प्रतापशाली, प्रसिद्ध और आकाशकी तरह तेजस्वी, नराशंस देवताको मैं देख चुका हूं ।

---

१ अग्निदेव ! इस सुन्दर यज्ञमें सोमरसका पान करनेके लिये तुम बुलाये जाते हो; इसलिये मरुद्गणके साथ आओ ।

२ अग्निदेव ! तुम महान् हो । ऐसा कोई उच्च देव या मनुष्य नहीं है, जो तुम्हारे यज्ञका उल्लङ्घन कर सके । मरुद्गणके साथ आओ ।

३ अग्निदेव ! जो प्रकाशशाली और हिंसा-शून्य मरुद्गण महावृष्टि करना जानते हैं, उन मरुतोंके साथ आओ ।

४ जिन उग्र और अजेयबलशाली मरुतोंने जल-वृष्टि की थी; अग्निदेव, उन्हींके साथ पधारो ।

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥
ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥
य इङ्खयन्ति पर्व्वतां तिरः समुद्रमर्णवं । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७ ॥
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥८॥
अभि त्वा पूर्व्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ९ ॥

५ जो सुशोभन और उग्र रूप धारण करनेवाले हैं, जो पर्याप्त-बलशाली और शत्रु-संहारी हैं, अग्निदेव, उन्हीं मरुद्गणके साथ आओ ।

६ आकाशके ऊपर प्रकाश-स्वरूप स्वर्गमें जो दीप्तिमान् मरुत रहते हैं, अग्नि ! उन्हींके साथ आओ ।

७ जो मेघ-मालाका सञ्चालन करते और जल-राशिको समुद्रमें गिराते हैं, अग्नि ! उन्हीं मरुद्गणके साथ आओ ।

८ जो सूर्य-किरणोंके साथ समस्त आकाशमें व्याप्त हैं और जो बलसे समुद्रको उत्क्षिप्त करते हैं, अग्निदेव, उन्हीं मरुद्गणके साथ आओ ।

९ तुम्हारे प्रथम पानके लिये सोम-मधु दे रहा हूँ । अग्निदेव ! मरुद्गणके साथ आओ ।

प्रथम अध्याय समाप्त



२ अध्याय।

५ अनुवाक (आवृत्त)। २० सूक्त। ऋभुगण देवता हैं।

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकारि रत्नधातमः॥ १॥
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत॥ २॥
तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं। तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम्॥ ३॥
युवाना पितरा पुनः सत्यमंत्रा ऋजूयवः। ऋभवो विष्ट्यक्रत॥ ४॥
सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता। आदित्येभिश्च राजभिः॥ ५॥
उतत्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः॥ ६॥

१ जिन ऋभुओंने जन्म ग्रहण किया था, उन्हींके उद्देश्यसे मेधावी ऋत्विकोंने, अपने मुखसे, यह प्रभूत धन-प्रद स्तोत्र स्मरण किया था। *

२ जिन्होंने इन्द्रके उन हरि नामके घोड़ोंकी, मानसिक बलसे, सृष्टि की है, जो घोड़े आज्ञा पाते ही रथमें संयुक्त हो जाते हैं, वे ही ऋभुलोग, चमस आदि उपकरण-द्रव्योंके साथ, हमारे यज्ञमें व्याप्त हैं।

३ ऋभुओंने अश्विनीकुमारद्वयके लिये सर्वत्र-गन्ता और सुखवाही एक रथका निर्माण किया था और दूध देनेवाली एक गाय भी पैदा की थी।

४ सरल-हृदय और सब कामोंमें व्याप्त ऋभुओंका मंत्र विफल नहीं होता। उन्होंने अपने मां-बापको फिर जवान बना दिया था।

५ ऋभुगण! मरुद्गणसे संयुक्त इन्द्र और दीप्यमान सूर्यके साथ तुम लोगोंको सोमरस प्रदान किया जाता है।

६ त्वष्टाका वह नया चमस बिलकुल तैयार हो गया था; परन्तु उसे ऋभुओंने चार टुकड़ोंमें विभक्त कर दिया। ×

* सायणाचार्यने लिखा है कि, ऋभु लोग मनुष्य थे; परन्तु पीछे तपस्याके प्रभावसे देवत्व प्राप्त कर लिया था। अङ्गिराके पुत्रका नाम सुधन्वा था और सुधन्वाके ऋभु, विभु और वाज नामके तीन पुत्र थे। ऐसी कथा है कि, उन्होंने अपने कर्मके बल देवत्व प्राप्त किया था और साथ ही सूर्य-लोकमें वास भी किया था। प्रथम अष्टकके ११० सूक्तकी २ और ३ मंत्रोंको देखनेसे यही बात मालूम होती है। सायणाचार्यने ऋभु शब्दका एक अर्थ सूर्य किरण भी किया है। मैक्समूलरने ऋभुका अर्थ सूर्य किया है और विल्सन 'सूर्य-रश्मि' अर्थ ही मानते हैं। मैक्समूलरकी यह भी राय है कि, बृबु नामक ऋत्विकने देव-रूपसे, सर्व-प्रथम, ऋभुओंको पूजा था। मैक्समूलर साहबका यह भी कथन है कि, ग्रीकोंके आरफेअस (Orpheus) की कथा भी ग्रीसमें ऋभुगणके समान ही प्रचलित है। ऋभुका एक नाम अर्भुर भी है। जो हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, मनुष्यत्वसे देवत्व प्राप्त करनेके जीते-जागते उदाहरण ऋभुगण हैं।

× जिसमें सोमरस रखा जाता था, उसका नाम चमस था। त्वष्टा विश्वकर्माको कहा जाता है। त्वष्टा ही इन्द्रका वज्र बनाते हैं। त्वष्टाके गुरु ऋभुगण हैं। अश्विनीकुमार त्वष्टाके दौहित्र थे। जिस तरह त्वष्टाकी कन्या सरण्यूने अश्व-रूप

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥
अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥

२१ सूक्त । इन्द्र और अग्निदेवता हैं ।

इहेन्द्राग्नी उपह्वये तयोरित् स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥
ता यज्ञेषु प्रशंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

---

७ ऋभुगण ! तुम हमारी शोभन प्रार्थना प्राप्त कर हमारा सोमरस तैयार करने वालेको तीन तरहके रत्न, एक एक कर, प्रदान करो और उसके सातो गुण तीन बार सम्पादन करो ।*

८ यज्ञके वाहक ऋभुगण मनुष्य-जन्म ले चुकने पर भी अविनाशी आयु प्राप्त किये हुए हैं और अपने सत्कर्म द्वारा देवोंके बीच यज्ञ-भागका सेवन करते हैं ।

---

१ इस यज्ञमें इन्द्र और अग्निका मैं आह्वान करता हूं । उन्हीं लोगोंकी स्तुति किया चाहता हूं । वही इन्द्र और अग्नि विशेष सोमपायी है । आवें, सोमपान करें ।

२ मनुष्यगण ! इस यज्ञमें उन्हीं इन्द्र और अग्निकी प्रशंसा करो और उन्हें सुशोभित करो; उन्हीं दोनोंके उद्देश्यसे गायत्री छन्द द्वारा गाओ ।

३ मित्रदेवकी प्रशंसाके लिये हम इन्द्र और अग्निका आह्वान करते हैं । उन्हीं दोनों सोम-रस-पान-कर्त्ताओंको सोम-पानके लिये आह्वान करते हैं ।

४ उन्हीं दोनों उग्र देवोंको इस सोमरस-संयुक्त यज्ञके पास आह्वान करते हैं । इन्द्र और अग्नि इस यज्ञमें पधारें ।

५ वे महान् और सभा-रक्षक इन्द्र और अग्नि राक्षस-जातिको दुष्टता-शून्य करें । भक्षक राक्षसलोग निःसन्तान हों ।×

६ इन्द्र और अग्नि ! जिस स्वर्ग-लोकमें कर्म-फल जाना जाता है, वहीं इस यज्ञके लिये तुम जागो और हमें सुख प्रदान करो ।

धारण कर अश्विनीकुमारका जन्म दिया था, उसी प्रकार ग्रीकदेवी एरिनिज डिमेटर (Erinys Demeter) ने भी घोड़ीका रूप धारण कर ओरियेन और डिस्पोना नामकी सन्तानोंको पैदा किया था ।

* उत्तम, मध्यम और अधम ——— ये तीन तरह के रत्न हैं । अग्न्याधेय, दर्शपौर्णमास आदि सात हविर्यज्ञ, वैश्वदेव, औपासन होम आदि सात पाक-यज्ञ और अग्निष्टोम, अति अग्निष्टोम आदि सात सोम-यज्ञ कहे जाते हैं । ये तीनों त्रिवर्ग कहे जाते हैं । "सातो गुण तीन बार सम्पादन" करनेका तात्पर्य यही है कि, ऋभु लोग यज्ञ द्वारा ये तीनों सम्पादन करावें ।

× ऋग्वेदमें पहले पहल इसी मन्त्रमें रक्षः या राक्षस शब्द आया है जिससे मालूम होता है कि, जिस आदिम सर्व र

२२ सूक्त। अश्विनीकुमार आदि देवता हैं।

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम्। अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा। अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः। अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये। स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥
अपां नपातमवसे सवितारमुपस्तुहि। तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः। दाता राधांसि शुम्भती ॥ ८ ॥
अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठभारतीम्। वरूत्रीं धिषणां वह ॥ १० ॥

१ पुरोहित! प्रातःसवन-सम्बन्धी युक्त अश्विनीकुमारोंको जगाओ। सोमपानके लिये वे इस यज्ञमें पधारें।

२ जो अश्विनीकुमार सुन्दर रथसे युक्त हैं; रथियोंमें श्रेष्ठ और स्वर्गवासी हैं, उन्हें हम आह्वान करते हैं।

३ अश्विनीकुमार! तुमलोगोंकी जो घोड़ोंके पसीने और ताड़नासे युक्त चाबुक है, उसके साथ आकर इस यज्ञको सोमरससे सिक्त करो।

४ अश्विनीकुमार! सोमरस देनेवाले यजमानके जिस गृहको ओर रथसे जा रहे हो, वह गृह दूर नहीं है।

५ सुवर्ण-हस्तक सूर्यको, रक्षाके लिये, मैं बुलाता हूं। वही देव यजमानको मिलनेवाला पद बता देंगे।*

६ अपने रक्षणके लिये जलको सुखा देनेवाले सूर्यकी स्तुति करो। हम सूर्यके लिये यज्ञ करना चाहते हैं।

७ निवासके कारणभूत अनेक प्रकारके धनोंके विभाजन-कर्त्ता और मनुष्योंके प्रकाश-कर्त्ता सूर्यका हम आह्वान करते हैं।

८ सखालोग! चारों ओर बैठ जाओ। हमें शीघ्र सूर्यकी स्तुति करनी होगी। धन-प्रदाता सूर्य सुशोभित हो रहे हैं।

९ अग्निदेव! देवोंकी अभिलाषा करनेवाली पत्नियोंको इस यज्ञमें ले आओ। सोमपान करनेके लिये त्वष्टाको पास ले आओ।

१० अग्नि! हमारी रक्षाके लिये देव-रमणियोंको इस यज्ञमें ले आओ। युवक अग्नि! देवोंको बुलानेवाली, सर्वदेवोंसे रक्षिता और सत्यनिष्ठा सुबुद्धिको ले आओ।

† [illegible] उसका ही नाम राक्षस है।

* ग्रीकों, रोमनों और पारसियोंमें भी सूर्योपासना प्रचलित थी। ग्रीक लोग सूर्यको हेलिओस और सूर्य-[illegible]को हेलिओस कहते थे। रोमन लोग सोल, ट्यूटन लोग सिर और पारसी लोग खोरसेद कहते थे। पारसी लोग रथवाले सूर्यकी विशेष उपासना करते थे।

अभि नो देवीरवसा महः शर्म्मणा नृपत्नीः । अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥११॥
इहेन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये ॥१२॥
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥
तयोरिद् घृतवत् पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः । गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥
स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म्म सप्रथः ॥ १५ ॥
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्म्माणि धारयन् ॥ १८ ॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥२०॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥२१॥

---

११ अच्छिन्नपक्षा वा अप्रतगामिनी और मनुष्यरक्षिका देवी रक्षण और महान् सुख-प्रदान द्वारा हमारे ऊपर प्रसन्न हों।

१२ अपने मङ्गलके लिये और सोम-पानके लिये इन्द्राणी, वरुणानी और अग्नायी या अग्निपत्नीको हम बुलाते हैं।

१३ महान् द्यु और पृथिवी हमारा यह यज्ञ रससे सिक्त करें और पोषण द्वारा हमें पूर्ण करें।

१४ अपने कर्मके बल द्यु और पृथिवीके बीचमें, मेधावी लोग गन्धर्वोंके निवास-स्थान अन्तरिक्षमें, घीकी तरह, जल पीते हैं।

१५ पृथिवी! तुम विस्तृत, कण्टक-रहित और निवासभूता बनो। हमें यथेष्ट सुख दो।

१६ जिस भू-प्रदेशसे, अपने सातों छन्दों द्वारा विष्णुने विविध पाद-क्रम किया था, उसी भू-प्रदेशसे देवता लोग हमारी रक्षा करें।

१७ वामनावतारधारी विष्णुने इस जगत्की परिक्रमा की थी, उन्होंने तीन प्रकारसे अपने पैर रखे थे और उनके धूलि-युक्त पैरसे जगत् छिपसा गया था।

१८ विष्णु जगत्के रक्षक हैं; उनको आघात करनेवाला कोई नहीं है। उन्होंने समस्त धर्मोंको धारण कर तीन पैरोंका परिक्रम किया था।

१९ विष्णुके कर्मोंके बल ही यजमान अपने व्रतोंका अनुष्ठान करते हैं। उनके कर्मोंको देखो। वे इन्द्रके उपयुक्त सखा हैं।

२० आकाशमें चारों ओर विचरण करनेवाली आंखें जिस प्रकार दृष्टि रखती हैं, उसी प्रकार विद्वान् भी सदा विष्णुके उस परम पदपर दृष्टि रखते हैं।

२१ स्तुतिवादी और मेधावी मनुष्य विष्णुके उस परम पदको अपने हृदयको प्रकाशित करते हैं।

---

* इस सूक्तके सोलहवें मंत्रसे इक्कीसवें मंत्रतक विष्णुके वैभवका विवरण है। १६ वें मंत्रमें "सप्त धामभिः" शब्द [illegible] लोगोंने इन शब्दोंके अनेक अर्थ लगाये हैं; परन्तु हमने "सात छन्दों द्वारा" किये [illegible] है; क्योंकि [illegible]

२३ सूक्त। वायु आदि देवता हैं। गायत्री आदि छन्द हैं।

तीव्राः सोमास आगह्याशीर्वन्तः सुता इमे। वायो तान् प्रस्थितान् पिब ॥ १ ॥
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये। सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती। ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥
वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥
मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये। सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥

---

१ वायुदेव! यह तीखा और छपक सोमरस तैयार है। तुम आओ; वही सोमरस यहां लाया गया है। पान करो।

२ आकाश-स्थित इन्द्र और वायुको, सोम-पानके लिये, हम बुलाते हैं।

३ यज्ञ-रक्षक इन्द्र और वायु मनके समान वेगवान् और सहस्राक्ष हैं। प्रतिभाशाली मनुष्य अपने रक्षणके लिये दोनोंका आह्वान करते हैं।

४ मित्र और वरुण—दोनों शुद्ध-बल-शाली और यज्ञमें प्रादुर्भूत होनेवाले हैं। हम उन्हें सोमरस-पानके लिये, बुलाते हैं।

५ जो मित्र और वरुण सत्यके द्वारा यज्ञकी वृद्धि और यज्ञके प्रकाशका पालन करते हैं, उन लोगोंका मैं आह्वान करता हूं।

६ वरुण और मित्र सब तरहसे हमारी रक्षा करते हैं। वे हमें यथेष्ट सम्पत्ति दें।

७ मरुतोंके साथ, सोम-पानके लिये, हम इन्द्रका आह्वान करते हैं। वे मरुद्गणके साथ तृप्त हों।

८ मरुद्गण! तुम्हारे अन्दर इन्द्र अग्रणी हैं, पूषा या सूर्य तुम्हारे दाता हैं। तुम सब लोग हमारा आह्वान सुनो।

सायणने इसी अर्थको तर्क-सम्मत बताया है। उन्होंने लिखा है कि, "परमेश्वर विष्णुने जिस प्रकार छन्दों द्वारा पृथिवी आदि लोकोंको जीता था, उसका वर्णन तैत्तिरीयशाखाध्यायि-गण इस प्रकार करते हैं —"विष्णु आदि देवोंने छन्दों द्वारा समस्त लोकोंको जीता था; इसी लिये वामनावतारमें विष्णुने पृथिवी-प्रदेशमें ही अपने पैर फैलाये थे"। "भूप्रदेशसे रक्षा करनेका तात्पर्य है, मर्त्यलोकके जीवोंका पाप-निवारण"। हम यहां सायणसे पूर्ण सहमत हैं। १७ वें मंत्रके सम्बन्धमें भी बड़ा मत-द्वैध है। रमानाथ सरस्वतीने लिखा है कि, "मध्य एशियासे भारतवर्ष आते समय आर्योंके अग्रगन्ता विष्णु नामक आर्य-मनुष्य थे। उन्होंने रास्तेमें तीन स्थानपर विश्राम किया था और उनकी तथा अनुगामियोंकी पद-धूलिसे संसार आवृत हो चला था।" इस अर्थका रेवरेण्ड कृष्णमोहन बनर्जीने अपने "Aryan Witness" में जोरोंसे अनुमोदन किया है। इनके मतके ही अधिकांश पाश्चात्य लेखक अनुमोदक हैं। परन्तु आर्य-साहित्य इनकी कल्पनाका अनुमोदन नहीं करता। युक्ति भी इनका साथ नहीं देती।

शाकपुणि आचार्यका मत है कि, विष्णुने पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाशमें तीन प्रकारसे पैर रखे थे। ऐतरेय ब्राह्मण (६।१५) में लिखा है कि, "देवों और असुरोंके बीच जब संसारका बटवारा होने लगा, तब इन्द्रने कहा कि,

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥
विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ १० ॥
जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ॥११॥
हस्काराद्विद्युतस्पर्य्यतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृळयन्तु नः ॥१२॥
आ पूषन् चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् ॥१३॥
पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥१४॥
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥१५॥

---

९ दान-परायण मरुतो ! बली और अपने सहायक इन्द्रके साथ शत्रुका विनाश करो, जिससे दुष्ट शत्रु हमारा मालिक न बन बैठे ।

१० सारे मरुद्देवोंको सोमरस-पानके लिये हम आह्वान करते हैं। वे उग्र और पृश्नि (पृथिवी आकाश या मेघ) की सन्तान हैं ।*

११ जिस समय मरुत् लोग शोभन यज्ञको प्राप्त होते हैं उस समय विजयी लोगोंके नादकी तरह उनका, दर्पके साथ, निनाद होता है ।

१२ प्रकाशमयी बिजलीसे उत्पन्न मरुत् लोग हमारा रक्षण और सुख-विधान करें ।

१३ हे दीप्तिमान् और शीघ्रगन्ता पूषा या सूर्य ! जिस तरह. दुनियामें किसी पशुके खो जानेपर उसे लोग खोज लाते हैं, उसी प्रकार तुम आकाशसे विचित्र कुशोंवाले और यज्ञधारक सोमको ले आओ ।

१४ प्रकाशमान पूषाने गुहामें अवस्थित. छिपा हुआ विचित्र-कुश-सम्पन्न और दीप्तिमान् सोम पाया ।

१५ जिस प्रकार किसान गौओंसे यवका खेत बार-बार जोतता है, उसी प्रकार पूषा भी मेरे लिये. सोमके साथ, क्रमशः छः ऋतु, बार-बार, लाये थे ।

"अपने तीन पैरोंसे विष्णु जितना नाप सकें, उतना संसार देवोंके हिस्से, शेष असुरोंके ।" असुर भी इससे सम्मत हो गये और विष्णुने अपने पाद-विक्रमसे जगत्के साथ ही वेद और वाक्यको भी व्याप्त कर लिया ।" शतपथ ब्राह्मण (१।२।५) में उल्लेख है कि, "असुरोंने कहा कि, "वामनरूप विष्णुके शयन करनेपर जितना स्थान आवृत होगा, उतना देवोंका, शेष असुरोंका" । इस प्रस्तावका देवोंने समर्थन किया और विष्णुने सारे संसारको आवृत कर उसे देवोंको दिलवा दिया ।" इस तरह अनेक प्रमाण हैं, जिनसे रमानाथ सरस्वती आदिकी कल्पना खण्डित होती है ।

मध्य एशियासे भारतवर्ष आनेमें विष्णुने तीन ही स्थानोंपर क्यों विश्राम किया ? क्या इतनी लम्बी यात्रामें तीन ही पड़ाव सम्भव हैं ? क्या विष्णु और उनके चन्द आर्य अनुगामियोंकी पद-धूलिसे संसारका छिप जाना सम्भव है ? इन सब प्रश्नोंका कोई भी उत्तर नहीं है । सत्य तो यह है कि, विष्णु नामक रक्षक भगवान्के तीन पैरोंसे समस्त जगत्का व्याप्त होना, विष्णु द्वारा संसारकी रक्षा होना और विष्णुके वामनावतारकी मूल-कथा स्पष्ट ही वैदिक मंत्रोंमें है । उनके अर्थोंकी खींचा-तानी करना समय नष्ट करना है ।

* १ सायणने पृश्निका अर्थ पृथिवी किया है । ईसासे ५-६ सौ वर्ष पहले बने संस्कृत-कोष (निघण्टु)में पृश्निका अर्थ आकाश है । प्रायः इसी समयमें बने निरुक्तके टीकाकार Roth ने पृश्निका अर्थ मेघ लिखा है । ऋग्वेदके फ्रेञ्च टीकाकार लांग्लोयाने भी मेघ ही अर्थ किया है । फ्रेञ्च भाषामें लिखा है—" Le nuage, ou l' air chargé de nuages."

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १६ ॥
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥२०॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥
इदमापः प्र वहत यत्किञ्च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि। पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥२३॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा। विद्यु मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः॥२४॥

६ अनुवाक। २४ सूक्त। अग्नि प्रभृति देवता हैं। यहांसे ३० सूक्त
तकके अजीगर्त-पुत्र शुनःशेप ऋषि हैं।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥१॥

१६ हम यज्ञ करनेवालोंका मातृ-स्थानीय जल यज्ञ-मार्गसे जा रहा है। यह जल हमारा हितैषी बन्धु है। यह दूधको मीठा बनाता है।

१७ यह जो सारा जल सूर्यके पास है अथवा सूर्य जिस सब जलके साथ है, वह सब जल हमारे यज्ञको प्रेम-पात्र करे।

१८ हमारी गायें जिस जलको पान करती हैं, उसी जलका हम आह्वान करते हैं। जो जल नदी-रूप होकर बह रहा है, उस सबको हव्य देना कर्त्तव्य है।

१९ जलके भीतर अमृत और ओषधि है। हे ऋषि लोग! उस जलकी प्रशंसाके लिये उत्साही बनिये।

२० सोम या चन्द्रमाने मुझसे कहा है कि, उसमें औषधि है, संसारको सुख देने वाली अग्नि है और सब तरहकी दवाएं हैं।

२१ हे जल! मेरे शरीरके लिये रोग-नाशक औषधि पुष्ट करो, ताकि मैं बहुत दिन सूर्यको देख सकूं।

२२ मुझमें जो कुछ दुष्कर्म है, मैंने जो कुछ अन्यायाचरण किया है, मैंने जो शाप दिया है और मैं जो झूठ बोला हूं, हे जल! वह सब धो डालो।

२३ आज स्नानके लिये जलमें पैठता हूं, जलके सारसे सम्मिलित हुआ हूं। हे जल-स्थित अग्नि! आओ। मुझे तेजसे परिपूर्ण करो।

२४ हे अग्नि! मुझे तेज, सन्तान और दीर्घायु दो, ताकि देवता लोग, इन्द्र और ऋषिगण मेरे अनुष्ठानको जान सकें।

१ देवोंमें किस श्रेणीके किस देवताका सुन्दर नाम उच्चारण करूं? कौन मुझे फिर इस पृथिवी पर रहने देगा, जिससे मैं पिता और माताके दर्शन कर सकूं?

* २४ से ३० वें सूक्त तकके ऋषि शुनःशेप ऋषि हैं। उनके सम्बन्धमें ऐतरेय ब्राह्मणको पञ्चम पञ्चिकामें लिखा है कि,

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे ॥ ३ ॥
यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः। अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥
नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ६ ॥

२ देवोंमें पहले अग्निका सुन्दर नाम लेता हूं, वह मुझे इस विशाल पृथिवी पर रहने दें, ताकि मैं माँ-बापके दर्शन कर सकूं।*

३ हे सर्वदा त्राता सूर्य! तुम श्रेष्ठ धनके स्वामी हो; इस लिये तुम्हारे पास उपभोग करने लायक धनकी याचना करता हूं।

४ प्रशंसित, निन्दा-शून्य, द्वेष-रहित और उपभोग योग्य धनको तुम दोनों हाथोंमें धारण किये हुए हो।

५ सूर्यदेव! तुम धन-शाली हो, तुम्हारी रक्षा द्वारा धनकी अति ऊंचाईमें हम रहते हैं।

६ वरुणदेव! ये उड़ने वाली चिड़ियां तुम्हारे समान बल और पराक्रम नहीं प्राप्त कर सकीं। तुम्हारे समान इन्होंने क्रोध भी नहीं प्राप्त किया। निरन्तर विहरणशील जल और वायुकी गति भी तुम्हारे वेगको नहीं लांघ सकी।

हितकेपि ता, राजा हरिश्चन्द्रने रोहितको बलि देनेका प्रस्ताव किया। (पुत्र होने पर उसे वरुणदेवके नाम पर बलि देनेकी प्रतिज्ञा राजा हरिश्चन्द्रने वरुणसे की थी) रोहितने इस प्रस्तावको अस्वीकार किया। इसके अनन्तर शुनःशेपको बलि देनेकी बात पर उनके पिता अजीगर्तको राजी कर लिया गया। शुनःशेप घोर विपत्तिमें पड़े। अन्तको उन्होंने विश्वामित्रसे सम्मति ली। विश्वामित्रने देवोंकी स्तुति करनेकी राय दी। शुनःशेपने मरण-कातर होकर इन सात सूक्तोंमें देवोंकी स्तुति की और इस तरह उन्हें मुक्ति मिली। रामायण, बालकाण्ड, ६१, ६२ अध्यायोंमें उल्लेख है कि, शुनःशेपके पिता ऋचीक (अजीगर्त नहीं) ने शुनःशेपको बलि देनेके लिये अयोध्या-राजके हाथ बेच दिया था। विश्वामित्रके परामर्शानुसार स्तुति करने पर इन्द्रने प्रसन्न हो, शुनःशेपकी प्राण-रक्षा की थी। मनुस्मृति, भागवत, विष्णुपुराण आदिमें भी शुनःशेपकी कथा है। सायणने लिखा है कि, खम्भेमें बांधे जाने पर शुनःशेपने अपने इन सूक्तोंमें देवोंकी स्तुति की थी। राजेन्द्रलाल मित्रने अपने "Indo-Aryan" ग्रन्थमें इन सूक्तोंसे यह नतीजा निकाला है कि, पहले आर्योंमें नर-बलि प्रचलित थी। परन्तु विचार करने पर मित्र महाशय का अनुमान गलत निकलता है; क्योंकि सूक्तोंमें एक आर्त भक्त (शुनःशेप) की स्तुतिके सिवा बलि, विश्वामित्रसे सलाह, स्तम्भ-बन्धन आदिकी कोई बात नहीं है। बलिपर चढ़ने वाला ही आर्त नहीं होता—अत्याचार, विपत्ति आदिमें पड़कर प्रत्येक ईश्वर-भक्त पहले आर्त होता है। अधिक तो क्या प्रत्येक स्तुतिकर्ता आर्त होता है। शुनःशेप भी थे। इसके सिवा ऋग्वेदमें कहीं भी नरबलिका उल्लेख या आभास नहीं है। इसलिये वेदोंमें नर-बलिकी बात दिखाना अनुचित है। जिस ऋग्वेदमें अहिंसा और सोमादिके अभिषव और आसवकी बात है, उसमें नर-बलिकी बात कैसे हो सकती है?

* "पृथिवी पर रहने देनेका" तात्पर्य है दीर्घायु देना और "माँ-बापके दर्शन" का अभिप्राय है माँ-बापकी भक्ति करना या उनको सदा देखते रहना।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥ ७ ॥
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥
शतन्ते राजन् भीषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतञ्चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ९ ॥
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥ १० ॥
तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेलमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ॥ ११ ॥
तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे।
शुनःशेपः यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२ ॥
शुनःशेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥

---

७ पवित्र-बलशाली वरुण आदि-रहित अन्तरिक्षमें रहकर श्रेष्ठ तेजः-पुञ्जको ऊपर ही धारण करते हैं। तेजः-पुञ्जका मुख नीचे और मूल ऊपर है। उसीके द्वारा हमारे प्राण स्थिर रहते हैं।

८ देवराज वरुणने सूर्यके उदय और अस्तके गमनके लिये सूर्यके पथका विस्तार किया है। पाद-रहित अन्तरिक्ष प्रदेशमें सूर्यके पाद-विक्षेपके लिये वरुणने मार्ग दिया है। वह वरुणदेव मेरे हृदयका वेध करने वाले शत्रुका निराकरण करें।

९ वरुणराज! तुम्हारी सैकड़ों-हजारों औषधियां हैं, तुम्हारी सुमति विस्तीर्ण और गम्भीर हो। निर्ऋति या पाप देवताको विमुख करके दूर रखो। हमारे किये हुए पापसे हमें मुक्त करो।

१० ये जो सप्तर्षि नक्षत्र हैं, जो ऊपर आकाशमें संस्थापित हैं और रात्रि आनेपर दिखाई देते हैं, दिनमें कहां चले जाते हैं? वरुणदेवकी शक्ति अप्रतिहत है। उनकी आज्ञासे रात्रिमें चन्द्रमा प्रकाशमान होते हैं।*

११ मैं स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति कर तुम्हारे पास वही परमायु मांगता हूं। हव्य द्वारा यजमान भी उसे ही पानेकी प्रार्थना करता है। वरुण! तुम इस विषयमें उदासीन न होकर ध्यान दो। तुम अनन्त जीवोंके प्रार्थना-पात्र हो। मेरी आयु मत लो।

१२ दिन और रात, सदा लोभमें मुझसे ऐसा ही कहा गया है। मेरा हृदयस्थ ज्ञान भी यही गवाही देता है कि, आबद्ध होकर शुनःशेपने जिस वरुणका आह्वान किया था, वही वरुणराज हम लोगोंको मुक्ति दान करें।

१३ शुनःशेपने धृत और तीन काठोंमें आबद्ध होकर अदितिके पुत्र वरुणका आह्वान किया था; इसी लिये विद्वान् और दयालु वरुणने शुनःशेपको मुक्त किया था, उनका बन्धन छुड़ा दिया था।

---

* इस मंत्रमें "ऋक्षाः" शब्द है, जिसका सायणने सप्त तारा अर्थ किया है। रमेशचन्द्र दत्तने लिखा है कि, ऋच् धातु का अर्थ उज्ज्वल है और इसीसे ऋक्ष शब्द बना है; इस लिये नक्षत्रोंका नाम उज्ज्वल भालू पड़ा और सप्तर्षियों या सप्त ताराओंका भी नाम उज्ज्वल भालू हुआ। यूरोपमें भी इन्हें Great Bear कहा जाता है। मैक्समूलरकी भी यही राय है।

अव ते हेलो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ १४ ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १५ ॥

२५ सूक्त । वरुण देवता हैं ।

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुणव्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥
वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये । वयो न वसतीरुप ॥ ४ ॥
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥
तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

---

१४ वरुण ! नमस्कार करके हम तुम्हारे क्रोधको दूर करते हैं और यज्ञमें हव्य देकर भी तुम्हारा क्रोध दूर करते हैं। हे असुर ! प्रचेतः ! राजन् ! हमारे लिये इस यज्ञमें निवास करके हमारे किये हुए पापको शिथिल करो ।*

१५ वरुण ! मेरा ऊपरी पाश ऊपरसे और नीचेका नीचेसे खोल दो और बीचका पाश भी खोलकर शिथिल करो। अनन्तर हे अदितिपुत्र ! हम तुम्हारे व्रतका खण्डन न करके पापरहित हो जायंगे ।

---

१ जिस तरह संसारके मनुष्य वरुणदेवके व्रतानुष्ठानमें भ्रम करते हैं, उसी तरह हम लोग भी दिन-दिन प्रमाद करते हैं।

२ वरुण ! अनादर कर और घातक बनकर तुम हमारा वध नहीं करना । क्रुद्ध होकर हमारे ऊपर क्रोध नहीं करना ।

३ वरुणदेव, जिस प्रकार रथका स्वामी अपने थके हुए घोड़ोंको शान्त करता है, उसी प्रकार सुखके लिये स्तुति द्वारा हम तुम्हारे मनको प्रसन्न करते हैं।

४ जिस तरह चिड़ियाँ अपने घोसलोंको ओर दौड़ती हैं, उसी तरह हमारी क्रोध-रहित चिन्ताएं भी धन-प्राप्तिकी ओर दौड़ रही हैं।

५ वरुणदेव बलवान् नेता और असंख्य लोगोंके द्रष्टा हैं । सुखके लिये हम कब उन्हें यज्ञमें ले आवेंगे ?

६ पूजा करनेवाले हव्यदाताके प्रति प्रसन्न होकर मित्र और वरुण यह साधारण हव्य ग्रहण करते हैं, त्याग नहीं करते ।

---

* इस मंत्रमें जो असुर शब्द आया है, उससे मालूम पड़ता है कि, आर्य लोग असुरोंको भी देवता मानते थे । कहा जाता है कि, पीछे आर्योंमें झगड़ा हो गया और उनका एक दल फारस चला गया । फारसवाले असुर या अहुरकी पूजा करने लगे और भारतवाले देवकी । उधर पारसी आर्योंने अपने समस्त ग्रन्थोंमें देवोंकी निन्दा की है और भारतीय आर्योंने असुरोंकी । किन्तु सायणाचार्यने यहाँ असुर शब्दका अर्थ "अनिष्ट हटानेवाला" किया है । ऋग्वेदमें शत्रु और दुष्ट अर्थमें बहुत बार असुर शब्दका प्रयोग हुआ है ।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥
वेद वातस्य वर्त्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥
अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वां अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१२ ॥
बिभ्रद्द्रापि हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे ॥१३ ॥
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥

---

७ जो वरुण अन्तरिक्ष-चारी चिड़ियोंका मार्ग और समुद्रकी नौकाओंका मार्ग जानते हैं।

८ जो व्रतावलम्बन करके अपने अपने फलोत्पादक बारह महीनोंको जानते हैं और उत्पन्न होनेवाले तेरहवें मासको भी जानते हैं।*

९ जो वरुणदेव विस्तृत, शोभन और महान् वायुका भी पथ जानते हैं और जो ऊपर, आकाशमें, निवास करते हैं, उन देवोंको भी जानते हैं।

१० धृत-व्रत और शोभनकर्मा वरुण दैवी सन्तानोंके बीच साम्राज्य-संसिद्धिके लिये आकर बैठे थे। ×

११ ज्ञानी मनुष्य वरुणकी कृपासे वर्त्तमान और भविष्यत्—सारी अद्भुत घटनाओंको देखते हैं।

१२ वही सत्कर्मपरायण और अदिति-पुत्र वरुण हमें सदा सुपथगामी बनावें, हमारी आयु बढ़ावें।

१३ वरुण सोनेका वस्त्र धारण कर अपना पुष्ट शरीर ढकते हैं, जिससे चारो ओर हिरण्यस्पर्शी किरणें फैलती हैं।†

१४ जिस वरुणदेवसे शत्रु लोग शत्रुता नहीं कर सकते, मनुष्यपीड़क जिसे पीड़ा नहीं दे सकते और पापी लोग जिस देवके प्रति पापाचरण नहीं कर सकते।

१५ जिन्होंने मनुष्यों, विशेषतः हमारी उदर-पूर्ति के लिये यथेष्ट अन्न तैयार कर दिया है।

---

* पृथिवीकी चारो ओर सूर्यकी गतिसे जो वर्षकी गणना की जाती है, उसमें बारह अमावस्याओंकी गणना करनेसे कई दिन कम हो जाते हैं; इसी लिये सौर और चान्द्र वर्षोंमें सामञ्जस्य करनेके लिये चान्द्र वत्सरके प्रति तृतीय वर्षमें एक अधिक मास, मलमास या मलिम्लुच रखा जाता है। इस मंत्रसे विदित होता है कि, प्राचीन हिन्दू दोनों वर्षोंको जानते थे और दोनोंका समन्वय करना भी जानते थे। ७ वें मंत्रसे यह भी मालूम होता है कि, आर्य लोग आकाश-चारण और समुद्र-विहरण भी जानते थे।

× इन्द्रसे भी अधिक प्रतिष्ठा वरुणकी थी—इन मंत्रोंसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। ग्रीक और पारसी भी वरुण-भक्त हैं। वरुण सम्राट् कहे जाते थे।

† इससे आर्योंका हिरण्य-कवच और स्वर्ण-खचित वस्त्र धारण करना मालूम होता है।

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥१६॥
सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतं। होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७॥
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि। एता जुषत मे गिरः ॥ १८॥
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके॥ १९॥
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि॥ २०॥
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे॥ २१॥

२६ सूक्त। अग्नि देवता हैं।

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते। सेमं नो अध्वरं यज॥ १॥
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः। अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २॥
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये। सखा सख्ये वरेण्यः॥ ३॥

१६ बहुतोंने इस वरुणको देखा है। जिस प्रकार गौएँ गोशालाकी ओर जाती हैं, उसी प्रकार निवृत्तिरहित होकर हमारी चिन्ता वरुणकी ओर जा रही है।

१७ वरुण! चूँकि मेरा मधुर हव्य तैयार है; इसलिये होताकी तरह तुम वही प्रिय हव्य भक्षण करो। अनन्तर हम दोनों बातें करेंगे।

१८ सर्व-दर्शनीय वरुणको मैंने देखा है। भूमिपर, कई बार, उनका रथ मैंने देखा है। उन्होंने मेरी स्तुति ग्रहण की है।

१९ वरुण! मेरा यह आह्वान सुनो। आज मुझे सुखी करो। तुम्हारी रक्षाका अभिलाषी होकर मैं तुम्हें पुकारता हूँ।

२० मेधावी वरुण! तुम द्युलोक, भूलोक और समस्त संसारमें दीप्तिमान् हो। हमारी रक्षा-प्राप्तिके लिये प्रार्थना सुननेके अनन्तर तुम उत्तर दो।

२१ हमारे ऊपरका पाश ऊपरसे खोल दो। मध्य और नीचेका पाश भी खोल दो, ताकि हम जीवित रह सकें। *

---

१ यज्ञपात्र और अन्नपालक अग्निदेव! अपना तेज ग्रहण करो और हमारे इस यज्ञका सम्पादन करो।

२ अग्नि! तुम सर्वदा युवक, श्रेष्ठ और तेजस्वी हो। हमारे होमकर्त्ता और प्रकाशमय वाक्यों द्वारा स्तुत होकर बैठो।

३ श्रेष्ठ अग्निदेव! जिस प्रकार पिता पुत्रको, बन्धु बन्धुको और मित्र मित्रको दान देता है, उसी प्रकार तुम भी मेरे लिये दानपरायण बनो।

* चौबीसवें सूक्तके अन्तिम मन्त्रका और इस मंत्रका भाव एक ही है। दोनोंके अर्थोंसे विदित होता है कि, कोई किसी कारणसे बँधा है और जीनेकी आशासे वरुणसे पाश खोलनेकी विनय कर रहा है। सायण और अन्य सभी टीका-टिप्पणीकारोंका प्रायः ऐसा ही अभिप्राय है। परन्तु दुर्गादास लाहिड़ीने त्रिविध पाशोंको त्रिविध-दुःख-रूपसे बताकर उनके मोचनका तात्पर्य निकाला है। हम लाहिड़ी महाशयका यह अर्थ भी युक्तिसंगत मानते हैं।

आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥ ४ ॥
पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥
यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥
स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥

२७ सूक्त । अग्नि देवता हैं

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥

---

४ शत्रुक्षय मित्र, वरुण और अर्यमा जिस तरह मनुके यज्ञमें बैठे थे, उसी तरह तुम भी हमारे यज्ञके कुशपर बैठो ।

५ हे पुराणहोमसम्पादक, हमारे इस यज्ञ और मित्रतामें तुम प्रसन्न बनो । यह स्तुति-वचन श्रवण करो ।

६ नित्य और विस्तीर्ण हव्य द्वारा हम और-और देवोंका जो यज्ञ करते हैं, वह हव्य तुम्हें ही दिया जाता है ।

७ सर्व-प्रजा-रक्षक, होम-सम्पादक, प्रसन्न और वरेण्य अग्नि हमारे प्रिय हों, ताकि हम भी शोभन अग्निसे संयुक्त हो कर तुम्हारे प्रिय बनें ।

८ चूँकि शोभनीय अग्निसे युक्त और दीप्तिमान् ऋत्विक् लोगोंने हमारा श्रेष्ठ हव्य धारण किया है; इसलिये हम शोभन अग्निसे संयुक्त होकर याचना करते हैं ।

९ अग्निदेव ! तुम अमर हो और हम मरणशील मनुष्य हैं । आओ, हम परस्पर प्रशंसा करें ।

१० बलके पुत्र अग्नि ! तुम सब अग्नियोंके साथ यह यज्ञ और स्तोत्र ग्रहण करके अन्न प्रदान करो ।

---

१ अग्निदेव ! तुम पुच्छयुक्त घोड़ेके समान हो, साथ ही यज्ञके सम्राट् भी हो । हम स्तुति द्वारा तुम्हारी वन्दना करनेमें प्रवृत्त हुए हैं ।

२ अग्नि बलके पुत्र और स्थूल-गमन हैं । वे हमारे ऊपर प्रसन्न हों । हमारी अभिलषित वस्तुका वर्षण करें ।

३ सर्वत्र-गामी अग्नि ! तुम दूर और सन्निकट देशमें पापाचारी मनुष्यसे हमारी सर्वदा रक्षा करो ।

४ अग्नि ! तुम हमारे इस हव्यकी बात और इस अभिनव गायत्रीछन्दमें विरचित स्तोत्रकी बात देवोंसे कहना ।

५ परम (दिव्य लोकका), मध्यम (अन्तरिक्षका) और अन्तिकस्थ (पृथिवीका) धन प्रदान करो ।

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ। सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८ ॥
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० ॥
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११ ॥
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ १२ ॥
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमावृक्षि देवाः ॥ १३ ॥

२८ सूक्त। इन्द्र आदि देवता हैं।

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥

---

६ विलक्षण-किरण अग्नि! सिंधुके पास तरङ्गकी तरह तुम धनके विभागकर्ता हो। हव्यदाताको तुम शीघ्र कर्मफल प्रदान करो।

७ अग्नि! युद्ध-क्षेत्रमें तुम जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, जिसे तुम रणाङ्गणमें भेजते हो, वह नित्य अन्न प्राप्त करेगा।

८ रिपु-दमन अग्नि! तुम्हारे भक्तपर कोई आक्रमण नहीं कर सकता; क्योंकि उसके पास प्रसिद्ध शक्ति है।

९ समस्त-मानव-पूजित अग्निने घोड़ेके द्वारा हमें युद्धसे पार करा दिया। मेधावी ऋत्विकोंके कर्मके फलदाता हो।

१० अग्नि! प्रार्थना द्वारा तुम आओ। विविध यजमानोंपर कृपा करके यज्ञानुष्ठानके लिये यज्ञमें प्रवेश करो। तुम रुद्र या उग्र हो। रुचिकर स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करते हैं।

११ अग्नि विशाल, असीम-धूम-केतु और प्रभूत-दीप्ति-सम्पन्न हैं। अग्नि हमारे यज्ञ और अन्नमें प्रसन्न हों।

१२ अग्नि प्रजा-रक्षक, देवोंके होता, देवदूत, स्तोत्र-पात्र और प्रौढ़-किरणवाले हैं। वह धनी लोगोंकी तरह हमारी स्तुति सुनें।

१३ बड़े, बालक, युवक और वृद्ध देवोंको नमस्कार करते हैं। हो सकेगा, तो हम देवोंकी पूजा करेंगे। देवगण! हम वृद्ध देवोंकी स्तुति न छोड़ दें।

---

१ जिस यज्ञमें सोमरस चुआनेके लिये स्थूलमूल पत्थर उठाये जाते हैं, हे इन्द्र! उसी यज्ञमें ओखलसे तैयार किया हुआ सोमरस, अपना जानकर, पान करो।

२ जिस यज्ञमें सोम कूटनेके लिये दो फलक, जाँघोंकी तरह, विस्तृत हुए हैं, उसी यज्ञमें ओखल द्वारा प्रस्तुत सोमरस अपना जानकर, पान करो।

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे । इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥५॥
उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् । अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥६॥
आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः । हरी इवान्धांसि बप्सता ॥७॥
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः । इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥८॥
उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ॥९॥

---

३ जिस यज्ञमें यजमान-पत्नी बैठती और वहाँसे बाहर निकलती रहती है, इन्द्र ! उसी यज्ञमें ओखल द्वारा तैयार सोमरस, अपना जानकर, पान करो ।*

४ जिस यज्ञमें लगामकी तरह रस्सीसे मन्थन-दण्ड बाँधा जाता है, उसी यज्ञमें इन्द्र ! ओखल द्वारा प्रस्तुत सोमरस, अपना जानकर, पान करो ।

५ ओखल ! यद्यपि घर-घर तुमसे काम लिया जाता है, तो भी इस यज्ञमें विजयी लोगोंकी दुन्दुभिकी तरह तुम ध्वनि करते हो ।

६ हे ओखल-रूप काष्ठ ! तुम्हारे सामने वायु बहती है; इसलिये ओखल ! इन्द्रके पानके लिये सोमरस तैयार करो । ×

७ हे अन्न-दाता यज्ञके दोनों साधन ओखल और मूसल ! जिस प्रकार अपना खाद्य चबाते समय इन्द्रके दोनों घोड़े ध्वनि करते हैं, उसी प्रकार तुमुल ध्वनिसे युक्त होकर तुम लोग बार-बार विहार करते हो ।

८ हे उच्च दोनों काष्ठ (ओखल और मूसल) ! दर्शनीय अभिषव-मंत्र द्वारा आज तुम लोग इन्द्रके लिये मधुर सोमरस प्रस्तुत करो ।

९ हे ऋत्विक् ! दोनों अभिषव-फलकों (पात्र-विशेष) से अवशिष्ट सोम उठाओ, उसे पवित्र कुशके ऊपर रखो । अनन्तर उसे गो चर्म-(निर्मित पात्र) पर रखो ।

---

* "उलूखल-मूसल या मोटी लकड़ीके मूसलसे सोमलता कूटी जाती थी । अनन्तर वह दो काष्ठोंकी तरह अभिषव-पात्रोंमें रखी जाती थी । फिर यजमान-पत्नी रस्सीसे मथानी पकड़ कर सोम-मन्थन करती थी । सोमरस तैयार होनेपर इन्द्रको दिया जाता था । बचा हुआ चालनीसे छानकर दो चमस-पात्रोंमें रखा जाता था । अनन्तर वह गो-चर्मपर रखा जाता था ।"—सायण भाष्यकी ।

× इस मंत्रसे मालूम होता है कि, काठकी ओखल बनती थी ।

२९ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥
शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
निष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र संशय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वं ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

---

१ हे सोमपायी और सत्यवादी इन्द्र ! यद्यपि हम कोई धनी नहीं हैं, तो भी, हे बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशस्त धनवान् करो ।

२ शक्तिशाली, सुन्दर नाकवाले और अन्नरक्षक इन्द्र ! तुम्हारी दया चिरस्थायिनी है । बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशंसनीय करो ।

३ जो दोनों यम-दूतियाँ आपसमें देखती हैं, उन्हें सुलाओ; वे बेहोश रहें । बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशंसनीय करो ।

४ शूर ! हमारे शत्रु सोये रहें और मित्र जागे रहें । बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ोंसे हमें प्रशस्त बनाओ ।

५ इन्द्र ! यह गर्दभ-रूप शत्रु पाप या वचन द्वारा तुम्हारी निन्दा करता है, इसे वध करो । बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ोंसे हमें धनी बनाओ ।

६ विरुद्ध वायु, कुटिल गतिके साथ, वनसे दूर जाय । बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें धनी बनाओ ।

७ सब तरह कलपनेवालोंका वध करो । हिंसकोंका विनाश करो । बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशंसनीय (धनवान्) करो ।

३० सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिरां । एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥
योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥
आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥
तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥
अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नां । सखे वज्रिन्त् सखीनाम् ॥ ११ ॥

---

१ संसारमें जिस प्रकार कूएँको जल-पूर्ण कर दिया जाता है, उसी प्रकार हम, अन्नाकांक्षी होकर यजमानो, तुम्हारे स यज्ञ करनेवाले और अतिवृद्ध इन्द्रको सोमरससे सेचन करते हैं।

२ जिस प्रकार जल स्वयं नीचे जाता है, उसी प्रकार इन्द्र सैकड़ों विशुद्ध सोमरस और "आशीर" नामक सहस्र अपन द्रव्यसे युक्त सोमरसके पास आते हैं।

३ यह अनन्त प्रकार सोमबली इन्द्रको प्रसन्नताके लिये इकट्ठा होता है। इसके द्वारा इन्द्रका उदर समुद्रकी तरह व्याप्त होता है।

४ जिस प्रकार कपोत या कबूतर गर्भिणो कपोतीको ग्रहण करता है, उसी प्रकार, हे इन्द्र! यह सोम तुम्हारा है, तुम भी इसे ग्रहण करो; और, इसी कारण हमारा वचन ग्रहण करो।

५ धन-रक्षक और स्तोत्र-पात्र इन्द्र! तुम्हारा ऐसा स्तोत्र तुम्हारा प्रतिभा-प्रिय और सत्य हो।

६ शतक्रतु! इस समरमें हमारी रक्षाके लिये उत्सुक बनो। दूसरे कार्यके सम्बन्धमें हम दोनों मिल कर विचार करेंगे।

७ विभिन्न कर्मोंके प्रारम्भमें, विविध युद्धोंमें हम, अत्यन्त बली इन्द्रको, रक्षाके लिये, सखाकी तरह बुलाते हैं।

८ यदि इन्द्र हमारा आह्वान सुनेंगे, तो निश्चय हो हजारों ऐसी शक्ति और धन-शक्तिके साथ हमारे निकट आवेंगे।

९ इन्द्र बहुतोंके पास जाते हैं। पुरातन निवास या स्वर्गसे मैं उस पुरुषका आह्वान करता हूं, जिसे पहले पिता बुला चुके हैं।

१० इन्द्र! तुम्हें सब चाहते हैं, तुम्हें असंख्य लोग बुला चुके हैं। तुम सखा और निवासके कारण हो। मैं प्रार्थना करता हूँ कि, तुम अपने स्तोताओंपर अनुग्रह करो।

११ हे सोमपायी, सखा और वज्रधारी इन्द्र! हम भी तुम्हारे सखा और सोमपायी हैं। हमारी दीर्घ नासिकावाली गौओंको बढ़ाओ।

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥
आ घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥
आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥
शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
समान योजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥
न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥

---

१२ सोमपायी, सखा और वज्रधर इन्द्र ! तुम ऐसे बनो, तुम इस तरह आचरण करो, जिससे हम मंगलार्थ तुम्हारी अभिलाषा करें ।

१३ इन्द्रके हमारे ऊपर प्रसन्न होनेपर हमारी गायें दूधवाली और पर्याप्त-शक्ति-सम्पन्न होंगी । गायोंसे खाद्य प्राप्त कर हम भी प्रसन्न होंगे ।

१४ हे साहसी इन्द्र ! तुम्हारे समान कोई भी देवता प्रसन्न होकर, हमारे द्वारा याचित होकर, स्तोताओंके लिये अवश्य ही अभीष्ट धन ले आ देंगे । वह उसी प्रकार धन देंगे, जिस प्रकार घोड़े रथके दोनों चक्रोंके अक्षको घुमा देते हैं ।*

१५ हे शतक्रतु इन्द्र ! जिस तरह शकटकी गति अक्षको घुमाती है, उसी प्रकार तुम कामनाके अनुसार स्तोताओंको धन अर्पण करो ।

१६ इन्द्रके जो घोड़े खा लेनेके बाद फर-फर-शब्दके साथ हिनहिनाते और घहराता साँस फेंकते हैं, उन्हींके द्वारा इन्द्रने सदा धन जीता है । कर्मठ और दान-परायण इन्द्रने हमें सोनेका रथ दिया था ।

१७ अश्विनीकुमारद्वय ! अनेक घोड़ोंसे प्रेरित अन्नके साथ आओ । शत्रुसंहारी ! हमारे घरमें गायें और सोना आवें ।

१८ शत्रु-नाशक अश्विनीकुमारद्वय ! तुम दोनोंके लिये तैयार रथ विनाश-रहित है; वह समुद्र या अन्तरिक्षमें जाता है ।

१९ अश्विनीकुमारो ! तुमने अपने रथका एक चक्का अविनाशी पर्वतके ऊपर स्थिर किया है और दूसरा आकाशकी चारो ओर घूम रहा है ।

२० हे स्तुति-प्रिय अमर उषा ! तुम्हारे संभोगके लिये कौन मनुष्य है ? हे प्रभाव-सम्पन्न ! तुम किसे प्राप्त होगी ?

---

* रोसने यहाँ इस उपमाको इस तरह लिखा है—"As a wheel is brought to a chariot." रोसेनने लिखा है—"Currum velut duabus rotis." सायणने लिखा है—"यथाक्षं प्रक्षिपन्ति तद्वत् ।"

वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥

७ अनुवाक । ३१ सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

यहाँसे ३५ सूक्ततकके ऋषि अङ्गिराके पुत्र हिरण्यस्तूप हैं ।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥२॥
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥ ३ ॥
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥ ४॥

---

२१ हे व्यापक और विचित्र-प्रकाशवती उषा ! हम दूर या पाससे तुम्हें नहीं समझ सकते ।

२२ हे स्वर्ग-पुत्री ! उस अन्नके साथ तुम आओ, हमें धन प्रदान करो । *

१ अग्नि ! तुम अङ्गिरा ऋषि लोगोंके आदि ऋषि थे । देवता होकर देवोंके कल्याण-वाही सखा थे । तुम्हारे ही कर्मसे मेधावी, ज्ञात-कार्य और शुभ्रशस्त्र मरुद्गणने जन्म ग्रहण किया था ।

२ अग्नि ! तुम अङ्गिरा लोगोंमें प्रथम और सर्वोत्तम हो । तुम मेधावी हो और देवोंका यज्ञ विभूषित करते हो । तुम सारे संसारके विभु हो; तुम मेधावी और द्विमातृक (दो काठोंसे उत्पन्न) हो । मनुष्योंके उपकारके लिये विभिन्न रूपोंमें सर्वत्र वर्तमान हो ।

३ अग्नि ! तुम मातरिश्वा या वायुके अग्रगामी हो । तुम शोभन यज्ञकी अभिलाषासे सेवक यजमानके निकट प्रकट हो जाओ । तुम्हारी शक्ति देख कर आकाश और पृथ्वी काँप जाती है । तुम्हें होता माना गया है; इसलिये तुमने यज्ञमें उस भारको वहन किया है । हे आवास-हेतु अग्नि ! तुमने पूजनीय देवोंका यज्ञ निष्पन्न किया है ।

४ अग्नि ! तुमने मनुको स्वर्ग-लोककी कथा सुनायी थी । तुम परिचर्या करनेवाले पुरुरवा राजाको अनुगृहीत करनेके लिये अत्यन्त शुभफल-दायक हुए थे । जिस समय अपने पितृ-रूप दो काष्ठोंके घर्षणसे तुम उत्पन्न होते हो, उस समय तुम्हें ऋत्विक् लोग वेदीको पूर्व तरफ ले जाते हैं । अनन्तर तुम्हें पश्चिम तरफ ले जाया जाता है ।

---

* ग्रीकोंमें इओस, यूरुपा, एथेना आदि उषाके कई नाम हैं । लाटिन-भाषी उषाको मिनर्वा कहते हैं । आर्योंकी नकलपर ग्रीक आदि भी उषाके विषयमें कहानियाँ बनाये हुए हैं और उषा-भक्त हैं ।

त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥ ५ ॥
त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ॥ ६ ॥
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥ ७ ॥
त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः।
तनूकृद्बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९ ॥
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयं।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥ १० ॥
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम्।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥ ११ ॥

---

५ अग्नि! तुम इप्सित-फल-दाता और पुष्टिकारक हो। स्रुच या यज्ञ-पात्र उठानेके समय यजमान तुम्हारा यश गाता है। जो यजमान तुम्हें वषट्कारसे युक्त आहुति प्रदान करता है, हे एक मात्र अन्नदाता अग्नि! उसे तुम पहले, और, पीछे समस्त लोकको प्रकाश देते हो।

६ विशिष्ट-ज्ञान-शाली अग्नि! तुम कुमार्ग-गामी पुरुषको उसके उद्धार-योग्य कार्यमें नियुक्त करो। युद्धकी चारो ओर विस्तृत और अच्छी तरह प्रारम्भ होनेपर तुम अल्प-संख्यक और वीरता-विहीन पुरुषोंके द्वारा बड़े-बड़े वीरोंका भी वध करते हो।

७ अग्नि! तुम अपने उस सेवक मनुष्यको, अनुदिन अन्नके लिये, उत्कृष्ट और अमर पदपर प्रतिष्ठित करते हो। जो स्वर्ग-लोक और जन्मान्तरकी प्राप्ति या उभय-रूप जन्मके लिये अतीव पिपासु है, उस ज्ञानी यजमानको सुख और अन्न दो।

८ अग्नि! हम धन-लाभके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम यशस्वी और यज्ञ-कर्ता पुत्र दान करो। नये पुत्रके द्वारा यज्ञ-कर्मकी हम वृद्धि करेंगे। हे द्यु और पृथिवी! देवोंके साथ हमें सुचारु-रूपसे बचाओ।

९ निर्दोष अग्निदेव! तुम सब देवोंमें जागरूक हो। अपने पितृ-मातृ-रूप द्यावा-पृथिवीके पास रह कर और हमें पुत्र दान करके अनुग्रह करो। यज्ञ-कर्ताके प्रति प्रसन्न-बुद्धि बनो। कल्याण-वाही अग्नि! तुम यजमानके लिये संसारका सब तरहका अन्न प्रदान करो।

१० अग्नि! तुम हमारे लिये प्रसन्न-मति हो; तुम हमारे पितृ-रूप हो। तुम परमायुके दाता हो; हम तुम्हारे बन्धु हैं। हिंसारहित अग्नि! तुम शोभन पुरुषोंसे युक्त और व्रत-पालक हो। तुम्हें सैकड़ों-हजारों धन प्राप्त हों।

११ अग्नि! देवोंने पहले पुरुरवाके मानवरूपधारी पौत्र नहुषका तुम्हें मनुष्यशरीरवान् सेनापति बनाया। साथ ही उन्होंने इळाको मनुकी धर्मोपदेशिका भी बनाया था। जिस समय मेरे पिता अङ्गिरा ऋषिके पुत्र-रूपसे तुमने जन्म ग्रहण किया था।

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्षतन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥ १२ ॥
त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥ १३ ॥
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः ॥ १४ ॥
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥ १५ ॥
इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥ १७ ॥

---

१२ वन्दनीय अग्नि ! हम धनवान् हैं । तुम रक्षण-शक्ति द्वारा हम लोगोंको और हमारे पुत्रोंकी देहकी रक्षा करो । हमारा पौत्र तुम्हारे व्रतमें निरन्तर नियुक्त है । तुम उसकी गौओंकी रक्षा करो ।

१३ अग्नि ! तुम यजमान-रक्षक हो । यज्ञको बाधा-शून्य करनेके लिये पासमें रह कर यज्ञको चारों ओर दीप्तिमान् हो । तुम अहिंसक और पोषक हो । तुम्हें जो हव्य दान करता है, उस स्तोत्र-कर्ताके मंत्रको तुम ध्यानसे ग्रहण करते हो ।

१४ अग्नि ! तुम्हारा स्तोता ऋत्विक् जैसे अभिलषित और परम धन प्राप्त करे, वैसी तुम इच्छा करो । संसार कहता है कि, तुम पालनीय या दुर्बल यजमानके लिये प्रसन्न-मति पितृ-स्वरूप हो । तुम अत्यन्त परिज्ञाता हो । अज्ञ यजमानको शिक्षा दो । साथ ही सब दिशाओंका निर्णय भी कर दो ।

१५ अग्नि ! जिस यजमानने ऋत्विकोंको दक्षिणा दी है, उस पुरुषकी तुम सिलाई किये हुए कवचकी तरह, अच्छी तरह, रक्षा करो । जो यजमान सुस्वादु अन्न द्वारा अतिथियोंको सुखी करके अपने घरमें जीव-तृप्तिकारी या जीवों द्वारा निष्पाद्य यज्ञानुष्ठान करता है, वह स्वर्गीय उपमाका पात्र होता है । ×

१६ अग्नि ! हमारे इस यज्ञ-कार्यकी भ्रान्तिको क्षमा करो और बहुत दूरसे आकर इस कुमार्गमें जो पड़ गया है, उसे क्षमा करो । सोमका यज्ञ करनेवाले मनुष्योंके लिये तुम सरलतासे प्राप्य हो, पितृ-तुल्य हो, प्रसन्न-मति और कर्म-निर्वाहक हो । उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दो ।

१७ पवित्र अग्निदेव ! हे अङ्गिरा ! मनु, अङ्गिरा, ययाति और अन्यान्य पूर्व-पुरुषोंकी तरह तुम सम्मुखवर्ती होकर यज्ञदेशमें गमन करो, देवोंको ले आओ, उन्हें कुशोंपर बैठाओ और अभीष्ट हव्य दान करो ।

× मूलमें जो "जीवयाजम्" शब्द है, उसका दो तरहसे सायणने अर्थ किया है—पशु-बलि-युक्त और जीव-निष्पाद्य । प्रायः अन्य सभी वेदटीकाकारोंने पशु-बलि ही अर्थ किया है । के० एम० बनर्जीने "Animal sacrifices" (पशु-बलि), विल्सनने "sacrifice of life" (जीव-) और राजेन्द्र लाल मित्रने गोहनन अर्थ किया है । परन्तु गोहनन अर्थ तो बिलकुल वाहियात है । यज्ञका एक नाम तो अध्वर या हिंसा-राहित्य भी है । जो हो, यहाँ "जीव-निष्पाद्य" अर्थ ही ठीक जँचता है।

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृम विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ ॥

३२ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आसायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥
यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोतमायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्नाशत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां संरुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

---

१८ अग्नि ! इस मंत्रसे वृद्धिको प्राप्त हो । अपनी शक्ति और ज्ञानके अनुसार हमने तुम्हारी स्तुति की । इसके द्वारा हमें विशेष धन दो और हमें अन्न-सम्पन्न शोभन बुद्धि प्रदान करो ।

---

१ वज्रधारक इन्द्रने पहले जो पराक्रमका कार्य किया था, उसी कार्यका हम वर्णन करते हैं । इन्द्रने मेघका वध किया था । अनन्तर उन्होंने वृष्टि की थी । प्रवहमाना पार्वत्य नदियोंका मार्ग भिन्न किया था ।

२ इन्द्रने पर्वतपर आश्रित मेघका वध किया था । विश्वकर्मा या त्वष्टाने इन्द्रके लिये दूरवेधी वज्रका निर्माण किया था । अनन्तर जिस तरह गाय वेगवती होकर अपने बछड़ेकी ओर जाती है, उसी तरह धारावाही जल सवेग समुद्रकी ओर गया था ।

३ बैलकी तरह वेगके साथ इन्द्रने सोम ग्रहण किया था । त्रिकद्रुक यज्ञ अर्थात् ज्योतिष्टोम, गोमेध और आयु नामक त्रिविध यज्ञोंमें चुआया हुआ सोमका इन्द्रने पान किया था । धनवान् इन्द्रने वज्रका सायक ग्रहण किया था और उसके द्वारा अहियों या मेघोंके अग्रजको मारा था ।

४ जिस समय तुमने मेघोंके अग्रजको मारा था, उस समय तुमने मायावियोंकी मायाका विनाश किया था । अनन्तर सूर्य, उषा और आकाशका प्रकाश किया । अन्तको तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहा ।

५ संसारमें आवरण या अन्धकार करनेवाले वृत्रको महाध्वंसकारी वज्र द्वारा, छिन्न-बाहु करके विनष्ट किया था । कुठारसे काटे हुए वृक्ष-स्कन्धकी तरह अहि या वृत्र पृथिवीपर पड़ा हुआ है ।

६ दर्पान्ध वृत्रने पृथिवीपर अपने समान योद्धा न समझ कर महावीर, बहुध्वंसक और शत्रुजयी इन्द्रको युद्धमें आह्वान किया था । इन्द्रके विनाशकार्यसे वृत्र त्राण नहीं पा सका । इन्द्र-शत्रु वृत्रने नदीमें गिर कर नदियोंको भी पीस दिया ।

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ७ ॥
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अतियन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव ॥ ८
नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपांबिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११ ॥
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयोगा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥

७ हाथ और पैरसे रहित वृत्रने युद्धमें इन्द्रको बुलाया था। इन्द्रने गिरि-सानु-तुल्य प्रौढ़ स्कन्धमें वज्र मारा था। जिस प्रकार वीर्य-हीन मनुष्य पौरुषशाली मनुष्यकी समानता करनेका व्यर्थ यत्न करता है, उसी प्रकार वृत्रने भी वृथा यत्न किया। अनेक स्थानोंमें क्षत-विक्षत होकर वृत्र पृथिवीपर गिर पड़ा।

८ जिस तरह भग्न तटोंको लाँघ कर नद बहता है, उसी तरह मनोहर जल, पतित वृत्रकी, देहको अतिक्रम करके आ रहा है। जीवितावस्थामें अपनी महिमा द्वारा वृत्रने जिस जलको बद्ध कर रखा था, इस समय वृत्र उसी जलके पद-देशके नीचे सो गया।

९ वृत्रकी माता वृत्रकी रक्षाके लिये उसकी देहपर टेढ़ी गिरी थी; परन्तु उस समय इन्द्रने उसके नीचेके भागपर अस्त्र-प्रहार किया। तब माता ऊपर और पुत्र नीचे हो रहा। अनन्तर बछड़ेके साथ गायकी तरह वृत्रकी माता 'दनु' अनन्त निद्रामें सो गयी।

१० स्थिति-शून्य, विश्राम-रहित, जलमध्य-निहित और नाम-विरहित शरीरके ऊपरसे जल बहता चला आ रहा है और इन्द्र-द्रोही वृत्र अनन्त निद्रामें पड़ा हुआ है।

११ पणि नामक असुर द्वारा जैसे गायें गुप्त थीं, उसी तरह वृत्रकी स्त्रियाँ भी मेघ द्वारा रक्षित होकर निरुद्ध थीं। जलका वाहक द्वार भी बन्द था। वृत्रका वध कर इन्द्रने उस द्वारको खोला था।

१२ इन्द्र! जब उस एक देव वृत्रने तुम्हारे वज्रके ऊपर आघात किया था, तब तुमने घोड़ेकी पूँछकी तरह होकर उसका निवारण कर दिया था। तुमने पणिकी छिपायी गायको भी जीत लिया था, त्वष्टाके सोमरसको जीता था और गङ्गा आदि सात सिन्धुओं या नदियोंके प्रवाहको अप्रतिहत किया था।×

× इस मंत्रमें असुर वृत्रके लिये जो देव शब्दका व्यवहार हुआ है, उससे विदित होता है कि, तब असुरोंको भी देव कहा जाता था। त्वष्टाको जीत कर इन्द्रका सोम-रस-पान भी प्रसिद्ध है।

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परिता बभूव ॥१५ ॥

---

१३ जिस समय इन्द्र और वृत्रमें युद्ध हुआ था, उस समय वृत्रने जिस बिजली, मेघ-ध्वनि, जल-वृष्टि और वज्रका इन्द्रके प्रति प्रयोग किया था, वह सब इन्द्रको नहीं छू सके। साथ ही इन्द्रने वृत्रकी अन्य मायाएँ भी जीत ली थीं।

१४ इन्द्र! वृत्र-हननके समय जब तुम्हारे हृदयमें भय नहीं हुआ था, तब तुमने किसी अन्य वृत्र-हन्ताकी क्या प्रतीक्षा की थी या सहायक खोजा था? निर्भीक श्येन पक्षीकी तरह तुम निन्यानवे नदियाँ और जल पार गये थे। १

१५ शत्रु-विनाशके अनन्तर वज्रबाहु इन्द्र स्थावरों, जंगमों, शान्त पशुओं और शृङ्गी पशुओंके राजा हुए थे। इन्द्र मनुष्योंमें राजा होकर निवास कर रहे हैं। जिस प्रकार चक्र-नेमि अरपरम्परा काष्ठोंको धारण करती है, उसी प्रकार इन्द्रने भी अपने बीच सबको धारण किया था।

द्वितीय अध्याय समाप्त

३ अध्याय।

—:#:—

७ अनुवाक (आवृत्त)। ३३ सूक्त। इन्द्र देवता हैं। छन्द त्रिष्टुप् है।

एतायामोपगव्यन्त इन्द्रमस्माकं सुप्रमतिं वावृधाति।
अनामृणः कुविदादस्य राया गवां केतं परमावर्जते नः॥१॥
उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो ऽअस्ति यामन॥२॥
नि सर्वसेन इषुधीं रक्तस समर्यो गा ऽअजति यस्य वष्टिम्।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध॥३॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ ऽएकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः॥४॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँऽ अधमो रोदस्योः॥५॥

---

१ आओ, हम गाय पानेकी इच्छासे इन्द्रके पास चलें। इन्द्र हिंसा-रहित हैं और हमारी प्रकृष्ट बुद्धिका परिवर्द्धन करते हैं। अन्तको वह इस गोस्वरूप धनके विषयमें हमें उच्च ज्ञान प्रदान करते हैं।

२ जिस प्रकार श्येन पक्षी अपने पूर्व-सेवित नीड़की तरफ दौड़ता है, उसी प्रकार मैं भी उपमानस्थानीय स्तोत्रोंसे, पूजन करके धनदाता और अप्रतिहत इन्द्रकी ओर दौड़ता हूँ। युद्ध-वेलामें इन्द्र स्तोताओंके आराध्य हैं।

३ समस्त सेनापति पीठपर धनुष लगाये हुए हैं। स्वामि-स्वरूप इन्द्र जिसे चाहते हैं, उसके पास गाय भेज देते हैं। उच्चबुद्धि-वाली इन्द्र! हमें भरपूर धन देकर हमारे पास व्यापारी नहीं बनना अर्थात् गायकी कीमत नहीं माँगना। *

४ इन्द्र! शक्तिशाली मरुतोंसे संयुक्त रहकर भी तुमने अकेले ही धनवान् और चोर वृत्रका कठिन वज्र द्वारा वध किया था। यज्ञ-शत्रु वृत्रानुचरोंने तुम्हारे धनुषसे विनाशका उद्देश करके पहुँच कर मृत्यु प्राप्त की।

५ इन्द्र! वे यज्ञ-रहित और यज्ञका अनुष्ठान करनेवालोंके विरोधी सिर घुमाकर भाग गये हैं। हे हरि नामके घोड़ों वाले, पलायन-विरहित और उग्र इन्द्र! तुमने दिव्य लोक, आकाश और पृथिवीसे व्रत-विरहित लोगोंको उठा दिया है।

---

* मूल मंत्रके अर्थ शब्दका सायणाचार्यने "स्वामिरूप" अर्थ किया है। मैक्समूलर आदिने अर्य और आर्य शब्दोंका अर्थ कृषक किया है। मैक्समूलरकी राय है कि, आर्योंकी अबाध गति और आधिपत्यके परिचायक ईरान, अर्मनी, अलबानिया, आयरल, आरियाई, आयर्लैण्ड वा एरिन आदि स्थान-नाम हैं।

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥६॥
त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्रसुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥७॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
नहिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥८॥
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँऽ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥९॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥११॥
न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥१२॥

---

६ इन्होंने निर्दोष इन्द्रकी सेनाके साथ युद्ध करनेकी इच्छा की थी । चरित्रवान् मनुष्योंने इन्द्रको प्रोत्साहित किया था। शूरोंके साथ जिस प्रकार युद्ध ठान कर नपुंसक भाग जाते हैं, उसी प्रकार वे भी इन्द्र द्वारा निराकृत होकर और अपनी शक्तिहीनता समझ कर इन्द्रके पाससे सहज-मार्गसे दूर भाग गये ।

७ इन्द्र ! तुमने हास्यासक्तोंको अन्तरिक्षमें युद्ध-दान किया है । दस्यु वृत्रको दिव्य लोकसे लाकर अच्छी तरह दग्ध किया है । इसी प्रकार सोम तैयार करनेवालों और स्तोताओंकी स्तुति-रक्षा की है ।

८ उन वृत्रानुचरोंने पृथिवीको आच्छादन कर डाला था; और, सुवर्ण और मणियोंसे भी वे सम्पन्न हुए थे । परन्तु वे इन्द्रको नहीं जीत सके । इन्द्रने उन विघ्नकर्त्ताओंको सूर्य द्वारा तिरोहित कर डाला था ।

९ इन्द्र ! चूँकि तुमने महिमा द्वारा द्युलोक और भूलोकको सम्पूर्ण रूपसे वेष्टन करके सारा भोग किया है; इसलिये तुमने मन्त्रार्थ-ग्रहण करनेमें असमर्थ यजमानोंकी भी रक्षा करनेमें समर्थ मन्त्रों द्वारा वृत्र-रूप चोरको निःसारित किया था ।

१० जब कि, दिव्य लोकसे जल पृथिवीपर नहीं प्राप्त हुआ और धन-प्रद भूमिको उपकारी द्रव्य द्वारा पूर्ण नहीं किया, तब वर्षाकारी इन्द्रने अपने हाथोंमें वज्र उठाया और द्युतिमान् वज्र द्वारा अन्धकार-रूप मेघसे पतन-शील जलका पूर्ण रूपसे दोहन कर लिया ।

११ प्रकृतिके अनुसार जल बहने लगा; किन्तु वृत्र नौकागम्य नदियोंके बीचमें बढ़ा । तब इन्द्रने महाबलशाली और प्राण-संहारी आयुध द्वारा कुछ ही दिनोंमें स्थिर-मना वृत्रका बध किया था ।

१२ भूमिपर सोये हुए वृत्रकी सेनाको इन्द्रने विद्ध किया था और शृङ्गी तथा जगच्छोषक वृत्रको विविध प्रकारसे ताड़ना दी थी । इन्द्र ! तुम्हारे पास जितना वेग और बल है; उससे युद्धाकाङ्क्षी शत्रुको वज्र द्वारा हनन किया था ।

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वितिग्मेन वृषभेणापुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥१३॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥१४॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ॥
ज्योक्चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरावेदनाकः ॥ १५ ॥

३४ सूक्त ! अश्विद्वय देवता हैं ।

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥१॥
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ २ ॥

---

१३ इन्द्रका कार्य-साधक वज्र इन्द्रको लक्ष्य कर गिरा था। इन्द्रने तीक्ष्ण और श्रेष्ठ आयुध द्वारा वृत्रके नगरोंको विविध प्रकारसे भिन्न किया था। अन्तको इन्द्रने वृत्रको वज्र द्वारा आघात किया था और उसे मार कर भली भाँति अपना उत्साह बढ़ाया था।

१४ इन्द्र ! तुम जिस कुत्सकी स्तुतिको चाहते हो, उसी कुत्सकी तुमने रक्षा की थी। तुमने युद्ध-रत, श्रेष्ठ और दसो दिशाओंमें दीप्तिमान् दशद्युकी रक्षा की थी। तुम्हारे घोड़ोंके खुरसे पतित धूलि द्युलोक तक फैल गयी थी। शत्रु भयसे जलमें मग्न हो कर भी श्वैत्रेय ऋषि, मनुष्योंमें अग्रणी होनेकी अभिलाषासे, आपके अनुग्रहसे बाहर निकल आये थे।

१५ इन्द्र ! सौम्य, श्रेष्ठ और जल-मग्न श्वैत्रेयको क्षेत्र-प्राप्तिके लिये तुमने बचाया था। जो हमारे साथ बहुत समयसे युद्ध कर रहे हैं, उन शत्रुताकाङ्क्षी लोगोंको तुम वेदना और दुःख दो।*

---

१ हे मेधावी अश्विनीकुमारद्वय ! हमारे लिये तुम आज तीन बार आओ। तुम्हारा रथ और दान बहु-व्यापी है। जिस प्रकार रश्मि-युक्त दिन और हिमयुक्त रात्रिका परस्पर नियम-रूप सम्बन्ध है, उसी प्रकार तुम दोनोंके बीच भी सम्बन्ध है। अनुग्रह करके तुम मेधावी ऋत्विकोंके वशवर्त्ती हो जाओ। ×

२ तुम्हारे मधुर-खाद्य-वाहक रथमें तीन दृढ़ चक्र हैं; उन्हें सभी देवोंने चन्द्रमाकी रमणीय पत्नी वेनाके साथ विवाह-यात्रा करनेके समय जाना। उस रथके ऊपर, अवलम्बनके लिये, तीन खम्भे हैं। अश्विद्वय ! उसी रथसे दिनमें तीन बार और रात्रिमें भी तीन बार गमन करो।

---

* रमेशचन्द्र दत्तका अनुमान है कि, श्वैत्रेय कुत्सने आर्य-अनार्य-युद्धमें अनार्योंको परास्त किया था; इस लिये उन्हें वृषभ की उपाधि मिली थी।

× "तीन बार"का तात्पर्य है प्रातः, मध्याह्न और सायंकालके अभिषेक-कालसे।

समाने अहंत्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुनामिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम्॥ ३॥
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम्॥ ४॥
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम्॥ ५॥
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरुदत्तमद्भ्यः।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म्म वहतं शुभस्पती॥ ६॥
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवे दिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम्॥ ७॥
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम्।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम्॥ ८॥
क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीलाः।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः॥ ९॥

३ अश्विद्वय! तुम एक दिनमें तीन बार यज्ञानुष्ठानका दोष शुद्ध करो। आज तीन बार मधुर रससे यज्ञका हव्य सिक्त करो। रात और दिनमें तीन बार पुष्टिकर अन्न द्वारा हमारा भरण करो।

४ अश्विद्वय! हमारे घरमें तीन बार आओ। हमारे अनुकूल व्यापारमें लगे मनुष्यके पास तीन बार आओ। रक्षा करने योग्य मनुष्यके पास तीन बार आओ। हमें तीन प्रकार शिक्षा दो। हमें तीन बार आनन्द-जनक फल प्रदान करो। जैसे इन्द्र जल देते हैं, उसी प्रकार हमें तीन बार अन्न दो।

५ अश्विद्वय! हमें तीन बार धन दो। देव-युक्त कर्मानुष्ठानमें तीन बार आओ। हमारी बुद्धि-रक्षा तीन बार करो। हमारा तीन बार सौभाग्य सम्पादन करो। हमें तीन बार अन्न दो। तुम्हारे त्रिचक्र रथपर सूर्यकी पुत्री चढ़ी हुई है।

६ अश्विद्वय! दिव्य लोकको औषधि हमें तीन बार दो। पार्थिव औषधि तीन बार दो। अन्तरिक्षसे तीन बार औषधि प्रदान करो। बृहस्पतिके पुत्र शंयुकी तरह हमारी सन्तानको सुख-दान करो। शोभनीय-औषधि-रक्षक! तुम वात, पित्त, श्लेष्मा आदि तीन धातु-सम्बन्धी सुख दो।

७ अश्विद्वय! तुम हमारे पूजनीय हो। प्रति दिन तीन बार पृथिवीपर आगमन करके तीन कक्षा-युत कुशोंपर शयन करो। हे नासत्याश्विद्वय! जिस प्रकार आत्म-रूप वायु शरीरोंमें आता है, उसी प्रकार तुम घी, पशु और वेदी नामके तीन यज्ञ-स्थानोंमें आगमन करो।

८ अश्विद्वय! सिन्धु आदि नदियोंके सात मातृ-जल द्वारा तीन सोमाभिषव प्रस्तुत हुआ है। तीन कलस और हव्य भी तैयार हैं। तुमने तीनों संसारोंसे ऊपर जाकर दिवा-रात्रि-संयुक्त आकाशके सूर्यकी रक्षा की थी।

९ हे नासत्य-अश्विद्वय! तुम्हारे त्रिकोण रथके तीन चक्र कहां हैं? बन्धनाधार-भूत जोड़ या रथके अपेक्षित काठके तीनों काठ कहां हैं? कब बलवान् गदहा तुम्हारे रथमें जोते जाते हैं, जिसके द्वारा हमारे यज्ञमें आते हो।

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावा पृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥९॥
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववां यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥१०॥
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा चनो अधि च ब्रूहि देव ॥११॥

८ अनुवाक । ३६ सूक्त । अग्नि देवता हैं । यहाँसे ४३ वें सूक्त तकके घोरके पुत्र कण्व ऋषि हैं ।

प्र वो यह्वम् पुरूणाम् विशाम् देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईलते ॥१॥
जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधम् हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥२॥
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

९ सुवर्ण-पाणि और विविध दर्शनसे युक्त सविता दोनों लोकोंमें गमन करते हैं, रोगादिका निराकरण करते हैं, सूर्यके पास आते या उदय होते हैं और तमोनाशक तेज द्वारा आकाशको व्याप्त करते हैं । *

१० सुवर्ण-हस्त, प्राणदाता, सुनेता, हर्षदाता और धनदाता सविता अभिमुख होकर आवें । वह देव राक्षसों और यातु-धानोंका निराकरण करके प्रति रात्रि स्तुति प्राप्त कर अवस्थित हैं । ×

११ सविता देव ! तुम्हारा मार्ग पूर्व-निश्चित, धूलि-रहित और अन्तरिक्षमें सुनिर्मित है । वैसे ही मार्गोंसे आकर आज हमारी रक्षा करो । देव ! हमारी बातें देवोंके पास प्रकाश कीजिये ।

१ तुमलोग बहु-संख्यक प्रजा हो; तुमलोग देवगणकी कामना करते हो, तुमलोगोंके लिये, सूक्त-वाक्य द्वारा, महान् अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं । अन्य ऋषि लोग भी उन्हीं अग्निकी स्तुति करते हैं ।

२ अनुष्ठाता लोगोंने बल-वर्द्धन-कारी अग्निको धारण किया था । अग्निदेव ! हम हव्य लेकर तुम्हारी परिचर्या करते हैं । तुम अन्न-दानमें तत्पर होकर आज इस अनुष्ठानमें हमारे प्रति सुप्रसन्न होकर हमारे रक्षक बनो ।

३ अग्नि ! तुम देवताओंके होता और सर्वज्ञ हो । हम तुम्हें वरण करते हैं । तुम महान् और नित्य हो । तुम्हारी दीप्ति विस्तृत होती है । तुम्हारी किरण आकाश छूती है ।

* "सूर्यके पास आते" का अर्थ उदय होना है । सूर्यकी अनुदिन प्रतिमाका नाम सविता है ।

× असुर या पापमति जीवका नाम यातुधान है । पुराने लोग यातुधानको यातुधान कहते हैं ।

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥
मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि।
त्वे विश्वा सङ्गतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥
त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमाहूयते हविः।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान् सुवीर्या ॥ ६ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥
घ्नन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे।
भुवत् कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

---

४ अग्नि ! तुम प्राचीन दूत हो। वरुण, मित्र और अर्यमा तुम्हें भली भाँति दीप्तिमान् करते हैं। जो मनुष्य तुम्हें हवि-र्दान करता है, वह तुम्हारी सहायतासे समस्त धन विजय करता है।

५ अग्नि ! तुम हव्यदाता हो। तुम देवोंको बुलाओ। तुम प्रजाओंके गृहपति हो। तुम देवोंके दूत हो। सूर्य, पर्जन्य, पृथिवी आदि देवता जो सब अमोघ व्रत करते हैं, वह सब तुममें सम्मिलित हो जाते हैं।

६ युवक अग्नि ! सौभाग्य-शाली हो। तुम्हें लक्ष्य करके सब हव्य दिये जाते हैं। तुम हमारे लिये प्रसन्न-मना होकर आज और पर दिन—सर्वदा शोभनीय वीर्य-शाली देवोंका अर्चन करो।

७ यजमान लोग नमस्कार-पूर्वक उन स्वयं दीप्तिमान् अग्निकी इसी प्रकार उपासना करते हैं। शत्रुको दूरतर पराजय करनेकी इच्छावाले मनुष्य होत्र लोगोंके द्वारा अग्निको प्रदीप्त करते हैं। *

८ देवोंने प्रहार करके वृत्रका हनन किया था। दोनों जगत् और अन्तरिक्षको, रहनेके लिये, विस्तृत किया था। अग्नि धनवाली है। वह गो-प्राप्तिके लिये संग्राममें हिनहिनाते हुए घोड़ेकी तरह सर्वतोभावसे आहूत हो कर कण्व ऋषिके लिये यथेच्छ द्रव्य वर्षण करे।

९ प्रशस्त अग्निदेव ! बैठो। तुम बड़े हो; देवोंको अतिशय कामना करो। तुम दीप्ति-पूर्ण बनो। हे मेधावी और उत्कृष्ट अग्नि ! गमनशील और सुदृश्य धूम उत्पन्न करो।

---

* ये सात होत्र या ऋत्विक् हैं—(१) यजमान, जो यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। (२) होता, जो मंत्र-पाठ करते हैं। (३) उद्गाता, जो मंत्र गाते हैं। (४) पोता, जो हव्य तैयार करते हैं। (५) नेष्टा, जो अग्निमें हव्य गिराते हैं। (६) ब्रह्मा, जो सब पदार्थोंका निश्चय करते हैं। (७) रक्षक, जो द्वार-देशकी रक्षा करते हैं। किसी-किसी मतमें ये १६ ऋत्विक् हैं—ऋग्वेदके होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत्। यजुर्वेदके प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता, अध्वर्यु। सामवेदके उद्गाता, प्रस्तोता, सुब्रह्मण्य, प्रतिहर्त्ता। अथर्ववेदके ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, आग्नीध्र। अथर्ववेदमें तो सदस्य, चमसाध्वर्यु, शमिता, गृहपति, अङ्गिरा, वैकर्त्ता और चमसाध्वर्यु भी ऋत्विक् माने गये हैं।

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥
यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ॥
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥
रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥
ऊर्ध्व ऊषु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥
पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ ॥
घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

---

१० हव्यवाही अग्नि ! तुम अत्यन्त पूजा-पात्र हो । सारे देवोंने, मनुके लिये, तुम्हें इस यज्ञ-स्थानमें धारण किया था । तुम अन्न द्वारा प्रीति सम्पादन करो । कण्वने पूजा-पात्र अतिथिके साथ तुम्हें धारण किया है । वर्षाकारी इन्द्रने तुम्हें धारण किया है । अन्यान्य स्तुति-कारकोंने भी तुम्हें धारण किया है ।

११ पूजार्ह और अतिथि-प्रिय कण्वने अग्निको आदित्यसे भी अधिक दीप्तिमान् किया है । उन्हीं अग्निकी गति-विशिष्ट किरण दीप्तिमान् है । ये ऋचाएं उन अग्निको वर्द्धित करती हैं; हम भी परिवर्द्धित करते हैं ।

१२ हे अन्न-युक्त अग्नि ! हमारे धनकी पूर्ति करो । तुम्हारे द्वारा देवोंकी मित्रता मिलती है । तुम प्रसिद्ध अन्नके मालिक हो । तुम महान् हो । हमें सुखी करो ।

१३ हमारी रक्षाके लिये सूर्यकी तरह उन्नत बनो । उन्नत होकर अन्नदाता बनो; क्योंकि विलक्षण यज्ञ-सम्पादक लोगोंके द्वारा हम तुम्हें आह्वान करते हैं ।

१४ उन्नत होकर हमें, ज्ञान द्वारा, पापसे बचाओ । सब राक्षसोंको जलाओ । हमें उन्नत करो, ताकि हम संसारमें विचरण कर सकें । इसी प्रकार हमारा हव्य-रूप धन देवोंके गृहोंमें ले जाओ, ताकि हम जीवित रह सकें ।

१५ हे विशाल-किरण युवक अग्नि ! हमें राक्षसोंसे बचाओ । धन दान न करनेवाले धूर्तसे रक्षा करो । हिंसक पशुसे रक्षा करो । हमनेच्छु शत्रुसे रक्षा करो ।

१६ हे उत्ताप-किरणवाले अग्निदेव ! जिस तरह हम लोग कड़े दण्ड द्वारा भाँड आदि नष्ट करते हैं, उसी तरह धन-दान न करनेवालोंको सदा संहार करो ।

अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम्।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम्॥ १७ ॥
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः॥ १८ ॥
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते॥
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः॥ १९ ॥
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये॥
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह॥ २० ॥

३७ सूक्त। मरुद्गण देवता हैं।

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्। कण्वा अभि प्र गायत॥ १ ॥
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः॥ २ ॥
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नि यामञ्चित्रमृञ्जते॥ ३ ॥
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत॥ ४ ॥

---

१७ शोभन वीर्यके लिये अग्निकी याचना की जाती है। अग्निने कण्वको सौभाग्य-दान किया। अग्निने हमारे मित्रोंकी रक्षा की। अग्निने पूजा-पात्र और अतिथि-संयुक्त ऋषिकी रक्षा की। इसी प्रकार धनादि दानके लिये जिस-किसीने अग्निकी स्तुति की, उसकी अग्निने रक्षा की।

१८ चोरोंका दमन करनेवाले अग्निके साथ तुर्वश, यदु और उग्रदेवको दूर देशसे हम बुलाते हैं। वह अग्नि नववास्त्व, बृहद्रथ और तुर्वीतिको इस स्थानपर बुलावे।

१९ अग्नि ! तुम ज्योतिःस्वरूप हो। मनुने विविध जातियोंके मनुष्योंके लिये तुम्हें स्थापित किया था। अग्निदेव ! तुम यज्ञके लिये उत्पन्न होकर और हव्य द्वारा तृप्त होकर कण्वके प्रति प्रकाशमान हुए हो। मनुष्य तुम्हें नमस्कार करते हैं।

२० अग्निकी शिखा प्रदीप्त, बलवती और भयंकर है। उसका विनाश नहीं किया जा सकता। अग्निदेव ! राक्षसों, यातुधानों और विश्वभक्षक शत्रुओंका दहन करो।

---

१ हे कण्व-गोत्रोत्पन्न ऋषिगण ! क्रीडासक्त और, शत्रुशून्य मरुतोंको उद्देश्य करके गाओ। वे रथपर शोभित होते हैं।

२ उन्होंने अपनी दीप्तिसे सम्पन्न होकर बिन्दु-चिन्ह-संयुक्त मृगरूप वाहनके साथ तथा युद्ध-शस्त्र, आयुध और नाना रूप अलङ्कारके साथ जन्म ग्रहण किया है।

३ उनके हाथोंमें रहनेवाली चाबुक जो शब्द कर रही है, वह हम सुन रहे हैं। वह चाबुक युद्धमें बल-वृद्धि करती है।

४ जो तुम्हारे बलका समर्थन करते, शत्रु-दमन करते और जो दीप्यमान कीर्त्तिसे पूर्ण और बलवान् हैं, इसलिये उद्देश्यसे उन्हीं मरुतोंकी स्तुति करो।

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्। जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥
को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥
नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः। भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे। यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ १० ॥
त्यं चिद्घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्। प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३ ॥
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः। तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्। विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥

५ जो मरुद्गण पृश्नि-रूप या दुग्धदात्री-रूप धेनुओंके बीच स्थित हैं, उनके अविनाशी, क्रीड़ा-परायण और सहन-शील तेजकी प्रशंसा करो। दूधके आस्वादनमें वही तेज परिवर्द्धित हुआ है।

६ द्युलोक और भूलोकमें कम्पन करनेवाले नेतृ-स्थानीय मरुतो, तुममें कौन बड़ा है? तुम वृक्षाग्रकी तरह चारों दिशाओंको परिचालित करो।

७ मरुद्गण! तुम्हारी कठोर और भयंकर गतिके डरसे मनुष्योंने घरोंमें मजबूत खम्भे खड़े किये हैं; क्योंकि तुम्हारी गतिसे अनेक शृङ्ग-युक्त पर्वत भी चालित हो जाते हैं।

८ मरुतोंकी गतिसे सारे पदार्थ फेंके जाने लगे। पृथिवी भी बूढ़े और क्षीण राजाकी तरह कम्पित हो जाती है।

९ मरुतोंका उद्भव-स्थान आकाश अविकम्प रहता है। उनके मातृ-रूप आकाशसे पक्षी भी निकल सकते हैं; क्योंकि उनका बल दोनों लोक फैलकर सर्वत्र वर्त्तमान है।

१० मरुद्गण शब्दोंके जनयिता हैं। वे गमन-समयमें जलका विस्तार करते हैं और गायोंको "हम्बा" शब्दके साथ घुटने भर जलमें प्रेरण करते हैं।

११ जो बादल प्रसिद्ध, दीर्घ और छोटे हैं, जो जल-वर्षण नहीं करते और किसीके द्वारा वध्य नहीं हैं, उन्हें भी मरुत् लोग, अपनी गतिसे, कम्पित करते हैं।

१२ मरुतो! चूँकि तुम्हारे बल है; इसलिये आदमियोंको अपने-अपने कार्योंमें लगाते हो। मेघोंको भी प्रेरण करते हो।

१३ जभी मरुद्गण गमन करते हैं, तभी रास्तेमें चारों ओर ध्वनि करते हैं। उनकी ध्वनि सभी सुन सकते हैं।

१४ वेगवान् वाहनके द्वारा तुरत आओ। मेधावी अनुष्ठाताओंने तुम्हारी परिचर्याका समारोह किया है। उनके प्रति तुष्ट हो।

१५ तुम्हारी तृप्तिके लिये हव्य है। हम समस्त परमायु जीनेके लिये तुम्हारे सेवक बने हुए हैं।

३८ सूक्त। मरुद्गण देवता हैं।

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रन्न हस्तयोः। दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥
क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः। क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता। क्वो विश्वानि सौभगा ॥ ३ ॥
यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥
मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६ ॥
सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः। मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १० ॥
मरुतो वीलुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु। यातेम खिद्रयामभिः ॥ ११ ॥

१ मरुद्गण! तुमलोग प्रार्थनाप्रिय हो। तुम्हारे लिये कुश छिन्न हैं। जिस प्रकार पिता पुत्रको हाथोंसे धारण करता है, उसी प्रकार क्या हमें भी तुम धारण करोगे ?

२ इस समय तुम कहाँ हो ? कब आओगे ? आकाशसे आओ। पृथिवीसे मत जाना। यजमान लोग, गायोंकी तरह, तुम्हें कहाँ बुलाते हैं ?

३ तुम्हारा नया धन कहाँ है ? तुम्हारा शोभन द्रव्य कहाँ है ? तुम्हारा समस्त सौभाग्य कहाँ है ?

४ हे पृश्नि नामक धेनु-पुत्र! यद्यपि तुम मनुष्य हो; परन्तु तुम्हारा स्तोता अमर हो।

५ जिस प्रकार घासोंके बीच मृग सेवा-रहित नहीं होता, तृण-भक्षण करता है; उसी प्रकार तुम्हारे स्तोता भी सेवा-शून्य नहीं, ताकि वे यमके पथ नहीं जायँ।*

६ निर्ऋति या पाप-देवी अत्यन्त-बलशालिनी है; और, उसका विनाश नहीं किया जा सकता। वह निर्ऋति हमारा वध नहीं करे और हमारी तृष्णाके साथ विलुप्त हो जाय।

७ दीप्तिमान् और बलवान् रुद्रियगण या मरुद्गण सच-मुच मरुभूमिमें भी वायु-रहित वृष्टि करते हैं।

८ प्रसूत स्तनोंवाली धेनुकी तरह बिजली गरजती है। जिस प्रकार गाय बछड़ेकी सेवा करती है, उसी प्रकार बिजली भी मरुद्गणकी सेवा करती है। फलतः मरुद्गणने वृष्टि की।

९ मरुद्गण जलधारी मेघों द्वारा दिनमें भी अन्धकार करते हैं। पृथिवीको भी सींचते हैं।

१० मरुद्गणके गर्जनसे सारी पृथिवीके गृह आदि चारों ओर काँपने लगते हैं। मनुष्य भी काँपने लगते हैं।

११ मरुतो! दृढ हस्तद्वारा विलक्षण कूलसे संयुक्त नदी होकर अबाध गतिसे गमन करो।

* चौथे और पाँचवें मन्त्रोंको मिलाकर मैक्समूलरने ऐसा अर्थ किया है—

"If you, sons of Prisni, were mortals, and your worshipper an immortal, then never should your praiser be unwelcome, like a deer in pasture grass, nor should he go on the path of Yama."

स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम्। सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥
अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्। अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥
मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥
वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्। अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ १५ ॥

३९ सूक्त। मरुद्गण देवता हैं। बृहती छन्द है।

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥ १ ॥
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥
परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥

---

१२ मरुद्गण! तुम्हारा रथ-चक्र-वलय या नेमि दृढ़ हो। रथ और घोड़े भी दृढ़ हों। अश्व-बन्धन-रज्जु पकड़नेमें तुम्हारी अंगुलियाँ सावधान हों।

१३ हे ऋत्विक्गण! ब्रह्मणस्पति या मरुद्गण, अग्नि और सुदर्शन मित्रको प्रार्थनाके लिये देवोंके स्वरूप-प्रकाशक वाक्यों द्वारा हमारे सामने होकर उनकी स्तुति करो।

१४ ऋत्विक्गण! अपने मुँहसे स्तोत्र बनाओ। मेघकी तरह उस स्तोत्र-श्लोकको विस्तृत करो। शास्त्रयोग्य और गायत्रीछन्दसे युक्त सूक्तका पाठ करो।

१५ ऋत्विको! दीप्त, स्तुति-योग्य और अर्चनासे संयुक्त मरुतोंकी वन्दना करो, ताकि वे हमारे इस कार्यमें वृद्ध-बलीक हों।

---

१ कम्पनकारी मरुद्गण! जब कि, दूरसे आलोककी तरह तुम अपने तेजको इस स्थानपर विकीर्ण करते हो, तब तुम किसके यज्ञ द्वारा, किसके स्तोत्र द्वारा, आकृष्ट होते हो? कहाँ किस यजमानके पास आते हो?

२ मरुद्गण! शत्रु-विनाशके लिये तुम्हारे हथियार स्थिर हों। साथ ही शत्रुओंको रोकनेके लिये कठिन हों। तुम्हारा बल प्रशंसा-पात्र हो। दुराचारी मनुष्योंका बल हमारे पास स्तुति-भाजन न हो।

३ नेतृ-स्थानीय मरुतो! जब स्थिर वस्तुको तुम तोड़ते हो, भारी वस्तुको चलाते हो, तब पृथिवीके वन वृक्षके बीचसे और पहाड़के बगलसे तुम आते हो।

४ शत्रु-विनाशी मरुद्गण! द्युलोक और पृथिवी लोकमें तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। रुद्रपुत्र मरुद्गण! तुम इकट्ठे हो। शत्रुओंके दमनके लिये तुम्हारा बल शीघ्र विस्तृत हो।

प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥
असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥

४० सूक्त। ब्रह्मणस्पति देवता हैं।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

---

५ मरुद्गण पहाड़ोंको विशेष रूपसे कंपाते हैं। वनस्पतियोंको अलग-अलग कर देते हैं। देव मरुद्गण! प्रजागणके साथ तुम यथेच्छ उन्मत्तोंकी तरह सब स्थानोंको जाते हो।

६ तुम बिन्दु-चिन्हित या विविध-वर्ण-विशिष्ट मृगोंको रथमें जोतते हो। लोहित मृग पृष्टि या वाहनद्वय-मध्यवर्ती 'धुर' होकर रथ वहन करता है। पृथिवीने तुम्हारा आगमन सुना है। मनुष्य डरे हैं।

७ रुद्रपुत्र मरुतो! पुत्रके लिये तुम्हारी रक्षण-शक्तिको हम शीघ्र प्रार्थना करते हैं। एक समय हमारी रक्षाके लिये तुम्हारा जो रूप आया था, वही रूप भीरु मेधावी यजमानके पास शीघ्र आवे।

८ तुम्हारे या किसी अन्य मनुष्यके द्वारा उत्तेजित होकर जो कोई शत्रु हमारे सामने आवे, उसका खाद्य और बल अपहृत करो। अपनी सहायता भी उससे वापस ले लो।

९ मरुद्गण! तुम सब प्रकारसे यज्ञके भोजन और उत्कृष्ट ज्ञानसे युक्त हो। तुम कण्व अथवा यजमानको धारण करो। जिस प्रकार बिजली वर्षा लाती है, उसी प्रकार तुम भी अपनी समस्त रक्षण-शक्तिके साथ हमारे पास आओ।

१० शोभन दानसे युक्त मरुद्गण! तुम समस्त तेजको धारण करो। हे कम्पन-कर्ता मरुतो! तुम सम्पूर्ण बल धारण करो। ऋषि-द्वेषी और क्रोध-परायण शत्रुके प्रति, बाणकी तरह, अपना क्रोध प्रेरण करो।

---

१ ब्रह्मणस्पति! उठो। देव-कामनाकारी हम तुम्हारी याचना करते हैं। शोभन और दाता मरुद्गणके पास होकर आओ। इन्द्र! तुम साथमें रह कर सोमरस सेवन करो।

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो वः आचके ॥ २ ॥
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५॥
तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥
को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम्* ।
प्र प्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत् क्षयं दधे ॥ ७ ॥
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित् सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥

२ हे बहुबल-पालक ब्रह्मणस्पति देवता ! शत्रुओंके बीच प्रक्षिप्त धनके लिये मनुष्य तुम्हें ही स्तुत करता है । मरुद्गण ! जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करता है, वह सुशोभन अश्व और बलसे युक्त धन पाता है ।

३ ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति हमारे पास आवें । सत्यदेवी आवें । देवता लोग वीर शत्रु को दूर करें । हमें हितकारी और हव्य-युक्त यज्ञमें ले जायँ ।

४ जो मनुष्य ऋत्विकके ग्रहण-योग्य धन-दान करता है, वह अक्षय अन्न प्राप्त करता है । उसके लिये हम लोग इळाके पास याचना करते हैं । इळा सुवीरा हैं । वह शत्रुका हनन करती हैं । उन्हें कोई नहीं मार सकता ।

५ ब्रह्मणस्पति अवश्य ही पवित्र मंत्रका उच्चारण करते हैं । उस मंत्रमें इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देवता अवस्थान करते हैं ।

६ देवगण ! सुखके लिये उस हिंसा-द्वेष-शून्य मंत्रका यज्ञमें हम उच्चारण करते हैं । हे नेतृ-गण ! यदि तुम इस वाक्य की इच्छा करते हो, तो सारे शोभनीय वचन तुम्हारे पास आयेंगे ।

७ जो देवोंकी अभिलाषा करते हैं, उनके पास ब्रह्मणस्पतिको छोड़ कर कौन आवेगा ? जो यज्ञके लिये कुश तोड़ते हैं, उनके पास ब्रह्मणस्पतिको छोड़कर कौन आवेगा ? ऋत्विकोंके साथ द्रव्य-दाता यजमान यज्ञ-भूमिके लिये प्रस्थान कर चुके हैं, और अन्तःस्थित बहुधन-युक्त घरमें गमन भी कर चुके हैं ।

८ अपने शरीरमें ब्रह्मणस्पति बल संचय करें । राजाओंके साथ वे शत्रुका विनाश करते हैं और भयके समय वे अपने स्थानपर रहते हैं । वे वज्रधारी हैं । महाधनके लिये बड़े या छोटे युद्धमें उन्हें कोई उत्साहित और निरुत्साहित करनेवाला नहीं है ।

४१ सूक्त। वरुण आदि देवता हैं। गायत्री छन्द है।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा। नू चित् स दभ्यते जनः॥ १॥
यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः। अरिष्टः सर्व एधते॥ २॥
वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजानः। एषां नयन्ति दुरिता तिरः॥ ३॥
सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः॥ ४॥
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत्॥ ५॥
स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः॥ ६॥
कथा राधाम सखाय स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य॥ ७॥
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। सुम्नैरिद्व आविवासे॥ ८॥
चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत्॥ ९॥

---

१ उत्कृष्ट ज्ञानसे सम्पन्न वरुण, मित्र और अर्यमा जिसकी रक्षा करते हैं, उसे कोई नहीं मार सकता।

२ वे जिसको अपने हाथसे धन-युक्त करते और हिंसकसे बचाते हैं, वह मनुष्य किसीके द्वारा हिंसित न होकर वृद्धि पाता है।

३ वरुण आदि राजन्य वैसे मनुष्योंके लिये शत्रुओंका किला विनष्ट करते हैं; साथ ही शत्रुओंका भी विनाश करते हैं। अनन्तर वैसे मनुष्योंका पाप-मोचन भी कर डालते हैं।

४ आदित्यगण! तुम्हारे यज्ञमें पहुँचनेका मार्ग सुख-गम्य और कण्टक-रहित है। इस यज्ञमें तुम्हारे लिये बुरा खाद्य नहीं तैयार होता।

५ नेतृ-स्थानीय आदित्यगण! जिस यज्ञमें तुम सरल मार्गसे आते हो, उस यज्ञमें तुम्हें उपभोग प्राप्त हो।

६ आदित्यगण! वह तुम्हारा अनुगृहीत मनुष्य किसीके द्वारा हिंसित न होकर सारा रमणीय धन सामने ही प्राप्त करता है। साथ ही अपने सदृश अपत्य भी प्राप्त करता है।

७ सखा लोग! मित्र, अर्यमा और वरुणके महत्त्वके अनुकूल स्तोत्र किस तरह हम साधित करेंगे?

८ देवगण! देवाभिलाषी यजमानका जो हनन करता है और जो कटु वचन बोलता है, उसके विरुद्ध तुम्हारे पास अभियोग नहीं उपस्थित करता। मैं धनसे तुम्हें तृप्त करता हूँ।

९ अक्ष, द्यूत वा जूएके खेलमें जो मनुष्य चार कौड़ियाँ अपने हाथोंमें रखता है, उस मनुष्यसे तब तक लोग डरते हैं, जब तक वह कौड़ियोंको नहीं फेंक देता है; उसी प्रकार यजमान दूसरेकी निन्दा नहीं करना चाहता है—डर करता है।×

× सूक्तमें अक्ष-क्रीड़ाकी कोई स्पष्ट बात नहीं है; परन्तु सायण आदि प्रायः सभी भाष्यकारों और अनुवादकोंने यहाँ जूआ ही अर्थ किया है।

४२ सूक्त। पूषा देवता हैं।

सम्पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितं। दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्यचित्। पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥
आतत्ते दस्र मन्तमः पूषन्नवो वृणीमहे। येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥
अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम। धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥

१ हे पूषन्! मार्गके पार लगा दो। विघ्नके कारण पापका विनाश करो। हे मेघ-पुत्र देव! हमारे आगे जाओ। ×

२ पूषन्! यदि कोई आक्रामक, अपहर्त्ता और दुष्ट हमें उलटा मार्ग दिखा दे, तो उसे उचित मार्गसे दूर हटा दो।

३ उस मार्ग-प्रतिबन्धक, चोर और कपटीको मार्गसे दूर भगा दो।

४ जो कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष—दोनों प्रकारसे हरण करता और अनिष्ट-साधन करता है, हे देव! उसकी पर-पीड़क देहको अपने पैरों रौंद डालो।

५ अरि-मर्दन और ज्ञानी पूषन्! तुमने जिस रक्षा-शक्तिसे पितरोंको उत्साहित किया था, तुम्हारी उसी रक्षा-शक्तिके लिये हम प्रार्थना करते हैं।

६ सर्व-सम्पत्शाली और विविध-स्वर्णास्त्र-संयुक्त पूषन्! हमारी प्रार्थनाके अनन्तर हमारे बारेमें धन-समूह दानमें परिणत करो।

७ बाधक शत्रुओंका अतिक्रम करके हमें ले जाओ। सुख-गम्य और सुन्दर मार्गसे हमें ले जाओ। पूषन्! तुम इस मार्गमें हमारी रक्षाका उपाय जानो।

८ सुन्दर और तृण-युक्त देशमें हमें ले जाओ। रास्तेमें नया सन्ताप न होने पावे। पूषन्! तुम इस मार्गमें हमारी रक्षाका उपाय जानो।

× सायणाचार्यने "पूषा" का अर्थ "जगत्पोषक पृथिव्यभिमानी देव" किया है। सायणने "पूषा" को "मेघ-पुत्र" भी माना है। इसका कारण उन्होंने लिखा है कि, "जलसे पृथिवी उत्पन्न हुई है और मेघ जल धारण करता है; इसलिये जल-पुत्र ही मेघ-पुत्र या पृथिव्यभिमानी देव है।" परन्तु यास्कने निरुक्तमें पूषाका अर्थ सूर्य किया है। पुराण भी यही अर्थ बताते हैं। सत्यव्रत सामश्रमीने "अल्पतेजा" सूर्यको पूषा या पूषन् लिखा है। पाश्चात्य पण्डितोंने भी सूर्यको पूषा माना है। गोल्डस्टकरने अपने "Note on the Aswinas"में लिखा है —"Pushan the sun." विल्सनका कहना है—"Pushan is usually a synonym of the sun" लांगलोया (Longlois) ने अपने ऋग्वेदके फ्रेंच अनुवादमें लिखा है—"Une forme du soleil." मैक्समूलरका मत है—"The sun as viewed by shepherds." वेदार्थयत्नने लिखा है, "मेघसे ही सूर्य-प्रकाश आता है; इसीलिये पूषाको मेघ-पुत्र कहा गया है।" रमेशचन्द्र दत्तने भी इसी मतको पसन्द किया है। हम भी इस मतको असंगत नहीं समझते।

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

४३ सूक्त । रुद्र आदि देवता हैं ।

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीलुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे ॥ १ ॥
यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजं । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥
यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥
शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥
अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥
मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य । मूर्धा नाभाः सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥

---

९ हमारे ऊपर अनुग्रह करो । हमारा घर धन-धान्यसे पूर्ण करो । अन्य अभीष्ट वस्तु भी दान करो । हमें धन-तेज करो । हमारी उदार-पूर्ति करो । पूषन् ! तुम इस मार्गसे हमारी रक्षाका उपाय जानो ।

१० हम पूषाकी निन्दा नहीं कर सकते; उनकी स्तुति करते हैं । हम दर्शनीय पूषाके पास धनकी याचना करते है ।

---

१ उत्कृष्ट ज्ञानसे युक्त, अभीष्ट-वर्षी और अत्यन्त महान् रुद्र हमारे हृदयमें अवस्थान करते हैं । कब हम उनको लक्ष्य करके सुखकर पाठ करेंगे ?

२ जैसे वा जिस प्रकार भूमि देवता हमारे लिये, पशुके लिये, मनुष्यके लिये, गायके लिये और हमारे अपत्यके लिये रुद्र-सम्बन्धी औषध प्रदान करें ।

३ जैसे मित्र, वरुण, रुद्र और समान-प्रीतियुक्त सब देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करें ।

४ रुद्र स्तुति-रक्षक, यज्ञ-पालक और उदक-रूप औषधिसे युक्त हैं । उनके पास हम बृहस्पति-पुत्र शंयुकी तरह सुखकी याचना करते हैं ।

५ जो रुद्र सूर्यकी तरह दीप्तिमान् और सोनेकी तरह उज्ज्वल हैं, वह देवोंके बीच श्रेष्ठ और अधिवास-कारण हैं ।

६ हमारे घोड़े, मेष,मेषी, पुरुष, स्त्री और गोजातिके लिये देवता सुगम्य सुख प्रदान करें ।

७ सोम, हमें प्रचुर परिमाणमें, सौ मनुष्योंका धन दान करो । साथ ही महान् और यथेष्ट बलसे युक्त अन्न भी दान करो ।

८ सोमदेवके प्रतिबाधक और शत्रु गण हमारी हिंसा न करें । सोमदेव हमें अन्न दान करो ।

९ सोम ! तुम अमर और उत्तम स्थान प्राप्त किये हुए हो । तुम शिरःस्थानीय होकर यज्ञ-गृहमें अपनी प्रजाकी कामना करो । वह प्रजा तुम्हें विभूषित करती है, तुम उसे जानो ।

९ अनुवाक । ४४ सूक्त अग्नि प्रभृति देवता हैं । यहाँसे ५० सूक्त तकके कण्वके
पुत्र प्रस्कण्व ऋषि हैं । बृहती छन्द है ।

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२॥
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥
श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥
स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥
सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥६॥
होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥

१ अग्निदेव ! तुम अमर और सब-भूतज्ञ हो । तुम उषाके पाससे हविर्दान-शील यजमानोंके लिये नानाविध और निवास-युक्त धन ला दो । आज उषा कालमें जागृत देवोंको ले आना ।

२ अग्नि ! तुम देवोंके सेवित दूत हो । हव्य वहन करो । तुम यज्ञको रथकी तरह वहन करनेवाले हो । तुम अश्विनीकुमारों और उषाके साथ शोभनीय, वीर्य-युक्त और प्रभूत धन हमें दान करो ।

३ अग्नि दूत, निवासहेतु, विविध-प्रिय, धूम-रूप ध्वजासे युक्त, प्रख्यात ज्योतिके द्वारा अलंकृत और उषाकालमें यजमानोंका यज्ञ सेवन करते हैं । उन्हीं अग्निको आज हम वरण करते हैं ।

४ अग्नि श्रेष्ठ, अतिशय युवक, सदागति-विशिष्ट, सबके द्वारा आहूत, हव्य-दाताके प्रति प्रसन्न और सर्व-भूतज्ञ हैं । उषाकालमें देवगणाभिमुख जानेके लिये मैं उनकी स्तुति करता हूँ ।

५ हे अमर, विश्व-रक्षक, हव्यवाही और यज्ञार्ह अग्निदेव, तुम विश्वके त्राण-कर्त्ता, मरण-रहित और यज्ञ-निर्वाहक हो, मैं तुम्हारी स्तुति करूँगा ।

६ युवक अग्नि ! तुम स्तोताके स्तुतिपात्र हो और तुम्हारी शिखा अन्नदायिनी है । तुम आहूत होकर हमारे अभिप्रायको अवगत करो । प्रस्कण्व जीवित रहे; इसलिये उसकी आयु बढ़ा दो । उस देव-भक्त जनका सम्मान करो ।

७ तुम होमनिष्पादक और सर्वज्ञ हो । तुम्हें संसार दीप्तिमान् करता है । अग्निदेव ! तुम बहुतोंके द्वारा आहूत हो । उत्कृष्ट ज्ञानसे युक्त देवोंको शीघ्र इस यज्ञमें ले आओ ।

सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥८॥
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥
नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥११॥
यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥

---

८ शोभन यज्ञसे युक्त अग्नि ! रात्रिके प्रभातमें सविता, उषा, अश्विद्वय, भग और अग्निको ले आओ। हव्यवाही कण्व लोग सोम तैयार करके तुम्हें दीप्तिमान् करते हैं।

९ अग्नि ! तुम लोगोंके यज्ञ-पालक और देवोंके दूत हो। उषाकालमें प्रबुद्ध सूर्य-दर्शी देवोंको आज सोमपानके लिये ले आओ।

१० प्रभावान् और धनवाले अग्नि ! तुम सबके दर्शनीय हो। तुम पूर्वगामिनी उषाके बाद दीप्त हो। तुम ग्रामोंके पालक, यज्ञोंके पुरोहित और वेदीके पूर्व दिशास्थित मनुष्य हो।

११ अग्निदेव ! तुम यज्ञके साधन, देवोंके आह्वानकारी ऋत्विक्, प्रकृष्ट ज्ञानसे युक्त, शत्रुओंके आयुनाशक, देवोंके दूत और अमर हो। हम मनुकी तरह तुम्हें यज्ञस्थानमें स्थापन करते हैं।

१२ मित्रोंके पूजक अग्नि ! जब कि, यज्ञके पुरोहित-रूपसे तुम देवोंका यज्ञ-कर्म सम्पादित करते हो, तब समुद्रकी प्रकृष्ट ध्वनिसे युक्त तरंगकी तरह तुम्हारी शिखाएँ दीप्तिमती रहती हैं

१३ अग्नि ! तुम्हारे श्रवण-समर्थ कान हमारे वचन सुनें। मित्र, अर्यमा तथा अन्य जो देवगण प्रातःकालमें या यज्ञमें गमन करते हैं, उन्हीं हव्यवाही सह-यायियोंके साथ इस यज्ञको लक्ष्य करके कुशपर बैठो।

१४ मरुद्गण दानशील, अग्निजिह्व और यज्ञवर्द्धक हैं। वे हमारा स्तोत्र सुनें। धृतव्रतधारी वरुण अश्विनी-कुमारों और उषाके साथ सोमपान करें।

४५ सूक्त । अग्नि देवता हैं । अनुष्टुप छन्द है ।

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥१॥
श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः । तान्रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमावह ॥ २ ॥
प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥
महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत । राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥
घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः । याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेवसे त्वा ॥ ५ ॥
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ६ ॥
नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् । श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥७॥
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः । बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥ ८ ॥
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य । इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ९ ॥
अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरो अह्न्यम् ॥ १० ॥

१ अग्निदेव ! तुम इस यज्ञमें वसुओं, रुद्रों और आदित्योंको अर्चित करो । शोभन-यज्ञ-युक्त और जल-दाता अन्य मनुपुत्र देवोंको भी पूजित करो ।

२ अग्नि ! विशिष्ट प्रज्ञावाले देवता हव्यदाताको फल प्रदान करते हैं । अग्नि ! तुम्हारे पास रोहित नामका अश्व है । तुम स्तुति-पात्र हो । तुम उन तेंतीस देवोंको यहाँ ले आओ ।

३ अग्नि ! तुम प्रभूत-कर्मा और सर्वभूतज्ञ हो । जैसे तुमने प्रियमेधा, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा नामके ऋषियोंका आह्वान सुना, वैसे ही प्रस्कण्वका आह्वान सुनो ।

४ यज्ञोंके बीच, विशुद्ध प्रकाश द्वारा, अग्नि प्रकाशमान होते हैं । प्रौढ़कर्मा प्रियमेधा लोगोंने, अपनी रक्षाके लिये, अग्निका आह्वान किया था ।

५ कण्वके पुत्र, अपनी रक्षाके लिये, जिस स्तुतिसे तुम्हें बुलाते हैं, घृताहुत फल-दाता अग्नि ! वह सब स्तुति तुम सुनो ।

६ अग्निदेव ! तुम यथेष्ट और विविध प्रकारके अन्नोंवाले हो तथा बहुत लोगोंके प्रिय हो । तुम्हारे दीप्ति-रूप केश हैं । मनुष्य लोग तुम्हें हव्य वहनके लिये बुलाते हैं ।

७ अग्नि ! तुम आह्वानकारी, ऋत्विक् और बहुधनदाता हो । तुम्हारे कर्ण श्रवण-समर्थ हैं । तुम्हारी प्रसिद्धि बहु-व्यापक है । मेधावियोंने यज्ञमें तुम्हें स्थापित किया है ।

८ अग्नि ! हव्यदाताके लिये हव्य धारण कर और सोमरस तैयार कर मेधावी ऋत्विक् अन्नके पास तुम्हें बुलाते हैं । तुम महान् और प्रभावाले हो ।

९ अग्नि ! तुम बल-द्वारा मथित होकर उत्पन्न हो । तुम फलदाता और निवास-हेतु हो । आज इस स्थानपर प्रातः-गमन करनेवाले देवों और अन्य देवता सबको, सोमपानके लिये, कुशके ऊपर बुलाओ ।

१० अग्नि ! सम्मुखागत देवरूप प्राणियोंको, अन्य देवोंके साथ, समान आह्वानके द्वारा यजन करो । सुन्दर दानवाले देवों, तुम्हारे लिये यह सोम अभी गत दिवस प्रस्तुत किया गया है । इसे पान करो ।

६ सूक्त। अश्विनीकुमारद्वय देवता हैं। गायत्री छन्द है।

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्। धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि। यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा। पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा। पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे। युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः। धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे। स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः। व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥
अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥

१ प्रिय उषा इसके पहले नहीं दिखाई थी। वह उषा आकाशसे अन्धकार दूर करती है। अश्विनीकुमारो! मैं तुम्हारी प्रभूत स्तुति करता हूँ।

२ जो दर्शनीय समुद्र-पुत्र देवद्वय या अश्विद्वय मनोहर और धनदाता हैं और जो, हमारे यज्ञ करनेपर, निवास-स्थान प्रदान करते हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ।

३ अश्विनीकुमारद्वय! जिस समय तुम्हारा प्रशंसित रथ घोड़ों द्वारा स्वर्गमें नीत होता है, उस समय हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

४ हे नेतृस्थानीय अश्विद्वय! पूरक, पालक, यज्ञ-दर्शक और जल-शोषक सविता हमारे हव्य द्वारा देवोंको प्रीत करें।

५ हे नासत्यद्वय! हमारी प्रिय स्तुति ग्रहणकर बुद्धि-परिचालक तीव्र सोमरसका पान करो।

६ अश्विद्वय! जो ज्योतिष्क अन्न अन्धकारका विनाश करके हमें तृप्ति-प्रदान करता है, वही अन्न हमें प्रदान करो।

७ अश्विद्वय! स्तुति-समुद्रके पार जानेके लिये नौकारूप होकर आओ। हमारे सामने अपने रथमें अश्व संयोजित करो।

८ तुम्हारा समुद्रके तीरपर आकाशसे भी बड़ा नौकारूप यान है। पृथिवीपर तुम्हारा रथ है। तुम्हारे यज्ञ-कर्ममें सोमरस भी मिला हुआ है।

९ कण्ववंशियो! अश्विद्वयको जिज्ञासा करो। द्युलोकसे सूर्य-किरणें आती हैं। वृष्टिके उत्पत्ति-स्थान अन्तरिक्षमें हमारी निवास-हेतु ज्योति प्रादुर्भूत होती है। अश्विनीकुमारद्वय! इन स्थानोंमेंसे किस स्थानपर तुम अपना स्वरूप रखना चाहते हो?

१० सूर्य-रश्मि द्वारा उषाकालका आलोक उत्पन्न हुआ है। सूर्य, उदित होकर, हिरण्यके समान हुए हैं। सूर्यके पीछे जानेसे अग्नि कृष्णवर्ण होकर अपनी शिखा द्वारा प्रकाश पाये हुए हैं।

११ रात्रिके पार जानेके निमित्त सूर्यके लिये सुन्दर मार्ग बना हुआ है। सूर्यकी विस्तृत दीप्ति दिखाई दी है।

तयदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छम्भू आ गतम् ॥ १३ ॥
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥

१२ अश्विद्वय प्रसन्नताके लिये सोम पान करते हैं। स्तोता लोग बार-बार उनके रक्षण-कार्यको प्रशंसित करते हैं।

१३ सुखद अश्विद्वय! मनुकी तरह सेवक यजमानके घरमें निवास-लोक होकर तुम सोमपान और स्तुति-श्रवणके लिये आओ।

१४ अश्विद्वय! तुम चतुर्दिक्चारी हो। तुम्हारी शोभाका अनुधावन करके उषा आगमन करे। रात्रिमें सम्पादित यज्ञका हव्य तुम ग्रहण करो।

१५ अश्विद्वय! तुम दोनों पान करो। तुम दोनों प्रशस्त रक्षण द्वारा हमें सुखदान करो।

तृतीय अध्याय समाप्त



चतुर्थ अध्याय

४७ सूक्त । अश्विद्वय देवता हैं । बृहती छन्द है ।

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरो अह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२॥
अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्वस्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

---

१ हे यज्ञवर्द्धनकारी अश्विद्वय ! यह अतीव मधुर सोम, तुम्हारे लिये, अभिषुत हुआ है। यह कल ही तैयार हुआ है। इसे पान करो और हव्यदाता यजमानको रमणीय धन दान करो।

२ अश्विद्वय ! अपने त्रिविध बन्धन-काष्ठोंसे युक्त, त्रिकोण या लोकत्रयमें वर्त्तमान और सुरूप रथसे आओ। कण्वपुत्र या मेधावी ऋत्विक् लोग तुम्हारे लिये स्तोत्र-पाठ कर रहे हैं। उनका सादर आह्वान सुनो।

३ यज्ञवर्द्धनकर्त्ता अश्विद्वय ! अत्यन्त मधुर सोमरसका पान करो। इसके अनन्तर, हे अश्विद्वय ! आज रथपर धन लेकर हव्यदाता यजमानके पास गमन करो।

४ सर्वज्ञाता अश्विद्वय ! तीन स्थानोंमें अवस्थित कुशपर स्थित होकर मधुर रस द्वारा यज्ञ सिक्त करो। अश्विद्वय ! दीप्तिमान् कण्वपुत्र सोमरस तैयार करके तुम्हें आह्वान करते हैं।

५ अश्विद्वय ! जिस अभीष्ट रक्षण-कार्य द्वारा तुम दोनोंने कण्वकी रक्षा की थी, हे शोभन-कर्म-पालक, उसी कार्य द्वारा हमारी रक्षा करो। हे यज्ञ-वर्द्धक ! सोमपान करो।

६ अश्विनीकुमारद्वय ! तुमने दानशील राजा पुजवन-पुत्र सुदासके लिये लड़ाईमें धनको धारण और अन्नको वहन किया था। उसी प्रकार आकाशसे अनेकोंके वाञ्छनीय धन हमें दान करो।*

---

* सूर्यवंश और चन्द्रवंश— दोनोंमें सुदास नामके राजा हो गये हैं। ऋग्वेद ७।१८।२५ में सुदासको पिजवन या दिवोदास राजाका पुत्र कहा गया है। वशिष्ठ और विश्वामित्र सुदासकी राजसभामें पुरोहित थे। कुछ लोगोंका मत है कि, सुदास १० म मण्डलके १३३ सूक्त के रचयिता या स्मर्त्ता भी थे।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्व्वशे।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्य्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा येन
शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥
उक्थेभिरर्व्वागवसे पुरूवसु अर्कैश्च नि ह्वयामहे।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥ १० ॥

४८ सूक्त। उषा देवता हैं।

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्तवस्तवे।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥
उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

---

७ नासत्यद्वय ! चाहे तुम पास रहो या दूर रहो; सूर्योदयके समय सूर्य-किरणोंके साथ अपने सुनिर्मित रथपर हमारे पास आओ।

८ तुम सदा यज्ञसेवी हो। तुम्हारे सात घोड़े तुम्हें निकट लाकर सवन-यज्ञकी तरफ ले जायँ। हे नेतृ-स्थानीय अश्विद्वय ! शुभकर्मकर्ता और दानशील यजमानको अन्न दान करके तुम कुशपर बैठो।

९ अश्विद्वय ! तुमने जिस रथपर धन लाकर हव्यदाताको सदा दान किया है, उसी सूर्य-किरण-सम्वलित रथपर मधुर सोम-पानके लिये आओ।

१० हम रक्षाके लिये उक्थ और स्तोत्र द्वारा अश्विद्वयको अपनी ओर आह्वान करते हैं। अश्विद्वय ! कण्वपुत्रों या मेधावी ऋत्विकोंके प्रिय सवनमें तुमने सदा सोम पान किया है।

---

१ हे देवपुत्री उषा ! हमें धन देकर प्रभात करो। विभावरी उषाकाल देवता ! प्रभूत अन्न देकर प्रभात करो। देवी ! दानशीला होकर पशु-रूप-धन प्रदान-पूर्वक प्रभात करो।

२ उषा अश्व-संवलिता, गोसम्पन्ना और सकलधनदात्री है। प्रजाके निवासके लिये उसके पास विविध सम्पत्तियाँ हैं। उषा ! मुझे सत्यवचन, बल और धनिकोंका धन दो।

३ उषा पहले प्रभात करती थी और अब भी प्रभात करती हैं। जिस प्रकार धनाभिलाषी समुद्रमें नाव प्रेरित करते हैं, जिस प्रकार उषाके आगमनमें रथ तैयार किये जाते हैं, उसी प्रकार उषा रथ-प्रेरयित्री हैं।

उषो ये ते प्रयामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत् पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥
वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पतिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥
एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्त्रिधः ॥ ८ ॥
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥
उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥

४ उषा, तुम्हारा आगमन होनेपर विद्वान् लोग दानकी ओर ध्यान देते हैं; और, अतिशय मेधावी कण्व ऋषि दानशील मनुष्योंका प्रख्यात नाम उषाकालमें ही लेते हैं।

५ उषा घरका काम संभालनेवाली गृहिणीकी तरह सबका पालन करके आती हैं। वह जंगम प्राणियोंकी परमायुका ह्रास करती हैं या जंगम प्राणियोंकी आयुको क्रमशः एक-एक दिन कम करती हैं। पैरवाले प्राणियोंको चलाती हैं और पक्षियोंको उड़ाती हैं।

६ तुम सम्यक् चेष्टावान् पुरुषको कार्यमें लगाती हो। तुम भिक्षुकोंको भी प्रेरण करती हो। तुम ओहार-वर्षी हो और अधिक क्षण नहीं ठहरतीं। अन्नयुक्त यज्ञसम्पन्ना उषा! तुम्हारे आगमन करनेपर उड़नेवाले पक्षी अपने घोसलेमें नहीं रहते।

७ उषाने रथ योजित किया है। वह सौभाग्य-शालिनी उषा दूरसे.. सूर्यके उदय-स्थानके ऊपरसे या दिव्य लोकसे, सौ रथों द्वारा मनुष्योंके पास आती हैं।

८ उषाके प्रकाशके लिये समस्त प्राणी नमस्कार करते हैं; क्योंकि यही सुनेत्री ज्योति प्रकाश करती हैं और यही धनवती स्वर्गपुत्री या द्युलोकसे उत्पन्ना उषादेवी द्वेषियों और शोषणकर्ताओंको दूर करती हैं।

९ स्वर्गतनया उषा! आह्लादकर ज्योतिके साथ प्रकाशित हो, अनुदिन हमें सौभाग्य दो और अन्धकार दूर करो।

१० नेत्री उषा! सारे प्राणियोंकी इच्छा और जीवन तुम्हारेमें ही है; क्योंकि तुम्हीं अन्धकारको दूर करती हो। विभावरी उषा! विशाल रथपर आना। विलक्षण-धन-सम्पन्ना उषा! हमारा आह्वान सुनो।

११ उषा! मनुष्यके पास जो विविध अन्न है, वह तुम ग्रहण करो और जो यज्ञ-निर्वाहक लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन सुकृतियोंको हिंसा-रहित यज्ञमें ले आओ।

विश्वाँ देवाँ आवह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वं ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५ ॥
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

४९ सूक्त। उषा देवता हैं। अनुष्टुप् छन्द है।

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि । वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १॥
सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् । तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

---

१२ उषा ! अन्तरीक्षसे, सोमपानके लिये, सब देवोंको ले आओ। उषा ! तुम हमें अश्वगोयुक्त, प्रशंसनीय और वीर्य-सम्पन्न अन्न प्रदान करो।

१३ जिन उषाकी ज्योति शत्रुओंको विनाश करके कल्याण-रूपमें दिखाई देती है, वह हम सबोंको वरणीय, सुरूप और सुखद धन प्रदान करें।

१४ पूज्य उषा ! पहलेके ऋषियोंने, रक्षण और अन्नके लिये, तुम्हें बुलाया था। तुम धन और दीप्तिशाली तेजसे विशिष्ट होकर हमारी स्तुतिपर सन्तुष्ट हो।

१५ उषा ! तुमने आज ज्योतिसे आकाशके दोनों दरवाजोंको खोल दिया है; इसलिये हमें हिंसक-विरहित और विस्तीर्ण गृह दान करो। साथ ही गो-युक्त अन्न भी दान करो।

१६ उषा ! हमें प्रभूत और बहु-विध-रूपयुक्त धन और गौ दान करो। पूजनीय उषा ! हमें सर्व-शत्रुनाशक यश दान करो। अन्न-युक्त क्रियासम्पन्न उषा ! हमें अन्न दान करो।

---

१ उषा ! दीप्यमान आकाशके ऊपरसे शोभन पथ द्वारा आगमन करो। अरुण-वर्ण गायें सोमयुक्त यजमानके घरमें तुम्हें ले आवें।

२ उषा ! तुम जिस सुन्दर और सुखकर रथपर अधिष्ठान करती हो, हे स्वर्गतनया उषा ! उसीसे आज हव्य-दाता यज-मानके पास आओ।

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि । उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवोऽन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनं । तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥

५० सूक्त । सूर्य देवता हैं । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द हैं ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २ ॥
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥३॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥४॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥५॥
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥

३ हे अर्जुनि या शुभ्रवर्णा उषा ! तुम्हारे आगमनके समय द्विपद, चतुष्पद और पक्ष-युक्त पक्षिगण आकाशप्रान्तके ऊपरि भागमें गमन करते अर्थात् आकाशमण्डलमें अपने-अपने कार्यमें लगते हैं ।*

४ उषा ! तुम अन्धकारका विनाश करके किरणोंके द्वारा जगत्को प्रकाशित करो । कण्वपुत्रों या मेधावी ऋत्विकोंने धन-याचक होकर स्तोत्र द्वारा तुम्हारा स्तव किया है ।

---

१ सूर्य प्रकाशमान हैं और सारे प्राणियोंको जानते हैं । सूर्यके घोड़े उन्हें, सारे संसारके दर्शनके लिये, ऊपर ले जाते हैं ।

२ सारे संसारके प्रकाशक सूर्यका आगमन होनेपर नक्षत्रगण चोरोंकी तरह, रात्रिके साथ, चले जाते हैं ।

३ दीप्यमान अग्निकी तरह सूर्यकी सूचक किरणें समूचे जगत्को एक-एक कर देखती हैं ।

४ सूर्य ! तुम महान् मार्गका भ्रमण करो, तुम सारे प्राणियोंके दर्शनीय हो । ज्योतिके कारण हो । तुम समूचे दीप्यमान अन्तरीक्षमें प्रभाका विकाश करते हो ।

५ तुम मरुद्देवोंके सामने उदित हो । मनुष्योंके सामने उदित हो । समस्त स्वर्गलोकके दर्शनके लिये उदित हो ।

६ हे संस्कारक और अनिष्टहन्ता सूर्य ! तुम जिस दीप्ति द्वारा प्राणियोंके पालक बनकर जगत्को देखते हो, हम उसीकी प्रार्थना करते हैं ।

---

* मूलमें जो "अर्जुनि" शब्द है, उसका सायणाचार्यने शुभ्र वर्ण अर्थ किया है । अपने "Indo-Aryans" नामके ग्रन्थमें राजेन्द्रलाल मित्रने लिखा है कि, "ऋग्वेदमें उषाके जो अर्जुनि, बिसया, दहना, उषा, सरमा और सरण्यू नाम हैं, वे सब Argynoris, Briseis, Daphne, Eos, Hebe और Erinys नामोंसे ग्रीकोंमें भी हैं । ग्रीकोंमें यह गल्प प्रसिद्ध है कि, Apollo या सूर्यने Daphne या दहनाका अनुधावन किया था । उषाका एक वैदिक नाम अहनामी है, जिसे बुद्धि-देवी-रूपसे Athena नाम दिया गया है । लाटिनभाषा-भाषी इसे ही Minerva (मिनर्वा) कहते हैं । "Mythology of Aryan Nations" ग्रन्थमें काक्सने लिखा है कि, अर्जुनि नामसे ही Argos और Arcadia नाम उत्पन्न है ।

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥७॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥९॥

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥१२॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३॥

१० अनुवाक । ५१ सूक्त । इन्द्र देवता हैं । यहाँसे ५७ सूक्त तकके अङ्गिराके पुत्र सव्य ऋषि हैं । जगती और त्रिष्टुप छन्द हैं ।

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥

७ उसो दीप्तिके द्वारा रात्रिके साथ दिवसको उत्पादन और प्राणियोंको अवलोकन करके विस्तृत अन्तरीक्ष लोकका भ्रमण करते हो ।

८ दीप्तिमान् और सर्व-प्रकाशक सूर्य ! हरित् नामके सात घोड़े रथमें तुम्हें ले जाते हैं । ज्योति या रश्मि ही तुम्हारा केश है ।

९ सूर्यने रथ-वाहिका सात घोड़ियोंको रथमें संयोजित किया । उन संयोजित घोड़ियोंके द्वारा सूर्य गमन करते हैं ।

१० अन्धकारके ऊपर उठी हुई ज्योतिको देखकर हम सब देवोंमें प्रकाशशाली सूर्यके पास जाते हैं । सूर्य ही उत्कृष्ट ज्योति हैं

११ अनुकूल-दीप्ति-युक्त सूर्य ! आज उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर मेरा हृद्रोग या मानस रोग और हरिमाण (पीतवर्ण)-रोग या शरीर-रोग विनष्ट करो ।

१२ मैं अपने हरिमाण रोगको शुक और सारिका पक्षियोंपर न्यस्त करता हूँ । अपना हरिमाण रोग हरिद्रा या हरिताल वृक्षपर स्थापित करता हूँ ।

१३ यह आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोगके विनाशके लिये समस्त तेजके साथ उदित हुए हैं । मैं उस रोगका विनाश-कर्त्ता नहीं, वे ही हैं । *

---

१ जिन्हें लोग बुलाते हैं, जो स्तुति-पात्र और धनके सागर हैं, उन्हीं मेष या बलवान् इन्द्रको स्तुति द्वारा हृष्ट करो । सूर्य-किरणोंकी तरह जिनका कर्म मनुष्योंका हित करता है, उन्हीं क्षमताशाली और मेधावी इन्द्रको, धन-सम्भोगके लिये, अर्चित करो ।

* हमारे यहाँ, पञ्चदेवोपासकोंमेंसे, सूर्योपासक या सौर सम्प्रदायके ये तीनों मंत्र प्रधान हैं । अ.ने सुख और शान्तिके लिये और आधिव्याधि-रहित आरोग्यके लिये प्रायः प्रत्येक सूर्योपासक इन मंत्रोंका जप करता है । इन मंत्रोंका जप कल्याणकारी

अभीमवन्वनत् स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥२॥
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥३॥
त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४॥
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥

---

२ इन्द्रका आगमन सुशोभन है। अपने तेजसे इन्द्र अन्तरिक्षको पूर्ण करते हैं। वह बली, दुपहर और शतक्रतु हैं। रक्षण और वर्द्धनमें तत्पर होकर ऋभुगण या मरुद्गण इन्द्रके सामने आये और उनकी सहायता की। उन्होंने उत्साह-वाक्यों द्वारा इन्द्रको उत्साहित किया था।

३ तुमने अङ्गिरा ऋषियोंके लिये मेघसे वर्षा करायी थी। जब असुरोंने अत्रिके ऊपर शतद्वार नामका यन्त्र फेंका था, तब भागनेके लिये तुमने अत्रिको मार्ग बता दिया था। तुमने विमद ऋषिको अन्न-युक्त धन दिया था। इसी प्रकार संग्राममें विद्यमान स्तोताको, अपना वज्र चलाकर, बचाया था। *

४ इन्द्र! तुमने जल-वाहक मेघको खोल दिया है और पर्वतपर वृत्र आदि असुरोंका धन छिपा रखा है। इन्द्र! तुमने हत्यारे वृत्रका वध किया था और संसारको देखनेके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ा दिया था।

५ जिन असुरोंने यज्ञीय अन्नको अपने शोभन मुखमें डाल दिया था, इन्द्र! उन मायावियोंको माया द्वारा तुमने परास्त किया था। मनुष्योंके लिये तुम प्रसन्न-चित्त हो। तुमने पिप्रु असुरका निवास-स्थान ध्वस्त किया था। ऋजिश्वान नामक स्तोताको, चोरोंके हाथ, मरनेसे, आसानीसे, बचा लिया था।

६ शुष्ण असुरके साथ युद्धमें तुमने कुत्स ऋषिकी रक्षा की थी और तुमने अतिथि-वत्सल दिवोदासकी रक्षाके लिये शम्बर राक्षसका वध किया था। तुमने महान् अर्बुद नामके असुरको पादाक्रान्त किया था। इन सब कारणोंसे विदित होता है कि, तुमने दस्युओंके वधके लिये ही जन्म ग्रहण किया है।

७ निःसन्देह तुम्हारे अन्दर समस्त बल निहित है। सोमपान करनेपर तुम्हारा मन प्रसन्न होता है। तुम्हारे दोनों हाथोंमें वज्र है—यह हम जानते हैं। शत्रुओंका सारा वीर्य छिन्न करो।

सूर्यने प्रस्कण्व ऋषिका चर्म-रोग नष्ट किया था। सूर्य-नमस्कारके साथ भी इन मंत्रोंका जप किया जाता है। विल्सनने "हृद्रोग"का अर्थ "Sickness of my heart" और "हरिमाण" को "Yellowness [of my body]" किया है।

* ऋग्वेद [१-११६-१] से जाना जाता है कि, अग्नि द्वारा आक्रान्त विमदकी स्त्रीको अश्विनीकुमारोंने रथपर

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥ ९ ॥
तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥ १० ॥
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः ॥११॥
आस्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥

---

८ इन्द्र ! कौन आर्य और कौन दस्यु है, यह बात जानो । कुशवाले यज्ञके विरोधियोंका शासन करके उन्हें यजमानोंके वश कराओ । तुम शक्तिमान् हो; इस लिये यज्ञानुष्ठाताओंकी सहायता करो । मैं तुम्हारे हर्षोत्पादक यज्ञमें तुम्हारे उन समस्त कर्मोंकी प्रशंसा करनेकी इच्छा करता हूँ ।

९ इन्द्र यज्ञ-विमुखोंको यज्ञप्रिय यजमानोंके वशीभूत करके और अभिमुख स्तोताओं द्वारा स्तुति-पराङ्मुखोंका ध्वंस करके अधिष्ठान करते हैं । वम्र ऋषि वृद्ध, विशाल और स्वर्ग-व्यापी इन्द्रकी स्तुति करते-करते संचित द्रव्य-समूह ले गये थे ।

१० इन्द्र ! जब कि उशनाके बल द्वारा तुम्हारा बल तीक्ष्ण हुआ था, तब विशुद्ध तीक्ष्णता द्वारा तुम्हारे बलने द्युलोक और पृथिवीलोकको भीत कर दिया था । इन्द्र ! तुम्हारा मन मनुष्यके प्रति प्रसन्न है । तुम्हारे बलशाली होनेपर तुम्हारी इच्छासे संयोजित और वायुकी तरह वेग-विशिष्ट घोड़ तुम्हें हमारे यज्ञान्नकी ओर ले आवें ।

११ जब कि सोमद उशनाने इन्द्रकी स्तुति की, तब इन्द्र वक्रगतिवाले दोनों घोड़ोंपर सवार थे । उग्र इन्द्रने गमन-शील मेघोंसे जल, प्रवाह-रूपमें, बरसाया था । साथ ही शुष्ण असुरके विस्तीर्ण नगरको भी ध्वस्त किया था ।

१२ इन्द्र ! सोमपानके लिये रथपर चढ़कर गमन करो । जिस सोमसे तुम प्रसन्न होते हो, वही सोम शार्यात राजर्षिने तैयार किया है; इसलिये अन्य यज्ञोंमें तुम जैसे प्रस्तुत सोमपान करते हो, उसी प्रकार शार्यातका सोम भी पान करो । ऐसा करनेपर दिव्य लोकमें अविचल यश प्राप्त होगा । *

पकड़कर उसके घर पहुँचाया था । अश्विद्वयने पीड़ा-गृहसे अत्रिको भी, जल डालकर, जलनेसे बचाया था । १।११२।७ और १।११६।८ से ऐसा ही मालूम पड़ता है ।

* कौषीतकी-ब्राह्मणादि-ग्रन्थ कहते हैं कि, भृगुवंशीय च्यवन ऋषिने राजर्षि शर्यातिकी कन्याका पाणि-ग्रहण किया था । उस समय एक यज्ञ हुआ था, जिसमें इन्द्र और अश्विद्वय उपस्थित थे । च्यवनने अश्विद्वयको हव्य दे दिया । यह देखकर इन्द्र क्रुद्ध हुए । इन्द्रको विनय कर उन्हें पुनः सोम दिया गया ।

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इन्द्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥१४॥
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥१५॥

५२ सूक्त । इन्द्र देवता हैं । त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं ।

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥२॥

१३ इन्द्र ! तुमने अभिषव-कारी और स्तुत्याकाङ्क्षी वृद्ध कक्षीवान् राजाको वृचया नामकी युवती स्त्री प्रदान की थी। शोभन-कर्मा इन्द्र ! तुम वृषणश्व राजाकी मेना नामक कन्या हुए थे । अभिषवण-समयमें इन सब विषयोंका वर्णन करना चाहिये ।*

१४ शोभनकर्मा निर्धनोंकी रक्षाके लिये इन्द्रकी सेवा की गयी है । पज्रों या अंगिरोवंशीयोंके स्तोत्र, द्वारस्थित स्तम्भकी तरह अचल हैं । धनदाता इन्द्र यजमानोंके लिये अश्व गौ और रथकी इच्छा करते हैं; और, विविध धनकी इच्छा करके अधिष्ठान करते हैं ।

१५ इन्द्र ! वृष्टि दान करो । तुम अपने तेजसे स्वराज करते हो । तुम प्रकृत-बल-सम्पन्न और अतीव महान् हो । हमने तुम्हारे लिये इस स्तुति-वाक्यका प्रयोग किया है । हम इस युद्धमें समस्त वीरों द्वारा युक्त होकर तुम्हारे दिये हुए शोभनीय घरमें विद्वानों या ऋत्विकोंके साथ वास करें ।

१ जिनके स्तुति-कार्यमें सौ स्तोता, एक साथ ही, प्रवृत्त होते हैं और जो स्वर्ग दिखा देते हैं, उन धनी इन्द्रको पूजा करो । गतिशील घोड़ेकी तरह वेगसे इन्द्रका रथ यज्ञकी ओर गमन करता है । मैं अपनी रक्षाके लिये उसी रथपर इन्द्रको चढ़नेके निमित्त, स्तुति द्वारा, अनुरोध करता हूँ ।

२ जिस समय यज्ञान्न-प्रिय इन्द्रने जल-वर्षण करके नदीका प्रतिरोध करनेवाले वृत्रका वध किया, उस समय इन्द्रने धारावाही जलके बीच, पर्वतकी तरह, अचल होकर और प्रजाकी हजारों तरहसे रक्षा करके, यथेष्ट बल प्राप्त किया था । ×

* सायणाचार्यने यहाँ ब्राह्मण ग्रन्थसे यह बात उद्धृत की है कि, इन्द्र वृषणश्वकी कन्या मेना हुए थे ।

× "इस सूक्तके ऋषि सव्यके पूर्व पुरुष अङ्गिरा लोगोंके प्रदत्त सोमका पानकर इन्द्र विशेष प्रसन्न हुए थे । उसी समय इन्द्रने वृत्र-वध किया था । वृत्रने चाहा कि, जल-प्रवाहमें इन्द्रको डुबोकर मार डालूं, परन्तु इन्द्र न तो जल-मग्न

स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३॥
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाताऽअहुतप्सवः ॥४॥
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधींरिव त्रितः ॥५॥
परी घृणा चरति तित्विषे शवोपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६॥
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७॥

३ इन्द्रने आवरणकारी शत्रुओंको जीता। इन्द्र जलकी तरह अन्तरीक्षमें व्याप्त हैं। इन्द्र सबके हर्ष-मूल हैं। वह सोमपानसे वर्द्धित हुए हैं। मैं, विद्वान् ऋत्विकोंके साथ, उन प्रवृद्ध और धन-सम्पन्न इन्द्रको शोभन-कर्मयोग्य अन्तः-करणके साथ, बुलाता हूँ; क्योंकि इन्द्र अन्नके पूरयिता हैं।

४ जिस प्रकार समुद्रको आत्मभूता और अभिमुखगामिनी नदियाँ समुद्रको पूर्ण करती हैं, उसी प्रकार कुशास्थित सोमरस, दिव्य लोकमें, इन्द्रको पूर्ण करता है। शत्रुओंके शोषक, अप्रतिहत-वेग और सुशोभन मरुद्गण, वृत्रहननके समयमें, उन्हीं इन्द्रके सहायक होकर, पासमें उपस्थित थे।

५ जिस प्रकार गमनशील जल नीचे जाता है, उसी प्रकार इन्द्रके सहायक मरुद्गण सोमपान द्वारा हृष्ट होकर युद्ध-रत इन्द्रके सामने वृष्टि-सम्पन्न वृत्रके निकट गये। जिस प्रकार त्रितने परिधि-समुदायका भेद किया था, उसी प्रकार इन्द्रने यज्ञके अन्नसे प्रोत्साहित होकर बल नामके असुरका भेद किया था।*

६ जल रोककर जो वृत्रासुर अन्तरीक्षके ऊपर सोया था और जिसकी वहाँ असीम व्याप्ति है, इन्द्र, जिस समय तुमने उसी वृत्रकी केहुनियोंको, शब्दायमान वज्र द्वारा, आहत किया था, उस समय तुम्हारी शत्रु-विजयनी दीप्ति विस्तृत हुई थी और तुम्हारा बल प्रदीप्त हुआ था।

७ जिस प्रकार जलाशयको जल-प्रवाह प्राप्त करता है, उसी प्रकार तुम्हारे लिये कहे हुए स्तोत्र तुम्हें प्राप्त होते हैं। त्वष्टाने तुम्हारे योग्य बल-वृद्धि की है और शत्रुविजयी बलसे संयुक्त तुम्हारे वज्रको भी अधिकतर बल-सम्पन्न किया है।

हुए और न मरे; अधिकन्तु पहाड़की तरह अचल भावसे दण्डायमान हो गये।" वेदार्थयत्न द्वारा यहाँ ऐसा मत प्रकाशित किया गया है।

* तैत्तिरीय-संहिताके अनुसार सायणने लिखा है कि, त्रित अग्निके पुत्र थे। जल पीने आकर त्रित कुएँमें गिर पड़े और असुरोंने कुएँपर एक ढकना दे दिया, जिसे भेदकर त्रित बाहर आये। उसी कथाकी यहाँ चर्चा है। त्रित या त्रैतनने भी असुरोंके साथ घोर युद्ध किया था। ईरानी लोग थ्रैतन नामसे त्रितकी उपासना करते हैं। उनके ये प्राचीन देवता हैं। फिरदौसीने अपने "शाहनामा" ग्रन्थमें लिखा है कि, फारसमें तीन मस्तकोंवाले जोहक नामके एक राजा थे। उन्हें फिरदौ-नने जीता था। "अवस्ता" के थ्रैतन ही जोहक हैं। इटाली और अरमेनीमें भी थ्रैतनकी कथा है। ग्रीकोंमें भी यह उपाख्यान है। उनके प्रधान देवता जूपिटरकी कन्याका नाम Tritogeneia था। उनमें Triton नामके एक जल-देव भी हैं।

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥८॥
बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥९॥
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१०॥
यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११॥
त्वमस्य पारे रजसो व्योम्नः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२॥
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३॥
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एकोअन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥

---

८ हे सिद्धकर्मा इन्द्र ! मनुष्योंके पास आनेके लिये तुमने अश्वयुक्त होकर वृत्र-विनाश किया, वृष्टि बरसायी, दोनों हाथोंमें लौह-वज्र ग्रहण किया और हमारे देखनेके लिये आकाशमें सूर्यको स्थापित किया ।

९ वृत्रके डरके मारे स्तोताओंने स्तोत्रोंका अनुष्ठान किया था । वे स्तोत्र बृहत्, आह्लादयुक्त, बल-सम्पन्न और स्वर्गकी सीढ़ियाँ हैं । स्वर्ग-रक्षक मरुद्गणने उस समय, मनुष्योंके लिये, युद्ध करके और उनका पालन करके इन्द्रको प्रोत्साहित किया था ।

१० इन्द्र ! अभिषुत सोम पान करके तुम्हारे हृष्ट होनेपर जिस समय तुम्हारे वज्रने द्युलोक और पृथिवीलोकके बाधक वृत्रका मस्तक वेगसे छिन्न किया था, उस समय बलवान् आकाश भी उस अहिके शब्द-भयसे कम्पित हुआ था ।

११ इन्द्र ! यदि पृथिवी दसगुनी बड़ी होती और यदि मनुष्य सदा जीवित रहते, तब तुम्हारी शक्ति, प्रकृत रूपमें, सर्वत्र प्रसिद्ध होती । तुम्हारी बल-साधित क्रिया आकाशके सदृश विशाल है ।

१२ अरिमर्दन इन्द्र ! इस व्यापक अन्तरीक्षके ऊपर रहकर निज-भुज-बलसे तुमने, हमारी रक्षाके लिये, भूलोककी सृष्टि की है । तुम बलके परिमाण हो । तुम गमनशील अन्तरीक्ष और स्वर्ग व्याप्त किये हुए हो ।

१३ तुम विपुलायतना पृथिवीके परिमाण हो, तुम दर्शनीय देवोंके बृहत् स्वर्गके पालनकारी हो । सचमुच तुम अपनी महिमा द्वारा समस्त अन्तरीक्षको व्याप्त किये हुए हो । फलतः तुम्हारे समान कोई नहीं ।

१४ जिन इन्द्रकी व्याप्तिको द्युलोक और पृथिवीलोक नहीं पा सके हैं, अन्तरीक्षके ऊपरका प्रवाह जिनके तेजका अन्त नहीं पा सका है, इन्द्र ! वही तुम अकेले अन्य सारे भूतोंको अपने वशमें किये हुए हो ।

आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥ १५ ॥

५३ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

न्यू षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३॥
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गो अग्रयाश्वावत्या रभेमहि ५ ॥

---

१५ इस लड़ाईमें मरुतोंने तुम्हारी अर्चना की थी । जिस समय तुमने तीक्ष्णघातक वज्र द्वारा वृत्रके मुँहके ऊपर आघात किया था, उस समय सारे देवगण संग्राममें तुम्हें आनन्दित देखकर आह्लादित हुए थे ।

---

१ हम महापुरुष इन्द्रके उद्देश्यसे शोभनीय-वाक्यप्रयोग करते हैं और सेवाव्रती यजमानके घर शोभनीय-स्तुति-वाक्य प्रयोग करते हैं । इन्द्रने असुरोंके धनपर उसी तरह तुरत अधिकार कर लिया, जिस तरह सोये हुए मनुष्योंके धनपर अधिकार जमाया जाता है । धनदाताओंको समीचीन स्तुति करनी चाहिये

२ इन्द्र ! तुम अश्व, गौ और यव आदि धान्य दान करो । तुम निवासहेतु, प्रभूत धनके स्वामी और रक्षक हो । तुम दानके नेता और प्राचीनतम देव हो । तुम कामना व्यर्थ नहीं करते, तुम याजकोंके सखा हो । उन्हींके उद्देश्यसे हम यह स्तुति पढ़ते हैं ।

३ हे प्रज्ञावान्, प्रभूतकर्मा और अतिशय दीप्तिमान् इन्द्र ! चारों ओर जो धन है, वह तुम्हारा ही है—यह हम जानते हैं । शत्रु-विध्वंसी इन्द्र ! वही धन ग्रहण करके हमें दान करो । जो स्तोता तुम्हें चाहते हैं, उनकी अभिलाषा व्यर्थ नहीं करना ।

४ इन्द्र ! इस प्रकार हव्य और सोमरससे तुष्ट होकर गौ और घोड़ेके साथ धन दान कर और हमारा दारिद्र्य दूर कर प्रसन्नमना हो जाओ । इस सोमरससे तुष्ट इन्द्रकी सहायतासे हम दस्युको ध्वंस कर और शत्रुओंसे मुक्ति प्राप्त कर अन्नकी तरह अन्न भोगेंगे ।

५ इन्द्र ! हम धन, अन्न और अनेकोंके आह्लादकर और दीप्तिमान् बल पावें । तुम्हारी प्रकाशमान सुमति हमारी सहायिका हो । वह सुमति वीर शत्रुओंका शोषण करे । वह स्तोताओंको गौ आदि पशु और अश्व दान करे ।

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०॥
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

---

६ साधु-रक्षक इन्द्र ! वृत्रासुरके वधके समय तुम्हारे आनन्ददाता मरुद्गणने तुम्हें प्रसन्न किया था । वर्षक इन्द्र ! जिस समय तुमने शत्रुओं द्वारा अप्रतिहत होकर स्तोता और हव्यदाता यजमानके लिये दस हजार उपद्रवोंका विनाश किया था, उस समय विविध हव्य और सोमरसने तुम्हें हृष्ट किया था ।

७ इन्द्र ! तुम शत्रुओंके धर्षणकारी हो । तुम युद्धान्तरमें जाते हो । तुम बलसे एक नगरके बाद दूसरे नगरका ध्वंस करते हो । इन्द्र ! तुमने, दूर देशमें, नमी ऋषिकी सहायतासे नमुचि नामक मायावीका वध किया था । *

८ तुमने अतिथिग्व नामके राजाके लिये करञ्ज और पर्णय नामक असुरोंको, तेजस्वी शत्रुनाशक अस्त्रसे, वध किया था । अनन्तर तुमने अकेले ऋजिश्वान् नामक राजाके द्वारा चारों ओर वेष्टित वंगृद नामक असुरके शतसंख्यक नगरोंको छिन्न किया था ।

९ असहाय सुश्रवा नामक राजाके साथ युद्ध करनेके लिये जो बीस नरपति और उनके साठ हजार निन्यानवे अनुचर आये थे, प्रसिद्ध इन्द्र ! तुमने शत्रुओंके अलंघ्य चक्रों द्वारा उनको पराजित किया था ।

१० तुमने अपनी रक्षा-शक्तिके द्वारा सुश्रवा राजाको रक्षा की थी । तूर्वयाण राजाको अपनी परित्राण-शक्ति द्वारा बचाया था । तुमने कुत्स, अतिथिग्व और आयु राजाओंको महान् युवक सुश्रवा राजाके आधीन किया था ।×

११ इन्द्र ! तुम्हारे मित्ररूप हम यज्ञ-समाप्तिमें विद्यमान हैं । हम देवों द्वारा पालित हुए हैं । हम मङ्गलमय हैं । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम्हारी कृपासे हम शोभनीय पुत्र पावें और उत्तम रूपसे दीर्घ जीवन धारण करें ।

---

* यहाँ सायणने "नम्या सख्या" का अर्थ नमनशील वज्र किया है, नमी ऋषि नहीं । परन्तु यहाँ नमी ऋषि अर्थ ही ठीक जँचता है; क्योंकि ऋग्वेद (६।२०।६ और १०।४८।९) के अनुसार इन्द्रने नमीके लिये नमुचिका वध किया था ।

× पुराणोंमें आयुको पुरूरवाका पुत्र कहा गया है । ऋग्वेदके ४।१८।३ में सायणने लिखा है कि, तूर्वयाण दिवोदासका नाम हो सकता है । किन्तु यहाँ तूर्वयाणके लिये सायणने कुछ नहीं लिखा है ।

५४ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

मा नो अस्मिन् मघवन्पृत्स्वंहसि न हि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥ १ ॥
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥
अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३॥
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४॥

---

१ मघवन् ! इस पापमें, इस युद्ध-समुदायमें, हमें नहीं प्रक्षेप करना; क्योंकि तुम्हारे बलकी अनन्तता है । तुम अन्तरीक्षमें रहकर और अत्यन्त शब्द कर नदीके जलको शब्दायमान करते हो । तब फिर पृथिवी क्यों न भय पावे ?

२ शक्ति-शाली और बुद्धिमान् इन्द्रकी पूजा करो । वह स्तुति सुनते हैं । उनकी पूजा करके स्तुति करो । जो इन्द्र शत्रु-धर्षी बलके द्वारा द्युलोक और पृथिवीलोकको अलङ्कृत करते हैं, वह वर्षा-विधाता हैं, वर्षण-शक्ति द्वारा वृष्टि दान करते हैं ।

३ जो इन्द्र शत्रुध्नवो और अपने बलमें दृढ़मना हैं, उन्हीं महान् और दीप्तिमान् इन्द्रके उद्देश्यसे सुखकर स्तुति-वाक्य उच्चारण करो; क्योंकि इन्द्र प्रभूत-यशःशाली और असुर अर्थात् बलशाली हैं । इन्द्र शत्रुओंको दूर करते हैं । इन्द्र अश्व द्वारा सेवित, अभीष्टवर्षी और वेगवान् हैं । ×

४ इन्द्र ! तुमने महान् आकाशके ऊपरका प्रदेश कम्पित किया है; तुमने अपनी शत्रु-विध्वंसिनी क्षमताके द्वारा शम्बर असुरका वध किया है । तुमने हृष्ट और उल्लसित मनसे तीक्ष्ण और रश्मि-युक्त वज्रको दलबद्ध मायावियोंके विरुद्ध प्रेरण किया है ।

× यहाँ इन्द्रके लिये असुर शब्दका प्रयोग है । सायणने यहाँ असुर शब्दके तीन अर्थ किये हैं—शत्रु हन्ता, बलवान् और बुद्धिदाता । यह बात ठीक है कि, ऋग्वेदमें देवोंके लिये असुर शब्दका कई बार प्रयोग हुआ है । प्रथम अष्टकमें कुछ सात स्थानों-पर असुर शब्दका प्रयोग हुआ है । कहाँ-कहाँ किस-किस सम्बन्धमें प्रयोग हुआ है, वह निम्न लिखित पङ्क्तियोंमें पढ़िये—

२४ सूक्तकी १४ ऋचामें असुर शब्द वरुणके सम्बन्धमें प्रयुक्त हुआ है ।

३५	”	७	”	”	सूर्य रश्मि	”	” ”
३५	”	१०	”	”	सविता	”	” ”
५४	”	३	”	”	इन्द्र	”	” ”
६४	”	२	”	”	मरुद्गण	”	” ”
१०८	”	६	”	”	अश्विद्वय	”	” ”
११०	”	३	”	”	त्वष्टा	”	” ”

परन्तु प्रसिद्ध दैत्य अर्थमें ही हमने अनुवादमें, कई स्थानोंपर, असुर शब्द लिखा है ।

नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्द्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥ ५ ॥
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ६ ॥
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ७ ॥
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ८ ॥
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ९ ॥
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते १० ॥
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ॥
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ११ ॥

५ इन्द्र ! तुमने मेघ-गर्जन द्वारा शब्द करके वायुके ऊपर और जल-शोषक तथा जल-परिपाककारी सूर्यके मस्तकपर जल वर्षण किया है। तुम्हारा मन अपरिवर्तनशाली और शत्रु-विनाश परायण है। तुमने आज जो काम किया है, उससे तुम्हारे ऊपर कौन है ? अर्थात् तुम्हारे ऊपर कोई नहीं—तुम्हीं सर्व-श्रेष्ठ हो।

६ तुमने नर्य, तुर्वश और यदु नामके राजाओंकी रक्षा की है। शत-यज्ञकर्ता इन्द्र ! तुमने वय्य-कुलोत्पन्न तुर्वीति नामके राजाकी रक्षा की है। तुमने रथ और एतश ऋषिकी, आवश्यक धनके लिये, संग्राममें रक्षा की है। तुमने शम्बरके निन्यानवे नगरोंका विनाश किया है।

७ जो इन्द्रको हव्य दान करके इन्द्र-स्तुतिका प्रचार करते हैं अथवा हव्यके साथ मंत्रका पाठ करते हैं, वही स्वराज करते हैं, साधु-रक्षा करते हैं और अपनेको वर्द्धन करते हैं। फलदाता इन्द्र उन्हींके लिये आकाशसे मेघ-जलका वर्षण करते हैं।

८ इन्द्रका बल अतुल है, उनकी बुद्धि भी अतुल है। जो तुम्हें हव्य दान करके तुम्हारा महान् बल और स्थूल पौरुष बढ़ाते हैं, वही सोमपायी लोग यज्ञ-कर्म द्वारा प्रवृद्ध हों।

९ यह सोमरस पत्थरके द्वारा तैयार किया गया है, बर्तनमें रखा हुआ है और इन्द्रके पीने योग्य है। इन्द्र ! यह सब तुम्हारे ही लिये हुआ है। तुम इसे ग्रहण करो। अपनी इच्छा तृप्त करो। अनन्तर हमें धन दान करनेमें ध्यान दो।

१० अन्धकारने वृष्टिकी धारा रोकी थी। वृत्रासुरके पेटके भीतर मेघ था। वृत्रके द्वारा रखे जाकर जो जल अनु-क्रमसे अवस्थित था, इन्द्रने उसे निम्न भू-प्रदेशमें प्रवाहित किया।

११ इन्द्र ! हमें वर्द्धमान यश दो। महान्, शत्रुओंका पराजयकर्त्ता और प्रभूत बल दान करो। हमें धनवान् करके रक्षा करो। विद्वानोंका पालन करो और हमें धन, शोभनीय अपत्य और अन्न दान करो।

५५ सूक्त । इन्द्र देवता हैं । जगती छन्द है ।

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्मान् चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे वंसगः ॥ १
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात् स युध्म ओजसा पनस्यते २ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ३ ॥
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ४ ॥
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५ ॥
स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ६ ॥
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ७ ॥

---

१ आकाशकी अपेक्षा भी इन्द्रका प्रभाव विस्तीर्ण है । महत्त्वमें पृथिवी भी इन्द्रकी बराबरी नहीं कर सकती । भयावह और बली इन्द्र मनुष्योंके लिये शत्रुको वध करते हैं । जैसे साँड़ अपनी सींग रगड़ता है, उसी प्रकार तीखा करनेके लिये इन्द्र अपना वज्र रगड़ते हैं ।

२ अन्तरीक्ष-व्यापी इन्द्र, सागरकी तरह, अपनी व्यापकताके द्वारा बहुव्यापी जल ग्रहण करते हैं । इन्द्र सोमपानके लिये साँड़की तरह वेगसे दौड़ते हैं और वही योद्धा इन्द्र प्राचीन कालसे अपने वीरत्वकी प्रशंसा चाहते हैं ।

३ इन्द्र ! तुम अपने भोगके लिये मेघको भिन्न नहीं करते । तुम महान् धनाढ्योंके ऊपर आधिपत्य करते हो । वह इन्द्रदेव अपने वीर्यके कारण अच्छी तरह परिचित हैं । सारे देवोंने उग्र इन्द्रको उनके कर्मके कारण सामने स्थान दिया है ।

४ वही इन्द्र जङ्गलमें स्तोता ऋषियों द्वारा स्तुत होते हैं । वह मनुष्योंके बीचमें अपना वीर्य प्रकट करके बड़ी सुन्दरतासे प्रकाशित होते हैं । जिस समय हव्यदाता धनी यजमान इन्द्र द्वारा रक्षित होकर स्तुति-वाक्य उच्चारण करता है, उस समय वही अभीष्टवर्षी इन्द्र यज्ञेच्छुको यज्ञमें तत्पर करते हैं ।

५ वही योद्धा इन्द्र मनुष्योंके लिये सर्व-विध्वंसकारी बल द्वारा महान् संग्रामोंमें संलग्न होते हैं । जिस समय इन्द्र वध-कारण वज्र फेंकते हैं, उस समय दीप्तिमान् इन्द्रको सब लोग बलशाली कह कर श्रद्धा करते हैं ।

६ शोभनकर्मा इन्द्र यशःकामना करके, बल द्वारा सुनिर्मित असुर-गृहोंका विनाश करके, पृथिवीमें समान वृद्धि प्राप्त करके और ज्योतिष्कों या तारकाओंको निरावरण करके यजमानके उपकारके लिये प्रवहमान वृष्टि-जल दान करते हैं ।

७ सोमपायी इन्द्र ! दानमें तुम्हारा मन रत हो । स्तुतिप्रिय ! अपने हरि नामके घोड़ोंको हमारे यज्ञके अभिमुखीन

अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥८॥

५६ सूक्त । इन्द्र देवता हैं । जगती छन्द है ।

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् १ ॥
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा २ ॥
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभुषु रामयन्नि दामनि ३ ॥
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ४ ॥

करो । इन्द्र ! तुम्हारे सारथि घोड़ोंको वशमें करनेमें बड़े दक्ष हैं; इसलिये तुम्हारे विरोधी शत्रु हथियार लेकर तुम्हें पराजित नहीं कर सकते ।

८ इन्द्र ! तुम दोनों हाथोंमें अनन्त धन धारण करते हो । तुम यशस्वी हो । अपनी देहमें अपराजेय बल धारण करते हो । जैसे जलार्थी मनुष्य कूओंको घेरे रहते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे सारे अंग वीरतापूर्ण कर्मों द्वारा घेरे रहते हैं । तुम्हारी देहमें अनेक कर्म विद्यमान हैं ।

१ जिस प्रकार घोड़ा घोड़ीकी ओर दौड़ता है, उसी प्रकार प्रभूताहारी इन्द्र इस यजमानके यथेष्ट पात्र-स्थित सोमरूप खाद्यकी ओर दौड़ते हैं । इन्द्र स्वर्णमय, अश्वयुक्त और रश्मियुक्त रथको रोककर पान करते हैं । वे बड़े निपुण कार्यमें हैं ।

२ जिस प्रकार धनाभिलाषी वणिक् घूम-घूमकर समुद्रको चारों ओर व्याप्त किये रहते हैं, उसी प्रकार हव्य-वाहक स्तोता लोग चारों ओरसे इन्द्रको घेरे हुए हैं । जिस प्रकार ललनाएँ, फूल चुननेके लिये, पर्वतपर चढ़ती हैं, उसी प्रकार हे स्तोता, एक तेजःपूर्ण स्तोत्रके द्वारा प्रवृद्ध, यज्ञके रक्षक, बलवान् इन्द्रके पास शीघ्र पहुँचो ।

३ इन्द्र शत्रुहन्ता और महान् हैं । इन्द्रका दोष-शून्य और शत्रुविनाशक बल पुरुषोचित संग्राममें पहाड़के शृङ्गकी तरह विराजमान है । शत्रु-मर्दक और लौह-कवच-देही इन्द्रने सोमपान द्वारा हृष्ट होकर, बल द्वारा, मायावी शुष्णको हथकड़ी डालकर कारागृहमें बन्द कर रखा था । *

४ जैसे सूर्य उषाका सेवन करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा दीप्तिमान् बल, तुम्हारी रक्षाके लिये, तुम्हारे स्तोत्र द्वारा वर्द्धित इन्द्रकी सेवा करता है । वही इन्द्र विजयी बल द्वारा अन्धकाररूप वृत्रका दमन करते और शत्रुओंको रुलाकर अच्छी तरह उनका ध्वंस करते हैं ।

* "आयसः" का अर्थ सायणाने "अयोमयकवचयुक्तदेहः" किया है । ५९ सूक्तकी १३ ऋचासे भी मालूम होता है कि, आर्य लोग कवच (सोने और लोहेके) धारण करते थे ।

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५॥
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥६॥

५७ सूक्त। इन्द्र देवता हैं।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥

---

५ शत्रु-हन्ता इन्द्र! जिस समय तुमने वृत्र द्वारा अवरुद्ध, जीवन-रक्षक और विनाश-रहित जल आकाशसे चारों ओर वितरण किया, उस समय सोमपानसे हर्ष-युक्त होकर तुमने लड़ाईमें वृत्रका वध किया था और जलके समुद्रकी तरह मेघको निम्नमुख कर दिया था।

६ इन्द्र! तुम महान् हो। अपने बलके द्वारा सारे जगत्के धारक वृष्टि-जलको आकाशसे पृथिवीके प्रदेशोंपर स्थापित करते हो। तुमने सोमपानसे हृष्ट होकर मेघसे जलको बाहर कर दिया है और विशाल पाषाणसे वृत्रको ध्वस्त किया है।

---

१ अतीव दानी, महान्, प्रभूतधनशाली, अमोघबल-सम्पन्न और प्रकाण्ड-देह-विशिष्ट इन्द्रके उद्देशसे मैं मननीय स्तुति सम्पादित करता हूँ निम्नगामिनी जलधाराकी तरह इन्द्रका बल कोई नहीं धारण कर सकता। स्तोताओंके बल-साधनके लिये इन्द्र सर्वव्यापी सम्पद्का प्रकाश करते हैं।

२ इन्द्र! यह सारा जगत् तुम्हारे यज्ञमें (तथा) हव्य-दाताओंका अभिषुत सोमरस तुम्हारी ओर प्रवाहित हुआ था। इन्द्रका शोभनीय, सुवर्णमय और हननशील वज्र पर्वतपर निद्रित था।

३ शुभ्र उषा! भयावह और अतीव स्तुति-पात्र इन्द्रको इस यज्ञमें इस समय यज्ञान्न दो। उनको विश्वधारक, प्रसिद्ध और इन्द्रत्व-चिह्नयुक्त ज्योति, घोड़ेकी तरह उनको यज्ञान्न-प्राप्ति करनेके अर्थ, इधर-उधर ले जाती है।

४ प्रभूतधनशाली और बहु-लोक-स्तुति इन्द्र! हम तुम्हारा अवलम्बन करके यज्ञ सम्पादन करते हैं। हम तुम्हारे ही हैं। स्तुति-पात्र! तुम्हारे सिवा और कोई यह स्तुति नहीं पाता। जैसे पृथिवी अपने प्राणियोंको धारण करती है, उसी तरह तुम भी यह स्तुति-वचन ग्रहण करो।

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥

११ अनुवाक । ५८ सूक्त । अग्नि देवता हैं। यहाँसे ६४ सूक्त तकके गौतमके पुत्र नोधा ऋषि हैं।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥१॥
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२॥
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥३॥
वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥४॥

५ इन्द्र ! तुम्हारा वीर्य महान् है। हम तुम्हारे ही हैं। मघवन् ! इस स्तोताकी कामना पूरी करो। विशाल आकाशने तुम्हारे वीर्यका लोहा माना था। यह पृथिवी भी तुम्हारे बलसे अवनत है।

६ वज्रधारी इन्द्र ! तुमने उस विस्तीर्ण मेघको, वज्र द्वारा, टुकड़े-टुकड़े किया। उस मेघके द्वारा आवृत जल, बहनेके लिये, तुमने नीचे छोड़ दिया। केवल तुम्हीं विश्वव्यापी बल धारण करते हो।

---

१ बड़े बलसे उत्पन्न और अमर अग्नि व्यथा-दान या ज्वलनमें समर्थ हैं। जिस समय देवाह्वानकारी अग्नि यजमानके हव्यवाही दूत हुए थे, उस समय समीचीन पथ द्वारा आकर उन्होंने अन्तरीक्ष निर्माण किया था या वहाँ प्रकाश किया था। अग्नि यज्ञमें हव्य द्वारा देवोंकी परिचर्या करते हैं।

२ अमर अग्नि तृण-गुल्म आदि अपने खाद्यको ज्वलन-शक्ति द्वारा मिलाकर और भक्षण कर तुरत काठके ऊपर चढ़ गये। वहन करनेके लिये इधर-उधर जानेवाली अग्निकी पृष्ठ-देश-स्थित ज्वाला गमनशील घोड़ेकी तरह शोभा पाती है। साथ ही आकाशके उन्नत और शब्दायमान मेघकी तरह शब्द भी करती है।

३ अग्नि हव्यका वहन करते हैं और रुद्रों तथा वसुओंके सम्मुख स्थान पाये हुए हैं। अग्नि देवाह्वानकारी और यज्ञ-स्थानमें उपस्थित रहते हैं। वह धन-जयी और अमर हैं। दीप्तिमान् अग्नि यजमानोंकी स्तुति काम करके और रथकी तरह चल करके प्रजाओंके घरमें बार-बार वरणीय या श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं।

४ अग्नि, वायु द्वारा प्रेरित होकर, महाशब्द, ज्वलन्त जिह्वा और तेजके साथ, अनायास पेड़ोंको व्याप्त कर देते हैं।

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५॥
दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥६॥
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७॥
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

५९ सूक्त । अग्नि देवता हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययंथ ॥१॥

अग्नि ! जिस समय तुम वन्य वृक्षोंको शीघ्र जलानेके लिये साँड़की तरह व्यग्र होते हो, हे दीप्त-ज्वाल अजर अग्नि ! उस समय तुम्हारा गमन-मार्ग काला हो जाता है।

५ अग्नि वायु द्वारा प्रेरित होकर, शिखारूप आयुध धारण करके, महातेजके साथ, अशुष्क वृक्ष-रस आक्रमण करके और गो-वृन्दके बीचमें साँड़की तरह सबको पराभूत करके चारों ओर व्याप्त होते हैं। सारे स्थावर और जंगम बहु-विचारी अग्निसे डरते हैं।

६ अग्नि ! मनुष्योंके बीचमें महर्षि भृगु लोगोंने, दिव्य जन्म पानेके लिये, तुम्हें, शोभन धनकी तरह, धारण किया था। तुम आसानीसे लोगोंका आह्वान सुननेवाले और देवोंका आह्वान करनेवाले हो। तुम यज्ञ-स्थानमें अतिथि-रूप और उत्तम मित्रकी तरह सुखदाता हो।

७ सात आह्वानकारी ऋत्विक् जो यज्ञोंमें परम यज्ञार्ह और देवाह्वानकारी अग्निको वरण करते हैं, उसी सर्व-धन-दाता अग्निको मैं यज्ञान्नसे सेवित करता हूँ और उनसे रमणीय धनकी याचना करता हूँ।

८ बलपुत्र और अनुरूप दीप्तियुक्त अग्नि आज हमें अच्छेद्य सुख दान करो। अन्न-पुत्र ! अपने स्तोताको, लौहकी तरह, दृढ़ रूपसे रक्षा करते हुए पापसे बचाओ।

९ प्रभावान् अग्नि ! तुम स्तोताके गृह-रूप बनो। धनवान् अग्नि ! धनवानोंके प्रति कल्याण-स्वरूप बनो। अग्नि ! स्तोताओंको पापसे बचाओ। प्रज्ञारूप धनसे सम्पन्न अग्नि ! आज प्रातःकाल शीघ्र आओ।

---

१ अग्निदेव ! अन्यान्य जो अग्नि हैं, वह तुम्हारी शाखाएँ हैं अर्थात् सब अंग हैं और तुम अङ्गी हो। तुममें सब अमर देवगण हृष्ट होते हैं। वैश्वानर ! तुम मनुष्योंकी नाभि हो। तुम निखात स्तम्भके समान मनुष्योंको धारण करते हो।

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥
बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥
दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५ ॥
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ६ ॥
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥

---

२ अग्नि स्वर्गके मस्तक, पृथिवीकी नाभि और द्युलोक तथा पृथिवीके अधिपति हुए थे। वैश्वानर! तुम देवता हो। देवोंने आर्यके लिये या विद्वान् मनुष्यके लिये ज्योतिःस्वरूप तुमको उत्पन्न किया था।

३ जिस तरह निश्चल किरणें सूर्यमें स्थापित हुई हैं, उसी तरह वैश्वानर अग्निमें सम्पत्तियाँ स्थापित हुई थीं। पर्वतों, ओषधियों, जलों और मनुष्योंमें जो धन है, उसके राजा तुम्हीं हो।

४ द्यावापृथिवी वैश्वानरके लिये विस्तृत हुए थे। जैसे बन्दी प्रभुकी स्तुति करता है, वैसे ही इस निपुण होताने सुगति-सम्पन्न, प्रकृत-बलशाली और नेतृश्रेष्ठ वैश्वानरके उद्देशसे बहु-विध महान् स्तुति-वाक्यका प्रयोग किया है।

५ वैश्वानर! तुम उत्पन्न सब प्राणियोंको जानते हो। आकाशसे भी तुम्हारा माहात्म्य अधिक है। तुम मानव-प्रजाओंके राजा हो। तुमने देवोंके लिये युद्ध करके धनका उद्धार किया है।

६ मनुष्य जिन वृत्र-हन्ता या मेघभेदन-कारी वैश्वानर या विद्युदग्निकी, वर्षाके लिये, अर्चना करते हैं, उन्हीं जलवर्षी वैश्वानरका माहात्म्य मैं शीघ्र बोलता हूँ। वैश्वानर अग्निने दस्यु या राक्षसको हनन किया है, वर्षाका जल नीचे गिराया है और शम्बरको भिन्न किया है। *

७ अपने माहात्म्य द्वारा वैश्वानर सब मनुष्योंके अधिपति और पुष्टिकर तथा अन्नशाली यज्ञमें यजनीय हैं। वैश्वानर प्रभा-सम्पन्न और सूनृत-वाक्यशाली हैं। शतवनी या शतवनिके पुत्र पुरुनीथ राजा, अनेक स्तुतियोंके साथ, इस अग्निकी स्तुति करते हैं।

---

* इस मंत्रसे मालूम पड़ता है कि, वृत्र-वध, जल-वर्षण और शम्बर-विनाशमें अग्निसे इन्द्रको सहायता मिली थी।

६० सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित् पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥२॥
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥
उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥
तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥

६१ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥

---

१ अग्नि हव्यवाहक, यशस्वी, यज्ञप्रकाशक और सम्यक् रक्षण-शील हैं। वह देवोंके दूत हैं; सदा हव्य लेकर देवोंके पास जाते हैं। वह दो काष्ठोंसे, अरणि-मन्थनसे, उत्पन्न और धनकी तरह प्रशंसित हैं। मातरिश्वा इन्हीं अग्निको, मित्रकी तरह, भृगु-वंशीयोंके पास ले आवे। ×

२ हव्यग्राही देव और मानव—दोनों इस शासनकर्त्ताकी सेवा करते हैं; क्योंकि यह पूज्य, प्रजापालक और फलदाता अग्नि सूर्योदयसे भी पहले यजमानोंके बीच स्थापित हुए हैं।

३ हृदय या प्राणसे उत्पन्न और मिष्टजिह्व अग्निके सामने हमारी नयी स्तुति व्याप्त हो। मनु-पुत्र मानव लोग यथा-समय यज्ञ-सम्पादन और यज्ञान्न-प्रदान करके इस अग्निको संग्राम-समयमें उत्पन्न करते हैं।

४ अग्नि कामना-पात्र, विशुद्धिकारी, निवास-हेतु, वरणीय और देवाह्वानकारी हैं। यज्ञमें प्रविष्ट मनुष्योंके बीच अग्निको स्थापित किया गया है। अग्नि शत्रुदमनमें क्रूरसंकल्प और हमारे घरोंमें पालनकर्त्ता हों। यज्ञ-भवनमें धनाधिपति हों।

५ अग्नि! हम गोतमगोत्रज हैं और तुम धनपति, रक्षणशील और यज्ञान्नके कर्त्ता हो। जैसे सवार हाथसे घोड़ेको साफ करता है, वैसे ही हम भी तुम्हें मार्जित करके मननीय स्तोत्र द्वारा प्रशंसा करेंगे। प्रज्ञा द्वारा अग्निने धन प्राप्त किया है। इस प्रातःकालमें तुरत आओ।

---

१ इन्द्र बली, क्षिप्रकारी, गुण द्वारा महान्, स्तुति-पात्र और अबाध-गति हैं। जैसे बुभुक्षितको अन्न दिया जाता है, वैसे ही मैं इन्द्रको ग्रहण-योग्य स्तुति और पूर्ववर्त्ती यजमान द्वारा दिया हुआ यज्ञान्न प्रदान करता हूँ।

× Bothlink और Roth के विश्वविख्यात कोषमें मातरिश्वाके दो अर्थ लिखे हैं—भृगुवंशीयोंके पूजक देव और अग्नि। उक्त कोषमें मातरिश्वाका अर्थ वायु नहीं लिखा है।

अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥

---

२ इन्द्रको, अन्नकी तरह, हव्य दान करता हूँ। शत्रुपराजयके साधन-स्वरूप स्तुति-वाक्योंका मैंने सम्पादन किया है। अन्य स्तोता भी उन पुरातन स्वामी इन्द्रके लिये हृदय, मन और ज्ञानसे स्तुति-सम्पादन करते हैं।

३ उन्हीं उपमानभूत, वरणीय-अन्नदाता और विज्ञ इन्द्रको वर्द्धन करनेके लिये मैं मुख द्वारा उत्कृष्ट और निर्मल स्तुति वचनोंसे युक्त तथा अति महान् शब्द करता हूँ।

४ जिस प्रकार रथ-निर्माता रथ-स्वामीके पास रथ चलाता है, उसी प्रकार मैं भी इन्द्रके उद्देशसे स्तोत्र प्रेरण करता हूँ। स्तुतिपात्र इन्द्रके लिये शोभन स्तुतिवचन प्रेरण करता हूँ। मेधावी इन्द्रके लिये विश्वव्यापी हवि प्रेरण करता हूँ।

५ जैसे घोड़ेको रथमें लगाया जाता है, वैसे ही मैं भी अन्न-प्राप्तिकी इच्छासे स्तुति-रूप मंत्र उच्चारण करता हूँ। उन्हीं वीर, दानशील, अन्नविशिष्ट और असुरोंके नगरविदारी इन्द्रकी वन्दनामें प्रवृत्त होता हूँ।

६ इन्द्रके लिये, त्वष्टाने, युद्धके निमित्त शोभन-कर्मा और सुप्रेरणीय वज्रका निर्माण किया था। शत्रु-नाशके लिये तैयार होकर ऐश्वर्यवान् और अपरिमित बलशाली इन्द्रने हननकर्त्ता वज्रसे वृत्रका मर्म काटा था।

७ जगत्के निर्माणकर्त्ता इन्द्रको इन महायज्ञमें जो तीन अभिषव किये गये हैं, इन्द्रने उनमें तुरत सोमरूप अन्न पान किया है। साथ ही मनोज्ञ हव्यरूप अन्न भी भक्षण किया है। सारे संसारमें इन्द्र व्यापक हैं। उन्होंने असुरोंका परिपक्व धन हरण किया है। वह शत्रुविजयी और वज्रक्षेपक हैं। उन्होंने मेघको पाकर उसे फोड़ा था।

८ इन्द्र द्वारा अहि या वृत्रका विनाश होनेपर समस्त लोक देवपत्नियोंने इन्द्रकी स्तुति की थी। इन्द्रने विस्तृत आकाश और पृथिवीको अतिक्रम किया था; किन्तु द्युलोक और पृथिवीलोक इन्द्रकी मर्यादाका अतिक्रम नहीं कर सकते।

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

---

९ द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षकी अपेक्षा भी इन्द्रकी महिमा अधिक है। अपने अधिवासमें अपने तेजसे इन्द्र स्वराज करते हैं। इन्द्र सर्व-कार्य-क्षम हैं। इन्द्रका शत्रु अयोग्य है और इन्द्र युद्धमें निपुण हैं। इन्द्र मेघरूप शत्रुओंको युद्धमें बुलाते हैं।

१० अपने वज्रसे इन्द्रने जल-शोषक वृत्रको छिन्न-भिन्न किया था। साथ ही चोरोंके द्वारा अपहृत गायोंकी तरह वृत्रासुर द्वारा अवरुद्ध तथा संसारके रक्षक जलको छुड़ा दिया था। हव्यदाताको इन्द्र उसकी इच्छाके अनुसार अन्न दान करते हैं।

११ इन्द्रकी दीप्तिके द्वारा समुद्र और गङ्गा आदि नदियाँ अपने-अपने स्थानपर शोभा पाती हैं; क्योंकि वज्र द्वारा इन्द्रने उनको सीमा निर्दिष्ट कर दी है। अपनेको ऐश्वर्यवान् करके और हव्यदाताको फल प्रदान करके इन्द्रने तुरत तुर्वीति ऋषिके निवास-योग्य एक स्थान बनाया। *

१२ इन्द्र शीघ्रकारी, सर्वेश्वर और अपरिमितशक्तिशाली हैं। इन्द्र! तुम इस वृत्रके ऊपर वज्र-प्रहार करो। गौ अर्थात् पशुकी तरह वृत्रके शरीरकी संधियाँ तिर्यक् भावसे अवस्थित वज्रसे काटो; ताकि वृष्टि बाहर हो सके और पृथिवीपर जल विचरण कर सके।×

---

* एक बार तुर्वीति ऋषि जल-मग्न हो रहे थे; परन्तु इन्द्रने पहुँच कर उन्हें जलसे निकाला और पृथिवीपर रखा।

× यहाँ "गोः" शब्दको उपलक्षक देखकर अनेक वेद-व्याख्याताओंने यह अनुमान लगाया है कि, आर्य लोग गोवध और गोमांस-भक्षण करते थे। विल्सन आदि सबने ऐसा ही अनुमान लगाया है। रमानाथ सरस्वती तो सबसे आगे बढ़ गये हैं। वे लिखते हैं—"उन दिनों गोमांस अभक्ष्य नहीं था। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१ अध्याय), कृष्णयजुर्वेदके तैत्तिरीय ब्राह्मण (अश्वमेध-प्रकरण) और शुक्लयजुर्वेदी वाजसनेयी संहिता (पुरुषमेध-प्रकरण) में आर्योंके विविध-मांस-व्यवहारकी कथा है। पहले गोमेध, अश्वमेध, अजमेध आदि यज्ञ प्रचलित थे। स्मृतिमें लिखा है कि, अतिथिके आनेपर 'महोक्षं वा महाजं वा' ऐसा चाहिये। × × × 'उत्तरचरित'के चतुर्थ अङ्कमें हम देखते हैं कि, [illegible] वत्सतरीका भक्षण किया था। इसीलिये अतिथिका एक नाम गोघ्न भी हुआ है।" सरस्वती महाशयकी अन्य बातोंका विवेचन यथास्थान किया जायगा; परन्तु यहाँ तो सायणने 'गोः' का अर्थ साधारण पशु ही किया है, जो युक्ति-संगत दीखता है। पशुको काटनेवालेको भी सायणने "मांस-विकर्त्ता" या कसाई लिखा है।

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

---

१३ जो मंत्रों द्वारा स्तुत्य हैं, उन्हीं युद्धार्थक्षिप्रगामी इन्द्रके पूर्व कर्मोंका वर्णन करो। इन्द्र युद्धके लिये बार-बार सारे शस्त्र फेंककर और शत्रुओंका वध कर उनके सम्मुख जाते हैं।

१४ इन्हीं इन्द्रके डरके मारे पर्वत निश्चल हो रहते हैं और इन्द्रके प्रकट होनेपर आकाश और पृथिवी काँपने लगते हैं। नोधा ऋषिने इन्हीं कमनीय इन्द्रकी रक्षण-शक्तिकी, सूक्तों द्वारा, बार-बार प्रार्थना करके तुरत ही वीर्य या शक्ति प्राप्त की थी।

१५ इन्द्र अकेले ही शत्रु-विजय कर सकते हैं। वह बहुविध धनोंके स्वामी हैं। स्तोताओंके पास इन्द्रने जिस स्तोत्रकी याचना की थी, उसे ही इन्द्रको दो या उसे ही इन्द्रको दिया गया। स्वश्वपुत्र सूर्यके साथ युद्धके समय सोमाभिषवकारी एतश ऋषिको इन्द्रने बचाया था।

१६ अश्वयुक्त-रथेश्वर इन्द्र! तुम्हें यज्ञमें उपस्थित करनेके लिये गोतम-गोत्रीय ऋषियोंने स्तुति-रूप मंत्रोंको कीर्तित किया था या स्तुत किया था। इन्हें बहुविध बुद्धि प्रदान करो। जिन इन्द्रने बुद्धि द्वारा धन पाया है, वही इन्द्र प्रातःकाल शीघ्र आवें।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

पञ्चम अध्याय

६२ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत् सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्त्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४ ॥
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥
तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ ६ ॥

---

१ वीर्यशाली और स्तव-पात्र इन्द्रको लक्ष्य कर हम, अङ्गिराकी तरह, मनमें कल्याणदायिनी स्तुति धारण करते हैं । इन्द्र शोभन स्तोत्र द्वारा स्तुति-कर्त्ता ऋषिके पूजा-पात्र हैं । उन प्रसिद्ध नेताकी, हम, स्तोत्र द्वारा, पूजा करते हैं ।

२ तुम लोग उस विशाल और बलवान् इन्द्रको उद्देश कर महान् और ऊँचे स्वरसे गाये जानेवाले स्तोत्र अर्पित करो । इन्द्रकी सहायतासे हमारे पूर्व-पुरुष अङ्गिरा लोगोंने, पद-चिन्ह देखते हुए, अर्चना-पूर्वक, पणि नामके असुर द्वारा अपहृत गौका उद्धार किया था ।

३ इन्द्र और अङ्गिराके गौ खोजते समय सरमा नामकी कुतियाने, अपने बच्चेके लिये, इन्द्रसे अन्न या दुग्ध प्राप्त किया था । उस समय इन्द्रने असुरका वध कर गौका उद्धार किया था । देवोंने भी गायोंके साथ आह्लादकर शब्द किया था ।

४ सर्वशक्तिमान् इन्द्र ! जिन्होंने नौ महीनोंमें यज्ञ समाप्त किया है और जिन्होंने दश महीनोंमें यज्ञ समाप्त किया है—ऐसे सप्तसंख्यक और सद्गति-कामी (अङ्गिरोवंशीय) मेधावियोंके सुखकर-स्वर-युक्त स्तोत्रोंसे तुम स्तुत किये गये हो तुम्हारे शब्दसे पर्वत और शस्योत्पादक मेघ भी डर जाते हैं ।

५ दर्शनीय इन्द्र ! अंगिरा लोगोंके द्वारा स्तुत होकर तुमने उषा और सूर्यकी किरणोंसे अन्धकारका विनाश किया है । इन्द्र ! तुमने पृथिवीका ऊबड़खाबड़ प्रदेश समतल और अन्तरिक्षका मूल प्रदेश दृढ़ किया है ।

६ पृथिवीकी मधुर-जल-पूर्ण गंगा आदि नदियोंको जो इन्द्रने जल-पूर्ण किया है, वह उन दर्शनीय इन्द्रका अत्यन्त पूज्य और सुन्दर कर्म है ।

द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥
सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥ ९ ॥
सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १० ॥
सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥ ११ ॥
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥

---

७ जिस इन्द्रको युद्धरूप प्रयत्नसे नहीं पाया जा सकता, बल्कि स्तोताओंकी स्तुति द्वारा पाया जा सकता है, उन्हीं इन्द्रने एकत्र संलग्न द्यौ और पृथिवीको अलग-अलग करके स्थित किया है; उन्हीं शोभन-कर्मा इन्द्रने सुन्दर और उत्तम आकाशमें, सूर्यकी तरह, द्यौ और पृथिवीको धारण किया है।

८ विषम-रूपिणी, प्रतिदिन उत्पद्यमाना और तरुणी रात्रि तथा उषा, द्यावा-पृथिवीपर, सदासे आ-आकर विचरण करती हैं। रात्रि काली और उषा तेजोमयी है।

९ शोभन-कर्म-कर्त्ता, अतीव बली और उत्तम कर्मसे सम्पन्न इन्द्र यजमानोंकी, पहलेसे, मित्रता करते आते हैं। इन्द्र, तुमने अपरिपक्व गायोंमें भी दूध दान किया है और कृष्ण तथा लोहित वर्णोंवाली गायोंमें भी शुक्लवर्णका दूध दान किया है।

१० जिन गति-विहीन अंगुलियोंने, सदा सम्बद्ध होकर स्थिति करनेपर भी, निरालसी बनकर, अपने बलपर, हजारों व्रतोंका पालन किया है या इन्द्रका व्रत अनुष्ठित किया है, वे ही सेवा-तत्पर अंगुली-रूपिणी भगिनी लोग पत्नी या पालयित्री की तरह प्रगल्भ इन्द्रकी सेवा करती हैं।

११ दर्शनीय इन्द्रदेव! तुम मन्त्र और प्रणामसे स्तुत होते हो। जो बुद्धिमान् अग्निहोत्रादि सनातन कर्म और धनकी इच्छा करते हैं, वे बड़े यत्नके बाद तुम्हें प्राप्त होते हैं। बली इन्द्र! जैसे कामिनी स्त्रियाँ आकांक्षी पतिको प्राप्त करती हैं, वैसे ही बुद्धिमानोंकी स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त करती हैं।

१२ दर्शनीय इन्द्र! जो सम्पत्ति, सदासे, तुम्हारे पास है, वह कभी भी विनष्ट नहीं होती। इन्द्र! तुम मेधावी, तेजः-शाली और यज्ञ-सम्पन्न हो। कर्मी इन्द्र! अपने कर्मों द्वारा हमें धन प्रदान करो।

सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १३ ॥

६३ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥

---

१३ इन्द्र ! तुम सबके आदि हो । हे बलोचन और बलवान् इन्द्र ! तुम रथमें घोड़े योजित करते हो । गोतम ऋषिके पुत्र नोधा ऋषिने हमारे लिये तुम्हारा यह अभिनव सूक्त-रूप स्तोत्र बनाया है । फलतः कर्म द्वारा जिन इन्द्रने धन पाया है, वह प्रातःकालमें शीघ्र आवें ।

---

१ इन्द्र ! तुम सर्वोत्तम गुणी हो । भय उपस्थित होनेपर अपने रिपु-शोषक बल द्वारा तुमने द्यौ और पृथिवीको धारण किया था । संसारके सारे प्राणी और पर्वत तथा दूसरे जो विशाल और दृढ़ पदार्थ हैं, वे सब भी, आकाशमें सूर्य-किरणोंकी तरह, तुम्हारे डरसे काँप गये थे ।

२ इन्द्र ! जिस समय तुम विभिन्न-गतिशाली अश्वको रथमें संयुक्त करते हो, उस समय तुम्हारे हाथमें स्तोता वज्र देता है; और, तुम उसी वज्रसे शत्रुओंका अनभीष्ट कर्म करके उनका विनाश करते हो । बहुलोकाहूत इन्द्र ! तुम उसके द्वारा असुरोंके अनेक नगर भी ध्वस्त करते हो ।

३ इन्द्र ! तुम सर्वोत्कृष्ट हो । तुम इन शत्रुओंके विनाशक हो । तुम ऋभुगणके स्वामी, मनुष्य-गणके उपकर्ता और शत्रुओंके हन्ता हो । संहारक और दुर्धुक युद्धमें तुमने प्रकाशक और तरुण कुत्सके सहायक बन कर शुष्ण नामक असुरका वध किया था ।

४ हे वृष्टि-कर्त्ता और वज्रधर इन्द्र ! जिस समय तुमने शत्रुका वध किया था, हे वीर, अभीष्ट-वर्षण-कामी और शत्रुजयी इन्द्र ! उस समय तुमने लड़ाईके मैदानमें दस्युओंको पराङ्मुख करके उन्हें ध्वस्त किया था और कुत्सके सहायक होकर उनको प्रतिष्ठित बनाया था ।

त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्यस्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिन् श्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥
अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

६४ सूक्त । मरुद्गण देवता हैं ।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्रभरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥

---

५ इन्द्र ! तुम किसी दृढ़ व्यक्तिकी हानि करनेकी इच्छा नहीं करते अर्थात् तुम किसी दृढ़ शत्रुका विनाश करना नहीं चाहते; तो भी शत्रुओंके द्वारा मनुष्योंका उपद्रव होनेपर तुम उनके अश्वके विचरणके लिये चारों ओर खोल देते हो अर्थात् केवल अपने भक्तोंके लिये चारो दिशाएं निरुपद्रुत कर देते हो तथा हे वज्रधर ! कठिन वज्रसे शत्रुओंका विनाश करते हो ।

६ इन्द्र ! जिस युद्धमें योद्धा लोग लाभ और धन पाते हैं, उसमें सहायताके लिये मनुष्य तुम्हें बुलाते हैं । बली इन्द्र ! समर-क्षेत्रमें तुम्हारा यह रक्षण-कार्य हमारी ओर प्रसारित हो । योद्धा लोग तुम्हारे रक्षा-पात्र हैं ।

७ वज्रिन् ! तुमने, पुरुकुत्स नामके ऋषिके सहायक होकर, उन सातों नगरोंका ध्वंस किया था और सुदास नामके राजाके लिये अंहा नामके असुरका धन, यज्ञ-कुशकी तरह, आसानीसे विच्छिन्न किया था । अनन्तर, इन्द्र ! उस हव्यदाता सुदासको वह धन दिया था ।

८ तुम हमारा विलक्षण या संग्रहणीय अन्न, व्याप्त पृथिवीपर, जलकी तरह, वर्द्धित करो । वीर, जैसे चारो ओर जलको तुमने क्षरित किया है, उसी तरह उस अन्न द्वारा हमें जीवन दिया है ।

९ इन्द्र ! तुम अश्व-सम्पन्न हो । तुम्हारे लिये गोतमवंशीयोंने भक्ति-पूर्वक मन्त्र कहे थे । तुम हमें नाना प्रकारके

अन्न प्रदान करो ।

१ हे नोधा ! वर्षक, शोभन-यज्ञ और पुण्य, फल आदिके कर्त्ता मरुद्गणको लक्ष्यकर सुन्दर स्तोत्र प्रेरण करो । जिन वाक्योंसे, वृष्टि-धाराकी तरह अर्थात् मेघोंकी विविध बूंदोंकी तरह, यज्ञ-स्थलमें देवोंको अभिमुख किया जाता है, उन्हीं वाक्योंको धीर और कृताञ्जलि होकर, मनोयोग-पूर्वक, प्रयुक्त करता हूँ ।

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हाचिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषान्नि मिमृक्षुॠष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥
पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सन् दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७ ॥
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिॠष्टिभिः समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८ ॥

---

२ अन्तरिक्षसे मरुद् लोग उत्पन्न हुए हैं। वे दर्शनीय, वीर्यशाली और रुद्रके पुत्र हैं। वे शत्रुजयी, निष्पाप, सबके शोधक सूर्यकी तरह दीप्त, रुद्रके गणकी तरह अथवा बहादुरकी तरह बल-पराक्रम-शाली, वृष्टि-बिन्दु-युक्त और घोर रूप हैं।

३ रुद्रके पुत्र मरुद्गण तरुण और जरा-रहित हैं तथा जो देवोंको हव्य नहीं देते, उनके नाशक हैं। वे अप्रतिहत-गति और पर्वतकी तरह दृढ़ाङ्ग हैं। वे स्तोताओंको अभीष्ट देना चाहते हैं। पृथिवी और द्युलोककी सारी वस्तुएँ दृढ़ हैं, तो भी उनको, मरुत् लोग, अपने बलसे, संचालित कर देते हैं।

४ शोभाके लिये अनेक अलंकारोंसे मरुद्गण अपने शरीरको अलंकृत करते हैं। शोभाके लिये हृदयपर सुन्दर हार धारण करते हैं और अंसमें आयुध पहनते हैं। नेतृस्थानीय मरुद्गण अन्तरिक्षसे, अपने बलके साथ, प्रादुर्भूत हुए थे।

५ यजमानोंको सम्पत्तिशाली, मेघादिको कम्पित और हिंसकको विनष्ट करके अपने बल द्वारा मरुतोंने वायु और विद्युत्को बनाया। इसके अनन्तर, चारों दिशाओंमें जा कर एवं सबको कम्पित कर, द्युलोकके मेघका दोहन किया तथा जलसे भूमिको सींचा

६ जैसे यज्ञभूमिमें ऋत्विक् लोग घीका सिञ्चन करते हैं, वैसे ही दान-परायण मरुत् लोग साररूप जलका सिञ्चन करते हैं। वे लोग घोड़ेकी तरह वेगवान् मेघको, बरसनेके लिये, विनम्र करते और गर्जनकारी तथा अक्षय्य मेघका दोहन करते हैं।

७ मरुद्गण! तुमलोग महान्, बुद्धिशाली, सुन्दर, तेजोविशिष्ट, पर्वतकी तरह बली और द्रुतगतिशील हो। तुमलोग करयुक्त गजकी तरह वनका भक्षण करते हो; क्योंकि तुम लोगोंने अरुण-वर्ण वड़वाको बल प्रदान किया है।

८ उत्कृष्ट-ज्ञानशाली मरुद्गण, सिंहकी तरह, निनाद करते हैं। सर्व-ज्ञाता मरुद्गण हिरणकी तरह सुन्दर हैं। मरुत् लोग शत्रु-विनाशक, स्तोताके प्रीति-कारी और क्रुद्ध होनेपर बाधकारी बलसे सम्पन्न हैं। ऐसे मरुद्गण अपने वाहन मृग और हथियारके साथ शत्रु द्वारा पीड़ित यजमानकी रक्षा करनेके लिये साथ ही आते हैं।

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसा हिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः सम्मिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥
हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥
घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १३ ॥
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥

---

९ हे दल-बद्ध, मनुष्य-हितैषी और वीर्यशाली मरुद्गण ! तुमलोग बल द्वारा विध्वंसक क्रोधसे युक्त हो कर आकाश और पृथिवीको शब्दायमान करो । मरुद्गण ! तुम लोगोंका तेज विमल-स्वरूप अथवा दर्शनीय विद्युत्की तरह रथके सारथि-वाले स्थानपर अवस्थान करता है ।

१० सर्वज्ञ, धनपति, बलशाली, शत्रु-बाधक अमित-पराक्रमी, सोमभक्षक और नेता मरुद्गण भुजाओंमें हथियार रखते हैं ।

११ वृष्टि-वर्द्धन-कर्ता मरुद्गण सोनेके रथ-चक्र द्वारा मार्गस्थ तिनके और पेड़की तरह मेघोंको उनके स्थानसे ऊपर उठा लेते हैं । वे यज्ञ-प्रिय देवोंके यज्ञ-स्थलमें गमन करते हैं । स्वयं शत्रुओंपर आक्रमण करते हैं । अचल पदार्थका संचालन करते हैं । दूसरेके लिये असह्य सम्पत् और प्रकाशशालो आयुध धारण करते हैं ।

१२ रिपु-विध्वंसक, सर्व-वस्तु-शोधक, वृष्टिदाता, सर्वद्रष्टा और रुद्र-पुत्र मरुद्गणकी, हम स्तोत्र द्वारा, स्तुति करते हैं । धूलिप्रेरक, शक्तिशाली, ऋजीष-युक्त और अभीष्टवर्षी मरुतोंके पास, धनके लिये, जाओ । *

१३ मरुद्गण ! तुमलोग जिसे आश्रय देते हुए रक्षित करते हो, वह पुरुष सबसे बली हो जाता और वह अश्व द्वारा अन्न और मनुष्य द्वारा धन प्राप्त करता है । वही बढ़िया यज्ञ करता और ऐश्वर्यशाली होता है ।

१४ मरुद्गण ! तुमलोग धनवालोंको सब कार्योंमें निपुण, युद्धमें अजेय, दीप्तिमान्, शत्रु-विनाशक, धनवान्, प्रशंसा-भाजन और सर्वज्ञ पुत्र प्रदान करो । ऐसे पुत्र-पौत्रोंको हम सौ वर्ष पोषित करते अर्थात् सौ वर्ष जीवित रखना चाहते हैं ।

१५ मरुद्गण ! हमें स्थायी, वीर्यशाली और शत्रुजयी धन दो । इस प्रकार शत-सहस्र धनसे युक्त होनेपर हमारी रक्षाके लिये, जिन्होंने कर्म द्वारा धन पाया है, वे मरुद्गण आगमन करें ।

---

* सोमसे एक बार रस निकालनेके अनन्तर जो अवशिष्ट रहता है, उसे ऋजीष कहा जाता है ।

१२ अनुवाक। ६५ सूक्त। अग्नि देवता हैं। यहाँसे ७३ सूक्तों तकके शक्तिके पुत्र पराशर ऋषि हैं।
द्विपदा विराट् छन्द है।

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम्।
सजोषा धीराः पदैरनुग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः ॥ १ ॥
ऋतस्य देवा अनुव्रता गुर्भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥ २ ॥
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शम्भु।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३ ॥
जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥ ४ ॥
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥ ५ ॥

---

१ अग्नि! पशु चुरानेवाले चोरकी तरह तुम भी गुहामें अवस्थान करो। मेधावी और सदृश-प्रीति-सम्पन्न देवोंने तुम्हारे पद-चिह्नको लक्ष्य कर अनुगमन किया था। तुम स्वयं हव्य सेवन करो और देवोंके लिये हव्य वहन करो। यजनीय सारे देवगण तुम्हारे पास आये थे।

२ देवोंने भागे हुए अग्निके पलायन कार्य आदिका अन्वेषण किया था। अनन्तर चारों ओर अन्वेषण किया गया। तुम इन्द्र आदि सब देवोंके आनेपर स्वर्गकी तरह हुए थे अर्थात् अग्निका अनुसन्धान करने सब देवता भूलोक आये थे। अग्नि जलके कारण-स्वरूप, जलगर्भमें प्रादुर्भूत और स्तोत्र द्वारा प्रवर्द्धित हैं। अग्निको छिपानेके लिये जल बढ़ गया था।

३ अभीष्ट फलकी पुष्टिकी तरह अग्नि रमणीय, पृथिवीकी तरह विस्तीर्ण, पर्वतकी तरह सबके भोजयिता और जलकी तरह सुखकर हैं। अग्नि, युद्धमें परिचालित अश्व और सिन्धुकी तरह, शीघ्रगामी हैं। ऐसे अग्निका कौन निवारण कर सकता है?

४ जिस प्रकार भगिनीका हितैषी भ्राता है, उसी प्रकार सिन्धुके हितैषी अग्नि हैं। जैसे राजा शत्रुका विनाश करता है, वैसे ही अग्नि वनका भक्षण करते हैं। जिस समय, वायुप्रेरित अग्नि वन जलानेमें लगते हैं, उस समय पृथिवीके सब ओषधि-रूप रोम छिन्न कर डालते हैं।

५ जलके भीतर बैठे हंसकी तरह अग्नि जलके भीतर प्राण धारण करते हैं। उषा-कालमें जागकर प्रकाश द्वारा अग्नि सबको चेतना प्रदान करते हैं। सोमकी तरह सारी ओषधियोंको वर्द्धित करते हैं। अग्नि, गर्भस्थ पशुकी तरह, जलके बीच संकुचित हुए थे। अनन्तर, प्रवर्द्धित होनेपर, अग्निका प्रकाश दूरतक विस्तृत हुआ।

६६ सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

रयिर्न चित्रा सूरो न सन्दृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ १ ॥
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥ २ ॥
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥ ३ ॥
सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥ ४ ॥
तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥ ५ ॥

---

१ अग्नि, धनकी तरह विलक्षण, सूर्यकी तरह सब पदार्थोंके दर्शक, प्राणवायुकी तरह जीवन-रक्षक और पुत्रकी तरह हितकारी हैं । अग्नि अश्वकी तरह लोकको वहन करते और दुग्धदात्री गौकी तरह उपकारी हैं । दीप्त और आलोक-युक्त अग्नि वन दग्ध करते हैं ।

२ अग्नि, रमणीय घरकी तरह, धन-रक्षामें समर्थ और पके जौकी तरह लोक-विजयी हैं । अग्नि, ऋषिकी तरह, देवोंके स्तोता और संसारमें प्रशंसनीय तथा अश्वकी तरह हर्ष-युक्त हैं । ऐसे अग्नि हमें अन्न प्रदान करें ।

३ दुष्प्राप्य-तेजा अग्नि यज्ञकारीकी तरह ध्रुव और गृहस्थित गृहिणी (जाया) की तरह घरके भूषण हैं । जिस समय अग्नि विचित्र-दीप्ति-युक्त होकर प्रज्वलित होते हैं, उस समय वह शुभ्रवर्ण सूर्यकी तरह हो जाते हैं । अग्नि, प्रजाके बीचमें रथकी तरह दीप्ति-युक्त और संग्राममें प्रभा-युक्त हैं ।

४ स्वामीके द्वारा सञ्चालित सेना अथवा धनुर्धारीके दीप्ति-युक्त बाणकी तरह अग्नि शत्रुओंमें भय संचार करते हैं । जो उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होगा, वह सब अग्नि है । अग्निदेव कुमारियोंके जार हैं; क्योंकि 'लाजा-होम'के अनन्तर ही कन्या विवाहिता समझी जाती है । अग्नि विवाहिता स्त्रियोंके पति हैं; क्योंकि विवाहिता नारी अग्निकी सेवा करनेमें पुरुषको साहाय्य देती हैं ।

५ जिस प्रकार गायें घरमें जाती हैं, उसी प्रकार हम जंगम और स्थावर अर्थात् पशु और धान्य आदि उपहारके साथ प्रदीप्त अग्निके पास जाते हैं । जल-प्रवाहकी तरह अग्नि इधर-उधर ज्वाला प्रेरित करते हैं । आकाशमें दर्शनीय अग्निकी किरण मिश्रित होती है ।

६७ सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत् स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥ २ ॥
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥ ३ ॥
य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥ ५ ॥

६८ सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् ।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥ १ ॥

---

१ जैसे राजा सर्व-कर्म-क्षम व्यक्तिका आदर करते हैं, वैसे ही अरण्य-जात और मनुष्योंके मित्र अग्नि यजमानपर अनुग्रह करते हैं। अग्नि पालककी तरह कर्म-साधक, कर्म-शीलकी तरह भद्र, देवोंको बुलानेवाले और हव्य-वाहक हैं। अग्नि शोभन-कर्मा बनो।

२ अग्नि सारे हव्यरूप धन, अपने हाथमें धारण करके, गुहाके बीच छिप गये। ऐसा होनेपर देवता लोग डर गये। नेता और कर्म-धारयिता देवोंने जिस समय हृदय-धृत मंत्र द्वारा अग्निकी स्तुति की, उस समय उन्होंने अग्निको प्राप्त किया।

३ सूर्यकी तरह अग्नि पृथिवी और अन्तरिक्षको धारण किये हुए हैं। साथ ही सत्य मंत्र द्वारा आकाशको धारण करते हैं। विश्वायु या सर्वान्न अग्नि! पशुओंको प्रिय भूमिकी रक्षा करो और पशुओंके चरनेकी अयोग्य गुहामें जाओ।

४ जो पुरुष गुहा-स्थित अग्निको जानता है और जो यज्ञका धारयिता अग्निके पास जाता है तथा जो लोग यज्ञका अनुष्ठान करते हुए अग्निकी स्तुति करते हैं, ऐसे लोगोंको अग्निदेव तुरत धनकी बात बता देते हैं।

५ जिन अग्निने ओषधियोंमें उनके गुण स्थापित किये हैं और मातृ-रूप ओषधियोंमें उत्पद्यमान पुष्प, फल आदि निहित किये हैं, मेधावी पुरुष जलमध्यस्थ और ज्ञान-दाता उन्हीं विश्वायु अग्निको, गृहकी तरह, पूजा करके कर्म करते हैं।

---

१ हव्य-धारक अग्नि हव्य द्रव्यको मिलाकर आकाशमें उपस्थित करते हैं तथा स्थावर-जंगम वस्तुओं और रात्रिको अपने तेज द्वारा प्रकाशित करते हैं। सारे देवोंमें अग्नि प्रकाशमान और स्थावर, जंगम आदिमें व्याप्त हैं।

आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २ ॥
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥ ३ ॥
होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥
पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥ ५ ॥

६९ सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥
वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥

२ अग्निदेव ! तुम्हारे सूखे काठसे जलकर प्रकट होनेपर सारे यजमान तुम्हारे कर्मका अनुष्ठान करते हैं । तुम अमर हो । स्तोत्र द्वारा तुम्हारी सेवा करके वे सब प्रकृत देवत्व प्राप्त करते हैं ।

३ अग्निके यज्ञस्थलमें आनेपर उनकी स्तुति और यज्ञ किये जाते हैं । अग्नि विश्वायु हैं । सब यजमान अग्निका यज्ञ करते हैं । अग्निदेव ! जो तुम्हें हव्य देता है अथवा जो तुम्हारा कर्म करनेको सीखता है, तुम उसके लिये अनुष्ठानको जान कर उसे धन दो ।

४ हे अग्नि ! तुम मनुके पुत्रोंमें देवोंके आह्वानकारी रूपसे अवस्थान करते हो । तुम्हीं उनके धनके अधिपति हो । उन्होंने पुत्र उत्पन्न करनेके लिये अपने शरीरमें शक्तिकी इच्छा की थी अर्थात् तुम्हारे अनुग्रहसे उन्होंने पुत्र-प्राप्ति की थी । वे मोहका त्याग करके पुत्रोंके साथ चिरकालतक जीवित रहें ।

५ जिस प्रकार पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करता है, उसी प्रकार यजमान लोग तुरत अग्निकी आज्ञा सुनते और अग्नि द्वारा आदिष्ट काम करते हैं । अनन्त-धनवाली अग्नि यजमानोंके यज्ञके द्वार-रूप धनको प्रदान करते हैं । यज्ञ-रत गृहमें अग्नि आसक्त हैं; और, उन्होंने ही आकाशको नक्षत्र-युक्त किया था ।

---

१ शुक्लवर्ण अग्नि उषा-प्रेमी सूर्यकी तरह सर्व-पदार्थ-प्रकाशक हैं । अग्नि, प्रकाशक सूर्यकी ज्योतिकी तरह, अपने तेजसे द्यौ और पृथिवीको एक साथ परिपूर्ण करते हैं । हे अग्निदेव ! तुम प्रकट होकर अपने कर्म द्वारा सारे जगत्को परिव्याप्त करो । तुम देवोंके पुत्र होकर भी उनके पिता हो; क्योंकि पुत्रकी तरह देवोंके दूत हो और पिताकी तरह देवोंको हव्य देते हो ।

२ मेधावी, निरहंकार और कर्माकर्म-ज्ञाता अग्नि, गौके स्तनकी तरह, अन्न स्वादिष्ट करते हैं । संसारमें हितैषी पुरुषकी तरह अग्नि यज्ञमें आहूत होकर और यज्ञस्थलमें आकर प्रीति-प्रदान करते हैं ।

पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।
विशो यदह्वे नृभिः सनीला अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥ ३ ॥
नकिष्ट एता व्रतामिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवेरपांसि ॥ ४ ॥
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्वर्दृशीके ॥ ५ ॥

७० सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥ १ ॥
गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥ २ ॥
स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः ।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥ ३ ॥

३ घरमें पुत्रकी तरह उत्पन्न होकर अग्नि आनन्द प्रदान करते हैं तथा अश्वकी तरह हर्षान्वित होकर युद्धमें शत्रुओंको अतिक्रम करते हैं । जब मैं मनुष्योंके साथमें समान-निवासी देवोंको बुलाता हूँ, तब तुम अग्नि ! सब देवोंका देवत्व प्राप्त करते हो ।

४ राक्षसादि तुम्हारे व्रत आदिको ध्वंस नहीं करते; क्योंकि तुम उन व्रतादिमें वर्त्तमान यजमानोंको यज्ञ-फलरूप सुख प्रदान करते हो । यदि राक्षसादि तुम्हारे व्रतका नाश करें, तो अपने साथी नेता मरुतोंके साथ तुम उन बाधकगणको भगा देते हो ।

५ उषा-प्रेमी सूर्यकी तरह अग्नि ज्योतिः-सम्पन्न और निवास-हेतु हैं । अग्निका रूप संसार जानता है । अग्नि उपासकको जानें । अग्निका किरण स्वयं हव्य वहन करके यज्ञ-गृहके द्वारपर फैलती; तदनन्तर दर्शनीय आकाशमें जाती है ।

---

१ जो शोभन दीप्तिसे युक्त अग्नि ज्ञानके द्वारा प्रापणीय हैं, जो सारे देवोंके कर्म और मनुष्योंके जन्मरूप कर्मके विषय समझ कर सारे कार्योंमें व्याप्त हैं, वैसे अग्निसे हम प्रभूत अन्न माँगते हैं ।

२ जो अग्नि जल, वन, स्थावर और जंगमके बीच अवस्थान करते हैं, उन्हें यज्ञ-गृह और पर्वतके ऊपर लोग हवि प्रदान करते हैं । जैसे प्रजावत्सल राजा प्रजाके हितका कार्य करते हैं, वैसे ही अमर अग्नि हमारे हितकर कार्यका सम्पादन करें ।

३ मंत्र द्वारा जो यजमान अग्निकी यथेष्ट स्तुति करता है, उसे रात्रिमें प्रदीप्त अग्नि धन देते हैं । हे सर्वज्ञाता अग्नि ! तुम देवों और मनुष्योंके जन्म जानते हो; इसलिये समस्त जीवोंका पालन करो ।

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ।
अराधि होता स्वर्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४ ॥
गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५ ॥
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥ ६ ॥

७१ सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥
वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २ ॥
दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥

---

४ विभिन्न-स्वरूप होकर भी उषा और रात्रि अग्निको वर्द्धन करती हैं । स्थावर और जंगम पदार्थ यज्ञ-वेष्टित अग्निको वर्द्धन करते हैं । देवोंके आह्वानकारी वही अग्नि देव-पूजन-स्थानमें बैठकर और सारे यज्ञ कर्मोंको सत्य-फल-सम्पन्न करके पूजित होते हैं ।

५ अग्नि ! हमारे काममें आने योग्य गौओंको उत्कृष्ट करो । सारा संसार हमारे लिये ग्रहण योग्य उपासना-रूप धन ले आवे । अनेक देव-स्थानोंमें मनुष्यलोग तुम्हारी विविध प्रकारकी पूजा करते तथा बूढ़े पिताके समीपसे पुत्रकी तरह तुम्हारे पाससे धन प्राप्त करते हैं ।

६ साधककी तरह अग्नि धन अधिकृत करते हैं । अग्नि धनुर्द्धरकी तरह शूर, शत्रुकी तरह भयंकर और युद्ध-क्षेत्रमें प्रज्वलित हैं ।

---

१ जैसे स्त्री स्वामीको प्रसन्न करती है, वैसे ही एक-स्थानवर्त्तिनी और आकांक्षिणी भगिनी-रूपिणी अँगुलियाँ अभिलाषी अग्निको हव्य प्रदान द्वारा प्रसन्न करती हैं । पहले उषा कृष्णवर्णा और पीछे शुभ्रवर्णा होती हैं, जब उषाकी जैसे किरणें सेवा करती हैं, वैसे ही सारी अँगुलियाँ अग्निकी सेवा करती हैं ।

२ हमारे अङ्गिरा नामके पितरोंने मंत्र द्वारा अग्निकी स्तुति करके बली और दृढ़ाङ्ग पणि असुरको स्तुति-शब्द द्वारा ही नष्ट किया था तथा हमारे लिये महान् द्युलोकका मार्ग दिया था । अनन्तर, उन्होंने सुखका विवर, आदित्य और पणि द्वारा अपहृत गौओंको पाया था ।

३ अङ्गिरोवंशीयोंने यज्ञ-रूप अग्निको, धनकी तरह, धारण किया था । अनन्तर जिन यजमानोंके पास धन है और जो अन्य-विषयाभिलाषा त्याग करके अग्निको धारण करते एवं अग्निकी सेवामें रत रहते हैं, वे हव्यके द्वारा देवों और मनुष्योंको श्रीवृद्धि करके अग्निके सामने जाते हैं ।

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥
महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥
स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ॥ ८ ॥
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥

---

४ मातरिश्वा या व्यान-वायुके विलोड़ित करनेपर शुभ्रवर्ण होकर अग्नि समस्त यज्ञ-गृहमें प्रकट होते हैं। उस समय जिस तरह मित्र राजा प्रबल राजाके पास अपने आदमीको दूत-कर्ममें नियुक्त करता है, उसी तरह भृगु महर्षिकी तरह यज्ञ-सम्पादक यजमान अग्निको दूत-कर्ममें नियोजित करता है।

५ जिस समय यजमान महान् और पालक देवताको हव्य-रूप रस देता है, उस समय, अग्निदेव ! स्पर्श-कुशल राक्षस आदि तुम्हें हविर्वाहक जानकर भाग जाते हैं। बाणप्रक्षेपक अग्नि भागते हुए राक्षसोंके पास अपने रिपु-संहारी धनुषसे दीप्तिशाली बाण फेंकते हैं तथा प्रकाशशाली अग्नि अपनी पुत्री उषामें अपना तेज स्थापित करते हैं।

६ अग्नि ! अपने यज्ञ-गृहमें, मर्यादाके साथ, जो यजमान तुम्हें चारों तरफ प्रज्वलित करता है; और, अनुदिन अभिलाष करके तुम्हें अन्न प्रदान करता है, हे द्विबर्हा या दो मध्यम-उत्तम स्थानोंमें वर्द्धित अग्नि ! तुम उसका अन्न वर्द्धित करते हो। जो युद्धार्थी पुरुषको, रथके साथ, युद्धमें प्रेरण करता है, वह धन प्राप्त करे।

७ जिस प्रकार विशाल सात नदियाँ समुद्राभिमुख धावित होती हैं, उसी प्रकार हव्यका अन्न अग्निको प्राप्त होता है। हमारी ज्ञातियाँ हमारे अन्नका भाग नहीं पाते अर्थात् हमारे पास प्रचुर धन नहीं है; इसलिये हे अग्नि ! तुम प्रकृष्ट अन्न जानकर देवोंको सूचित करो।×

८ अग्निका विशुद्ध और दीप्तिमान् तेज अन्न-प्राप्तिके लिये मनुष्य-पालक या यजमानको व्याप्त हो। उसी तेज द्वारा अग्नि गर्भ-निषिक्त वीर्यसे बलवान्, प्रशस्य, युवक और शोभनकर्मा पुत्र उत्पन्न करें तथा यज्ञ आदि कर्ममें प्रेरण करें।

९ मनकी तरह शीघ्रगामी जो सूर्य स्वर्गीय पथमें अकेले जाते हैं, वह तुरत ही विविध धन प्राप्त करते हैं ! शोभमान और सुबाहु मित्र और वरुण हमारी गौओंके प्रीतिकर और अमृत-तुल्य दूधकी रक्षा करते हुए अवस्थान करें।

× ऋग्वेदके कई स्थानोंपर सात नदियोंका उल्लेख है; परन्तु उनका नामकरण नहीं है ! हाँ, ऋग्वेद [१०।७५।५] में इन दस नदियोंका नाम आता है—१ गङ्गा, २ यमुना, ३ सरस्वती, ४ शुतुद्री, ५ परुष्णी, ६ मरुद्वृधा, ७ असिक्नी, ८ वितस्ता, ९ आर्जीकीया, १० सुषोमा। यास्कके मतसे परुष्णी = इरावती, आर्जीकीया = विपाशा और सुषोमा = सिन्धु नदी है।

मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन्।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १० ॥

७२ सूक्त। अग्नि देवता हैं।

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥ १ ॥
अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः।
श्रमयुवः पदव्यो धियन्धास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥
तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३ ॥
आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥

---

१० हे अग्नि! हमारी पैतृक मित्रता नष्ट नहीं करना, क्योंकि तुम भूत-दर्शी और वर्त्तमान विषय-ज्ञाता हो। जैसे सूर्य की किरणें अन्तरीक्षको ढक लेती हैं, वैसे ही जरा या बुढ़ापा हमारा विनाश करता है। विनाश-कारण जरा जिस प्रकार न आने पावे, वैसे करो।

---

१ ज्ञाता और नित्य अग्निकी स्तुतिका आरम्भ करो अथवा नित्य ब्रह्माके मंत्र अग्नि ग्रहण करते हैं। अग्नि मनुष्योंके हित-साधक धन हाथमें धारण करते हैं। अग्नि स्तुति-कर्त्ताओंको अमृत या हिरण्य प्रदान करते हैं। अग्नि ही सर्वोच्च धनके अधिपति हैं।

२ सारे अमरण-धर्मा देवगण और मोह-रहित मरुद्गण, अनेक कामना करनेपर भी, हमारे प्रिय और सर्वव्यापी अग्निको नहीं पा सके। पैदल चलते-चलते थक कर और अग्निके कार्योंको लक्ष्यकर अन्तको वे लोग अग्निके स्थानमें उपस्थित हुए।

३ हे दीप्तिमान् अग्नि! दीप्तिमान् मरुतोंने तीन वर्षतक तुम्हारी घृतसे पूजा की थी। अनन्तर मरुतोंने यज्ञमें प्रयोग योग्य नाम धारण किये और उत्कृष्ट जन्म लेकर अमर-शरीर धारण किया। ×

४ यज्ञार्ह देवोंने विशाल द्युलोक और पृथिवीमें विद्यमान रह कर रुद्र या अग्निके उपयुक्त स्तोत्र किया था। मरुतोंने इन्द्रके साथ उत्तम स्थानमें निहित अग्निको समझ कर उसे प्राप्त किया था। *

× मरुतोंके इन नामोंको आचार्य सायणने "तैत्तिरीय" से इस प्रकार उद्धृत किया है—ईदृक्, अन्यादृक्, तादृक्, प्रतिदृक्, मित, संमित, सभरा आदि।

* यहाँ आचार्य सायणने "तैत्तिरीय" से एक उपाख्यान उद्धृत किया है—देवासुर-संग्रामके समय देवोंकी सम्पत्ति चुरा कर अग्नि भाग गये। पीछे देवगण अग्निके पास गये और अग्निसे अपना धन जबरदस्ती छीन लिया। इसपर अग्नि रोने लगे। तभीसे अग्निका एक नाम रुद्र पड़ गया।

सञ्जानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यन् नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ ॥
त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् शुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥ १० ॥

५ हे अग्निदेव ! देवता तुम्हें अच्छी तरह जानकर बैठ गये और अपनी स्त्रियोंके साथ सम्मुखस्थ जानुयुक्त अग्निकी पूजा की। अनन्तर मित्र अग्निको देखकर, अग्नि द्वारा रक्षित, मित्र देवोंने अग्निके शरीरका शोषण कर यज्ञ किया था।

६ अग्नि ! तुम्हारे अन्दर निहित एकविंशति निगूढ़ पदों वा यज्ञोंको यजमानोंने जाना है और उन्हींसे तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम भी यजमानोंके प्रति उसी प्रकार स्नेह-युक्त होकर उनके पशु और स्थावर-जंगमकी रक्षा करो। *

७ अग्नि ! सारे जानने योग्य विषयोंको जानकर प्रजाओंके जीवन-धारणके लिये क्षुधा-निवृत्ति करो। आकाश और पृथिवीपर जिस मार्गसे देव लोग जाते हैं, वह जानकर और आलस्य-रहित होकर, दूत-रूपसे, हव्य वहन करो।

८ शोभन-कर्म-सम्पन्ना विशाल सात नदियाँ द्युलोकसे निकली हैं। ये सारी नदियाँ अग्नि द्वारा स्थापित हैं। यज्ञज्ञाता अङ्गिरा लोगोंने असुरों द्वारा चुराये हुए गोधनका गमन-मार्ग तुमसे जाना था। तुम्हारी कृपासे सरमाने उनके पाससे प्रचुर गो-दुग्ध प्राप्त किया था। उसके द्वारा मनुष्यकी रक्षा होती है।

९ आदित्यगणने अमरत्व-सिद्धिके लिये उपाय करके पतन-निरोधके लिये जो सारे कर्म किये थे, अदिति-रूपिणी जननी पृथ्वीने सारे जगत्के धारणके लिये उन महानुभव पुत्रोंके साथ जो विशेष महत्त्व प्राप्त किया था, अग्निदेव ! तुमने हव्य भक्षण किया था, वही सबका कारण है। ×

१० इस अग्निमें यजमानोंने सुन्दर यज्ञ-सम्पत् स्थापित की थी एवं यज्ञके चक्षुःस्वरूप घृत दिया था। अनन्तर देवता लोग आये। यह देखकर अग्निदेव ! तुम्हारी समुज्ज्वल शिखा, वेगवती नदीकी तरह, सारी दिशाओंमें फैली और देवोंने भी वह जाना।

* सायणाचार्यने एकविंशति या इक्कीस पदोंका अर्थ 'यज्ञों' किया है। उन सब यज्ञोंके नाम भी उन्होंने इस तरह लिखे हैं—विश्वेदेवोंके सम्बन्धके सात पाक-यज्ञ, अश्वमेध, दर्शपूर्ण मास आदि सात हविर्यज्ञ तथा अग्निष्टोम, अतिअग्निष्टोम आदि सात सोमयज्ञ।

× "इस मंत्रका यह मर्म मालूम होता है कि, अग्निको हव्य देकर यज्ञ करनेसे ही सूर्य आकाशसे नहीं गिर पड़ते और पृथिवी महान् भार वहन करती है।" —रमेशचन्द्र दत्त।

"अग्निको पोषण करनेके लिये ही अदिति और आदित्यगण विस्तृत हुए थे।" —वेदार्थयत्न

७३ सूक्त । अग्नि देवता हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥ १ ॥
देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥ २ ॥
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३ ॥
तन्त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥ ४ ॥
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सन्धुः ॥ ७ ॥

---

१ पैतृक धनकी तरह अग्नि अन्नदाता हैं; शास्त्रज्ञ व्यक्तिके शासनकी तरह अग्नि नेता हैं; उपविष्ट अतिथिकी तरह अग्नि प्रीति-पात्र हैं; और, होताकी तरह अग्नि यजमानका घर वर्द्धित करते हैं।

२ प्रकाशमान सूर्यकी तरह यथार्थदर्शी अग्नि अपने कार्य द्वारा समस्त संसारसे रक्षा करते हैं। यजमानोंके प्रशंसित अग्नि प्रकृतिके स्वरूपकी तरह परिवर्तन-रहित हैं। अग्नि आत्माकी तरह सुखकर हैं। ऐसे अग्नि यजमानों द्वारा धारणीय हैं।

३ द्युतिमान् सूर्यकी तरह अग्नि समस्त संसारको धारण करते हैं। अनुकूल सुहृदसे सम्पन्न राजाकी तरह अग्नि पृथिवी पर निवास करते हैं। संसार अग्निके सामने पितृ-गृहमें पुत्रकी तरह बैठता है। अग्नि पति-सेविता और अनिन्दनीया स्त्रीकी तरह विशुद्ध हैं।

४ हे अग्नि! संसार उपद्रव-शून्य स्थानपर अपने घरमें, अनवरत काष्ठसे जलाकर, तुम्हारी सेवा करता है। साथ ही अनेक यज्ञोंमें अन्न भी प्रदान करता है। तुम विश्वायु या सर्वान्न होकर हमें धन दो।

५ अग्निदेव! धनशाली यजमान अन्न प्राप्त करे। जो विद्वान् तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हें हव्य-दान करते हैं, वे दीर्घ आयु प्राप्त करें। हम लड़ाईके मैदानमें शत्रुका अन्न लाभ करें। अनन्तर यशके लिये देवोंका अंश देवोंको अर्पण करें।

६ नित्य दुग्धशालिनी और तेजस्विनी गायें अग्निकी अभिलाषा करके यज्ञस्थानमें अग्निको दुग्ध पान कराती हैं। प्रवहमाना नदियाँ अग्निके पास अनुग्रहकी याचना करके, पर्वतके पास दूर देशसे प्रवाहित होती हैं।

७ हे द्युतिमान् अग्नि! यज्ञाधिकारी सारे देवोंने तुम्हारे अनुग्रहकी याचना करके तुम्हारे ऊपर हव्य स्थापन किया है। अनन्तर भिन्न-भिन्न अनुष्ठानके लिये उषा और रात्रिको भिन्न-रूपिणी किया है। रात्रिको कृष्णवर्ण और उषाको अरुण-वर्ण किया है।

यान्राये मर्तान् सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८ ॥
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ९ ॥
एता ते अग्ने उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ १० ॥

---

१३ अनुवाक । ७४ सूक्त । अग्नि देवता हैं । यहाँसे ९३ सूक्त तक रहूगणके
पुत्र गोतम ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥ २ ॥
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥ ३ ॥
यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत् कृणोष्यध्वरम् ॥ ४ ॥
तमित् सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् ॥ ५ ॥

---

८ तुम जो मनुष्योंको, धन-लाभके लिये, यज्ञ-कर्ममें प्रेरित करते हो—वे और हम धनी होंगे । तुमने आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्षको परिपूर्ण किया है । साथ ही सारे संसारको, छायाकी तरह, रक्षित करते हो ।

९ अग्निदेव ! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित होकर हम अपने अश्वसे शत्रुके अश्वका वध करेंगे । अपने योद्धाओंके द्वारा शत्रुके योद्धाओंको और अपने वीरों द्वारा शत्रुके वीरोंका वध करेंगे । हमारे विद्वान् पुत्र पैतृक धनके स्वामी होकर सौ वर्ष जीवनका भोग करें ।

१० हे मेधावी अग्नि ! हमारे सब स्तोत्र तुम्हारे मन और अन्तःकरणको प्रिय हों । देवोंके संभोग योग्य अन्न तुम्हारे अन्दर स्थापित करके हम तुम्हारे दारिद्र्य-विनाशी धनकी रक्षा कर सकें ।

---

१ जो अग्नि दूर रहकर भी हमारी स्तुति सुनते हैं, यज्ञमें आगमनशील उन अग्निको हम स्तुति करते हैं ।

२ जो अग्नि, वधकारिणी शत्रुभूता प्रजाओंके बीच संगत होकर हविर्दानकारी यजमानके लिये धनकी रक्षा करते हैं, उन अग्निकी हम स्तुति करते हैं ।

३ सारा लोक उत्पन्न होते ही अग्निकी स्तुति करे, अग्नि शत्रु-हन्ता और युद्धमें शत्रु-धनकी जय करते हैं ।

४ अग्नि ! जिस यजमानके यज्ञ-गृहमें तुम देव-दूत होकर उनके भोजनके लिये हव्य वहन करते और यज्ञ शोभित करते हो—

५ हे बलके पुत्र अङ्गिरा (अग्नि) ! उसी यजमानको सारे मनुष्य शोभन-देव-संयुक्त, शोभन-हव्य-सम्पन्न और शोभन-यज्ञयुक्त कहते हैं ।

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥ ६ ॥
न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ॥ ७ ॥
त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥ ८ ॥
उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ॥ ९ ॥

७५ सूक्त । अग्नि देवता हैं । गायत्री छन्द है ।

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥ १ ॥
अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ॥ २ ॥
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ ३ ॥
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ ४ ॥
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ ॥

---

६ हे ज्योतिर्मय अग्नि ! इस यज्ञमें, स्तुति ग्रहण करनेके लिये, देवोंको हमारे समीप ले आओ और भोजन करनेके लिये हव्य प्रदान करो ।

७ हे अग्नि ! जिस समय तुम देवोंके दूत बनकर आते हो, उस समय तुम्हारे गतिशाली रथके अश्वका शब्द नहीं सुनाई देता ।

८ जो पुरुष पहले निकृष्ट है, वह तुम्हें हव्य दान करके तुम्हारे द्वारा रक्षित और अन्न युक्त होकर लज्जा-रहित (ऐश्व-र्यशाली) बनता है ।

९ हे प्रकाशमान अग्नि ! जो यजमान देवोंको हव्य प्रदान करता है, उसे प्रभूत, दीप्त और वीर्य-शाली धन दान करो ।

---

१ अग्निदेव ! मुखमें हव्य ग्रहण करके देवोंको अतीव प्रसन्न करो और हमारा अति विशाल स्तोत्र ग्रहण करो ।

२ हे अङ्गिरा ऋषिके पुत्रों और मेधावियोंमें श्रेष्ठ ! हम तुम्हारे ग्रहणयोग्य और प्रसन्नता-दायक स्तोत्र सम्पादन करते हैं

३ अग्नि ! मनुष्योंमें तुम्हारा योग्य बन्धु कौन है ? तुम्हारा यज्ञ कौन कर सकता है ? तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ?

४ अग्नि ! तुम सबके बन्धु हो, तुम प्रिय मित्र हो । तुम मित्रोंके स्तुति-पात्र मित्र हो ।

५ अग्नि ! हमारे लिये मित्र और वरुणकी अर्चना करो और देवोंकी पूजा करो । विशाल यज्ञका सम्पादन करो और अपने यज्ञ-गृहमें गमन करो ।

७६ सूक्त । अग्नि देवता हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शन्तमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परिदक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥
एह्यग्न इह होता निषीदादब्धः सु पुर एता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजामहे सौमनसाय देवान् ॥ २ ॥
प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥ ३ ॥
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुतपोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥

७७ सूक्त । अग्नि देवता हैं ।

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान् ॥ १ ॥

---

१ अग्नि ! तुम्हारी मनस्तुष्टि करनेका क्या उपाय है ? तुम्हारी आनन्ददायिनी स्तुति कैसी है ? तुम्हारी क्षमताका पर्याप्त यज्ञ कौन कर सकता है ? कैसी बुद्धिके द्वारा तुम्हें हव्य प्रदान किया जाय ?

२ अग्नि ! इस यज्ञमें आओ । देवोंको बुलाकर बैठो । तुम हमारे नेता बनो; क्योंकि कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता । सारा आकाश और पृथिवी तुम्हारी रक्षा करें एवं तुम देवोंको अत्यन्त प्रसन्न करनेके लिये पूजा करो ।

३ अग्नि ! सारे राक्षसोंको दहन करो तथा हिंसाओंसे यज्ञकी रक्षा करो । सोम-रक्षक इन्द्रको, उनके हरि नामके दोनों अश्वोंके साथ, इस यज्ञमें ले आओ । हम सुफलदाता इन्द्रका आतिथ्य प्रदान करेंगे ।

४ जो अग्नि मुख द्वारा हव्य वहन करते हैं, उन्हें अपत्य आदि फलोंसे युक्त स्तोत्र द्वारा आह्वान करते हैं । अग्नि ! तुम अन्य देवोंके साथ बैठो और हे यजनीय अग्नि ! तुम होता और पोताके कार्य करो । तुम धनके नियामक और अन्नदाता होकर हमें जगाओ ।

५ तुमने मेधावियोंमें मेधावी बनकर जैसे मेधावी मनुके यज्ञमें हव्य द्वारा देवोंकी पूजा की थी, वैसे ही हे होम-निष्पादक सत्य अग्नि ! तुम इस यज्ञमें देवोंकी आनन्द-दायक जुहू या स्रुक्से पूजा करो ।

---

१ जो अग्नि अमर, सत्यवान्, देवाह्वानकारी और यज्ञ-सम्पादक हैं तथा जो मनुष्योंके बीच रहकर देवोंको हविर्युक्त करते हैं, उन अग्निके हम अनुरूप हव्य कैसे प्रदान करेंगे ? तेजस्वी अग्निकी, सब देवोंके उपयुक्त, कैसी स्तुति करेंगे ?

यो अध्वरेषु शन्तम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥
स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥
स नो नृणां नृतमो रिशादाः अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥

७८ सूक्त । अग्नि देवता हैं । गायत्री छन्द है ।

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्रणोनुमः ॥ १ ॥
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्रणोनुमः ॥ २ ॥
तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्रणोनुमः ॥ ३ ॥

---

२ जो अग्नि यज्ञमें अत्यन्त सुखकारी, यथार्थदर्शी और देवाह्वानकारी हैं, उन्हें स्तोत्र द्वारा हमारे अभिमुख करो। जिस समय अग्नि मनुष्योंके लिये देवोंके पास जाते हैं, उस समय वे देवोंको जानते और मन वा नमस्कार द्वारा पूजा करते हैं। ×

३ अग्नि यज्ञ-कर्त्ता हैं, अग्नि संसारके उपसंहारक और जनयिता हैं। सखाकी तरह अग्नि अलब्ध धन देते हैं। देवाभिलाषी प्रजागण उन दर्शनीय अग्निके समीप जाकर अग्निको ही यज्ञका प्रथम देवता मानकर स्तुति करते हैं।

४ अग्नि नेताओंके बीच उत्कृष्ट नेता और शत्रुओंके विनाशकारी हैं। अग्नि हमारी स्तुति और अन्नयुक्त यज्ञकी अभिलाषा करें तथा जो धनशाली और बलशाली यजमान लोग अन्न प्रदान करके अग्निके मननीय स्तोत्रकी इच्छा करते हैं, अग्नि उन लोगोंकी स्तुतिकी भी इच्छा करें।

५ यज्ञ-युक्त और सर्वज्ञ अग्नि इसी प्रकार मेधावी गोतम आदि ऋषियों द्वारा स्तुत हुए थे। अग्निने भी उन्हें प्रकाशमान सोमरसका पान और भोजन कराया था। हमारी सेवा जानकर अग्नि पुष्टि प्राप्त करें।

---

१ हे उत्पन्नज्ञाता और सर्वद्रष्टा अग्नि! गोतम-वंशीयोंने तुम्हारी स्तुति की है। द्युतिमान् स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

२ धनाकांक्षी होकर गोतम जिन अग्निकी स्तुति द्वारा सेवा करते हैं, उन्हींको, द्युम्न-प्रकाशक स्तोत्र द्वारा, हम बार-बार स्तुति करते हैं।

३ अङ्गिराकी तरह सर्वापेक्षा अधिकतर अन्नदाता अग्निको हम बुलाते हैं और द्युतिमान् स्तोत्र द्वारा स्तुति करते हैं।

× मंत्रके "मनसा" शब्दको सायणाचार्य "नमसा" भी मानते हैं। वे लिखते हैं—"मकारनकारयोः स्थान-विपर्ययः।" परन्तु स्थान-विपर्ययकी आवश्यकता तो नहीं मालूम पड़ती।

तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे। द्युम्नैरभि प्रणोनुमः ॥ ४ ॥
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः। द्युम्नैरभि प्रणोनुमः ॥ ५ ॥

७९ सूक्त। अग्नि देवता हैं। गायत्री, त्रिष्टुप् और उष्णिक् छन्द हैं। प्रथम तीन मंत्र विद्युद्रूप अग्निके विषयमें हैं।

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १ ॥
आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥ २ ॥
यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ। ॥ ३ ॥
अग्नेवाजस्य गोमत् ईशानः सहसो यहो। अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥
स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा। रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥

---

४ हे अग्निदेव! तुम दस्युओं, असाधुओं या अधर्मियोंको स्थान-भ्रष्ट करते। तुम सर्वापेक्षा शत्रु-हन्ता हो। द्युतिमान् स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

५ हम रहूगण-वंशीय हैं। हम अग्निके लिये माधुर्य-युक्त वाक्यका प्रयोग करते और द्युतिमान् स्तोत्र द्वारा स्तुति करते हैं।

---

१ सुवर्ण केशवाले अग्नि (विद्युत् रूपमें) हननशील मेघको कम्पित करने और वायुकी तरह शीघ्रगामी हैं। वे सुन्दर दीप्तिसे युक्त होकर मेघसे वारि-वर्षण करना जानते हैं। उषा यह बात नहीं जानती। उषा अन्नशाली, सरल और निजकार्य-परायण प्रजाकी तरह है।

२ अग्नि! तुम्हारी सुन्दर और पतनशील किरण, मरुतोंके साथ, मेघको ताड़ित करती है। कृष्णवर्ण और वर्षणशील मेघ गरजा है। मेघ सुखकर और हास्य-युक्त वृष्टि-बिन्दुके साथ आता है। पानी गिर रहा है, मेघ गरज रहा है।

३ जिस समय अग्नि, वृष्टि-जल द्वारा, संसारको पुष्ट करते हैं तथा जलके व्यवहारका सरल उपाय (स्नान, पान आदि) बता देते हैं, उस समय अर्यमा, मित्र, वरुण और समस्त दिग्गामी मरुद्गण मेघके जलोत्पत्ति-स्थानका आच्छादन उद्घाटित कर देते हैं।

४ हे बल-पुत्र अग्नि! तुम प्रभूत गो-युक्त अन्नके मालिक हो। हे सर्वभूतज्ञाता! हमें तुम बहुत धन दो।

५ दीप्ति-युक्त, निवास-स्थान-दाता और मेधावी अग्नि स्तोत्र द्वारा प्रशंसनीय हैं। हे बहुमुख अग्नि! जिस प्रकार हमारे पास धन-युक्त अन्न हो, उसी प्रकार दीप्ति प्रकाशित करो।

६ दमनशील अग्नि! दिन अथवा रात्रिमें स्वयं वा प्रजा द्वारा राक्षसादिको विताड़ित करो। हे तीक्ष्ण-मुख अग्नि! राक्षसको दहन करो।

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ ७ ॥
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ ८ ॥
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥ १० ॥
यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद्वृधे भव ॥ ११ ॥
सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः ॥ १२ ॥

८० सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्द्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

---

७ अग्निदेव ! तुम सारे यज्ञोंमें स्तुति-भाजन हो । हमारी गायत्री द्वारा तुष्ट होकर, रक्षण-कार्य द्वारा, हमें पालित करो ।

८ अग्नि ! हमें दारिद्र्य-विनाशक, सबके स्वीकार योग्य और सारे संग्रामोंमें धन दो ।

९ अग्नि ! हमारे जीवनके लिए सुन्दर-ज्ञान-युक्त, सुख-हेतु-भूत और सारी आयुका पुष्टि-कारक धन प्रदान करो ।

१० हे धर्माभिलाषी गोतम ! तीक्ष्ण-ज्वाला-युक्त अग्निकी विशुद्ध स्तुति करो ।

११ अग्नि ! हमारे पास या दूर रहकर जो शत्रु हमारी हानि करता है, वह विनष्ट हो । तुम हमारा वर्द्धन करो ।

१२ सहस्राक्ष या असंख्य-ज्वाला-सम्पन्न और सर्व-दर्शी अग्नि राक्षसोंको ताड़ित करते हैं । हमारी ओरसे स्तुत होकर देवोंके आह्वानकारी अग्नि उनकी स्तुति करते हैं ।

---

१ हे बलशाली और वज्रधर इन्द्र ! तुम्हारे इस हर्षकारी सोमरसका पान करनेपर स्तोताने तुम्हारी वृद्धिकारिणी स्तुति की थी । तुमने बल द्वारा पृथिवी परसे अहिको ताड़ित किया था तथा अपना प्रभुत्व या स्वराज्य प्रकट किया था ।

२ इन्द्रदेव ! सेचन-स्वभाव, हर्षकर और श्येन पक्षी द्वारा आनीत तथा अभिषुत सोमरसने तुम्हें प्रसन्न किया था । वज्रिन् ! अपने बल द्वारा अन्तरिक्षके पाससे तुमने वृत्रका विनाश किया था तथा अपना प्रभुत्व प्रकट किया था । ×

× सायणाचार्यका मत है कि, श्येन (बाज)-पक्षि-रूपिणी गायत्री स्वर्गसे सोमरस ले आयी थी । श्येनके सोमरस लानेका उल्लेख १ मंडल, ९३ सूक्त; ४ म०, २६ सू० और ८ म० के ७१, ८४ और ८९ सूक्तोंमें है । "श्येनपक्षि-रूपिणी गायत्री" वाला अर्थ सायणने ऐतरेय ब्राह्मणके एक उपाख्यानके आधारपर किया है ।

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥
अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥
वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या अनु ।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥
सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १० ॥

---

३ हे इन्द्र ! आओ, शत्रुओंका सामना करो और उन्हें पराजित करो। तुम्हारे वज्रका वेग कोई रोकनेवाला नहीं है। तुम्हारा बल पुरुष-विजयी है। इसलिये तुम वृत्रका वध करो। वृत्र द्वारा रोका हुआ जल प्राप्त करो और अपना प्रभुत्व प्रकट करो।

४ इन्द्र ! तुमने भूलोक और द्युलोक – दोनों लोकोंमें वृत्रका वध किया है। मरुतोंसे संयुक्त और जीवोंके तृप्ति-कर वृष्टि-जल गिराकर अपना प्रभुत्व प्रकट करो।

५ क्रुद्ध इन्द्रने सामना करके कम्पमान वृत्रके उन्नत हनु (ठुड्डी)-प्रदेशपर प्रहार किया, वृष्टिका जल बहने दिया और अपना प्रभुत्व प्रकट किया।

६ शतधाराओंवाले वज्रसे इन्द्रने वृत्रासुरके कपोल-देशपर आघात किया। इन्द्रने प्रसन्न होकर स्तोताओंके लिये अन्नको जुटानेकी इच्छा की और अपना प्रभुत्व प्रकट किया।

७ हे मेघ-वाहन और वज्रधर इन्द्र ! शत्रु लोग तुम्हारी क्षमताकी अवहेलना नहीं कर सकते, क्योंकि तुम मायावी हो, माया द्वारा तुमने मृग-रूप-धारी वृत्रका वध किया था और अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

८ इन्द्र ! तुम्हारे वज्र नब्बे नदियोंके ऊपर विस्तृत हुए थे। इन्द्र ! तुम्हारा वीर्य यथेष्ट है। तुम्हारी भुजाएँ बहुबल-शालिनी हैं। अपना प्रभुत्व प्रकट करो।

९ एक साथ हजार मनुष्योंने इन्द्रकी पूजा की थी। बीस मनुष्यों (१६ ऋत्विक्, सस्त्रीक यजमान, सदस्य और शमिता—२०) ने इन्द्रकी स्तुति की थी। सौ ऋषियोंने इन्द्रकी बार-बार स्तुति की थी। इन्द्रके लिये हव्य अन्न ऊपर रखा गया था। इन्द्रने अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

१० इन्द्रने अपने बलसे वृत्रके बलका विनाश किया था। पराभूत करनेवाले बलसे उन्होंने वृत्रका बल विनष्ट किया था। इन्द्रके पास अतोल शक्ति है; क्योंकि उन्होंने वृत्रका वध करके, वृत्र द्वारा रोका गया, जल विमुक्त किया था। इन्होंने अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥
अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्चरेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥
नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सन्दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥
यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥

---

११ वज्रधारी इन्द्र ! तुम्हारे डरके मारे यह आकाश और पृथिवी कम्पित हुए थे; क्योंकि तुमने मरुतोंसे मिलकर वृत्रका वध किया तथा अपना प्रभुत्व प्रकट किया था ।

१२ अपने कम्पन या गर्जनसे वृत्र इन्द्रको नहीं डरा सका । इन्द्रके लौहमय और सहस्रधारा-युक्त वज्रने वृत्रको आक्रान्त किया और इन्द्रने अपना प्रभुत्व प्रकट किया ।

१३ इन्द्र! जिस समय तुमने वृत्र और उसके वज्रपर प्रहार किया था, उस समय, तुम्हारे अहिके वधके लिये, कृत-संकल्प होनेपर तुम्हारा बल आकाशमें व्याप्त हुआ था । तुमने अपना प्रभुत्व प्रकट किया था ।

१४ वज्रधारी इन्द्र ! तुम्हारे गर्जन करनेपर स्थावर और जंगम काँप जाते हैं । वज्र-निर्माता त्वष्टा भी तुम्हारे कोप-भयसे कम्पित हो जाते हैं । तुमने अपना प्रभुत्व प्रकट किया है ।

१५ सर्व-व्यापक इन्द्रको हम नहीं जान सकते । अत्यन्त दूरमें अवस्थित इन्द्रको अपने सामर्थ्यसे कौन जान सकता है ? इन्द्रमें देवोंने धन, वीर्य और बल स्थापित किया था । इन्द्रने अपना प्रभुत्व प्रकट किया था ।

१६ अथर्वा नामक ऋषि, समस्त प्रजाके पितृ-भूत मनु और अथर्वाके पुत्र दध्यङ् ऋषिने जितने यज्ञ किये, सबमें प्रयुक्त हव्य, अन्न और स्तोत्र, प्राचीन यज्ञोंकी तरह, इन्द्रको ही प्राप्त हुए थे ।

पञ्चम अध्याय समाप्त

षष्ठ अध्याय

८१ सूक्त। इन्द्र देवता हैं। पङ्क्ति छन्द है।

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्रनोऽविषत् ॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४ ॥
आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥ ५ ॥
यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥ ६ ॥

---

१ वृत्र-हन्ता इन्द्र मनुष्योंकी स्तुति द्वारा बल और हर्षसे प्रवर्द्धित हुए थे। उन्हीं इन्द्रको हम महान् और क्षुद्र संग्रामोंमें बुलाते हैं। इन्द्र हमें संग्राममें रक्षा करें।

२ वीर इन्द्र! एकाकी होनेपर भी तुम सेना-सदृश हो। तुम प्रभूत शत्रुओंका धन दान कर देते हो। तुम क्षुद्र स्तोताको भी वर्द्धित करते हो। सोमरस-दाता यजमानको तुम धन प्रदान करते हो; क्योंकि तुम्हारे पास अक्षय धन है।

३ जिस समय युद्ध होता है, उस समय शत्रुओंका विजेता ही धन प्राप्त करता है। इन्द्र! रथमें शत्रुओंके गर्व-नाशकारी अश्व संयोजित करो। किसीका नाश करो, किसीको धन दो। इन्द्र! हमें तुम धनशाली करो।×

४ यज्ञ द्वारा इन्द्र विशाल और भयंकर हैं और सोम-पान द्वारा इन्द्रने अपना बल बढ़ाया है। इन्द्र दर्शनीय नासिकासे युक्त तथा हरि नामके अश्वोंसे सम्पन्न हैं। इन्द्रने हमारी सम्पद्के लिये बलिष्ठ हाथोंमें लौहमय वज्र धारण किया है।

५ अपने तेजसे इन्द्रने पृथिवी और अन्तरिक्षको परिपूर्ण किया है। द्युलोकमें चमकते नक्षत्र स्थापित किये हैं। इन्द्रदेव तुम्हारे समान न कोई हुआ, न होगा। तुम विशेष रूपसे सारे जगत्को धारण करो।

६ जो पालक इन्द्र यजमानको मनुष्योपभोग्य अन्न प्रदान करते हैं, वे हमें वैसा ही अन्न दें। इन्द्र! तुम्हारे पास असंख्य धन है, इसलिये हमारे लिये धनका विभाग कर दो, ताकि हम उसका एक अंश प्राप्त करें।

× यहाँ सायणने लिखा है कि, "रहूगणके पुत्र गोतम कुरु-सृञ्जय लोगोंके राजाओंके पुरोहित थे। शत्रुओंके साथ उक्त राजाओंके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर गोतम ऋषिने इस सूक्त द्वारा इन्द्रकी स्तुति करके अपने पक्षकी विजयके लिये प्रार्थना की थी।

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
संगृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ७ ॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ८ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ९ ॥

८२ सूक्त । इन्द्र देवता हैं । जगती और पङ्क्ति छन्द हैं ।

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥
सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३ ॥

---

७ सोम पान कर हृष्ट होनेपर सरल-कर्मा इन्द्र हमें गो-समूह देते हैं । इन्द्र ! हमें देनेके लिये बहु-शत-संख्यक या अपरिमेय अन्न अपने दोनों हाथोंमें ग्रहण करो । हमें तीक्ष्ण बुद्धिसे युक्त और धन प्रदान करो ।

८ शूर ! हमारे बल और धनके लिये हमारे साथ सोम-रस पान करके तृप्त बनो । तुम्हें हम बहु-धन-शाली जानते और अपनी अभिलाषा ज्ञात कराते हैं । तुम हमारी रक्षा करो ।

९ इन्द्र ! ये तुम्हारे ही सब मनुष्य सबके ग्रहण योग्य हव्य वर्द्धित करते हैं । जो लोग हव्य नहीं प्रदान करते, हे अखिलपति ! हे इन्द्र ! उनका धन तुम जानते हो । उनका धन हमें दो ।

---

१ धनशाली इन्द्र ! पास आकर हमारी स्तुति सुनो । इस समय तुम पहलेसे भिन्न-प्रकृति मत होना । तुमने ही हमें प्रिय और सत्य वाक्यसे युक्त किया है । उसी वाक्यसे हम तुमसे याचना करते हैं । इसलिये अपने दोनों अश्व शीघ्र योजित करो ।

२ तुम्हारा दिया हुआ भोजन करके यजमान लोग परितृप्त हुए हैं एवं अतिशय आह्लादवशसे अपना प्रिय शरीर कम्पित किया है । दीप्तिमान् मेधावियोंने अभिनव स्तुति द्वारा तुम्हारी स्तुति की है । इन्द्रदेव ! अपने दोनों अश्व शीघ्र योजित करो ।

३ मघवन् ! तुम सबको कृपा-पूर्ण दृष्टिसे देखते हो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । स्तुत होकर तथा स्तोताओं द्वारा देय धनसे पूरित रथ-युक्त होकर उन यजमानोंके पास जाओ, जो तुम्हारी कामना करते हैं । इन्द्र ! अपने दोनों घोड़े रथमें संयुक्त करो ।

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान् वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥ ६ ॥

८३ सूक्त। इन्द्र देवता हैं। जगती छन्द है।

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः।
प्राचैर्देवासः प्रणयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

---

४ जो रथ अभीष्ट वस्तुका वर्षण करता, गाय देता तथा धान्यसे मिश्रित (सोमरससे) पूर्ण पात्र देता है, इन्द्र ! उसी रथपर चढ़ो। अपने घोड़े शीघ्र योजित करो।

५ शतयज्ञकर्ता इन्द्र ! तुम्हारे रथके दाहिने और बायें अश्व संयुक्त हों। सोमपानसे हृष्ट होकर तुम उस रथ द्वारा अपनी प्रिया पत्नीके पास जाओ। अपने घोड़े संयोजित करो।

६ तुम्हारे केश-सम्पन्न दोनों घोड़ोंको मैं स्तोत्र द्वारा रथमें संयोजित करता हूँ। अपनी दोनों भुजाओंमें घोड़ेको बाँधनेवाली रश्मि धारण करके घर जाओ। इस अभिषुत तीक्ष्ण सोमरसने तुम्हें हृष्ट किया है। वज्रिन् ! तुम सोमपानसे उत्पन्न तुष्टिसे युक्त होकर अपनी पत्नीके साथ भली भाँति हर्ष प्राप्त करो।

---

१ इन्द्र तुम्हारी रक्षा द्वारा जो मनुष्य रक्षित है, वह अश्ववाले घरमें रहकर सर्व-प्रथम गौ प्राप्त करता है। जैसे विशिष्ट ज्ञान-दाता नदियाँ चारों ओरसे समुद्रको परिपूर्ण करती हैं, वैसे ही तुम भी अपने रक्षित मनुष्यको यथेष्ट धनसे परिपूर्ण करते हो।

२ जैसे द्युतिमान् जल यज्ञ-पात्रमें आता है, वैसे ही ऊपर रहनेवाले देवता लोग यज्ञ-पात्रको देखते हैं। उनकी दृष्टि, सूर्य-किरणकी तरह, व्यापक है। जैसे अनेक वर एक ही कन्याको ब्याहनेकी इच्छा करते हैं, वैसे ही देवता लोग सोम-पूर्ण और देवाभिलाषी पात्रको, उत्तर वेदीके सम्मुख लाकर, चाहते हैं।

३ इन्द्र ! जो हव्य और धान्य, यज्ञ-पात्रमें, तुम्हें समर्पित किया गया है, उसमें तुमने मंत्र-वचन संयुक्त किया है। यजमान, युद्धमें न जाकर, तुम्हारे काममें लगा रहता एवं पुष्टि प्राप्त करता है; क्योंकि सोमाभिषव-कर्ता बल-लाभ करता ही है।

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥

---

८४ सूक्त । इन्द्र देवता हैं । अनुष्टुप्में ६ मंत्र, उष्णिक्में ३, पङ्क्तिमें ३, गायत्रीमें ३,
त्रिष्टुपमें ३, बृहतीमें १ और सतोबृहती छन्दमें १ मंत्र हैं ।

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २ ॥
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥

---

४ पहले अङ्गिरा लोगोंने इन्द्रके लिये अन्न सम्पादित किया था । अनन्तर उन्होंने अग्नि जला कर सुन्दर यागद्वारा इन्द्रकी पूजा की थी । यज्ञ-नेता अङ्गिरोवंशीयोंने अश्व, गौ और अन्य पशुओंसे युक्त सारा धन प्राप्त किया था ।

५ अथर्वा नामके ऋषिने, पहले, यज्ञ-द्वारा चुरायी हुई गायोंका रास्ता प्रदर्शित किया था । अनन्तर व्रत-पालक और कान्ति-विशिष्ट सूर्य-रूप इन्द्र आविर्भूत हुए थे । गौओंको अथर्वाने प्राप्त किया । कविके पुत्र उशना या भृगुने इन्द्रकी सहायता की थी । असुरोंके दमनके लिये उत्पन्न और अमर इन्द्रकी हम पूजा करते हैं ।

६ सुन्दर-फल-युक्त यज्ञके लिये जिस समय कुशका छेदन किया जाता है, उस समय स्तोत्र-सम्पादक होता द्युतिमान् यज्ञमें स्तोत्र उद्घोषित करता है । जिस समय सोम-निष्पन्दी प्रस्तर, शास्त्रीय स्तवन-कारी स्तोताकी तरह, शब्द करता है, उस समय इन्द्र प्रसन्न होते हैं ।

---

१ इन्द्र ! तुम्हारे लिये सोमरस तैयार है । हे बलिष्ठ और शत्रु-धर्षक इन्द्र ! आओ । जैसे सूर्य, किरण द्वारा, अन्तरिक्षको पूर्ण करते हैं, वैसे ही प्रभूत शक्ति तुम्हें पूरित करे ।

२ इन्द्रके दोनों हरि नामके घोड़े हिंसा-विरहित बलवाले इन्द्रको बलिष्ठ ऋषि महर्षियों और मनुष्योंकी स्तुति और यज्ञके समीप वहन करें ।

३ हे वृत्र-हन्ता इन्द्र ! रथपर चढ़ो; क्योंकि तुम्हारे दोनों घोड़े मंत्र द्वारा रथमें हमारे द्वारा संयोजित किये गये हैं । सोम-निष्पन्दी प्रस्तर द्वारा अपना मन हमारी ओर करो ।

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥
नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥
य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥
स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १० ॥
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥

---

४ इन्द्र ! तुम इस अतीव प्रशस्य, हर्ष-दायक या मादक और अमर सोमरसका पान करो । यज्ञ-गृहमें यह दीप्तिमान् सोमधारा तुम्हारी ओर बहती है ।

५ इन्द्रको तुरत पूजा करो; उनकी स्तुति करो; अभिषुत सोमरस इन्द्रको प्रसन्न करे; प्रशंसनीय और बलवान् इन्द्रको प्रणाम करो ।

६ इन्द्र ! जिस समय तुम रथमें अपने घोड़े जोत देते हो, उस समय तुमसे बढ़कर रथी कोई नहीं रहता । तुम्हारे बराबर न तो कोई बली है और न सुशोभन अश्वोंवाला ।

७ जो इन्द्र केवल हव्य-दाता यजमानको हव्य प्रदान करते हैं, वह समस्त संसारके शीघ्र स्वामी हो जाते हैं ।

८ जो हव्य नहीं देता, उसे मण्डलाकार सर्पकी तरह इन्द्र कब पैरोंसे रौंदेंगे ? इन्द्र कब हमारी स्तुति सुनेंगे ?

९ इन्द्र ! जो अभिषुत सोम द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, उसे तुम शीघ्र धन देते हो ।

१० गौर वर्ण गायें सुस्वादु एवं सब यज्ञोंमें व्याप्त मधुर सोमरसका पान करती है । शोभाके लिये वे गायें अभीष्टदाता इन्द्रके साथ गमन करके प्रसन्न होती हैं । वे सब गायें इन्द्रका राज्यत्व या 'स्वराज्य' लक्ष्य कर अवस्थित है

११ इन्द्रदेवकी स्पर्शाभिलाषिणी उक्त नाना वर्णकी गायें सोमके साथ अपना दुग्ध मिलाती हैं । इन्द्रकी प्यारी गायें शत्रुओंपर सर्व-शत्रु संहारी वज्र प्रेरित करती हैं । वे गायें इन्द्रका राजत्व लक्ष्य कर अवस्थान करती हैं ।

१२ वे प्रकृष्ट-ज्ञान-युक्त गायें अपने दुग्ध-रूप अन्न द्वारा इन्द्रके बलकी पूजा करती हैं । वे गायें युद्धकामी शत्रुओंको पहलेसे ही, पहिचाननेके लिये, इन्द्रके शत्रु-विनाश आदि अनेक कार्योंको सेवित करती हैं । वे गायें इन्द्रका [illegible] अवस्थित हैं ।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १३ ॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ १४ ॥

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ १६ ॥

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधिब्रवत्तन्वे को जनाय ॥ १७ ॥

को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आवहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥

---

१३ अप्रतिद्वन्द्वी इन्द्रने दधीचि ऋषिकी हड्डियोंसे वृत्र आदि असुरोंको नवगुण-नवति या ८१० बार मारा था ।×

१४ पर्वतमें छिपे हुए दधीचिके अश्व-मस्तकको पानेकी इच्छासे इन्द्रने उस मस्तकको शर्यणावति नामके सरोवरमें प्राप्त किया ।

१५ इस गमनशील चन्द्रमण्डलमें अन्तर्हित जो त्वष्टृ-तेज या सूर्य-तेज है, वह आदित्य-रश्मि ही है—ऐसा जाना ।*

१६ आज इन्द्रकी गतिशील रथ-धुरोंमें वीर्य-युक्त, तेजोमय, दुःसह-क्रोध-सम्पन्न घोड़ेको कौन संयोजित कर सकता है ? उन घोड़ोंके मुखमें बाण आबद्ध है । कौन शत्रुओंके हृदयोंमें पाद-क्षेप और मित्रोंको सुख प्रदान करते हैं—अर्थात् वे ही अश्व, जो इन अश्वोंके कार्योंकी प्रशंसा करते हैं । वे दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं ।

१७ शत्रुओंके डरसे कौन निकलेगा ? शत्रुओंके द्वारा कौन नष्ट होता है ? समीपस्थ इन्द्रको कौन रक्षक-रूपसे जानता है ? कौन पुत्रके लिये, अपने लिये, धनके लिये, शरीरकी रक्षाके लिये अथवा परिजनकी रक्षाके लिये इन्द्रके पास प्रार्थना करता है ?

१८ इन्द्रके लिये अग्निकी स्तुति कौन करता है ? वसन्त आदि नित्य ऋतुओंको उपलक्षकर पात्र-स्थित घृतयुक्त हव्य द्वारा कौन पूजा करता है ? इन्द्रको छोड़कर अन्य कौन देवता किस यजमानको तुरत प्रशंसनीय धन प्रदान करते हैं ? यज्ञ-निरत और देव-प्रसाद-सम्पन्न कौन यजमान इन्द्रको अच्छी तरह जानता है ?

× सब-शास्त्रोंमें प्रचलित दधीचि-सम्बन्धिनी कथा इस मन्त्रमें स्पष्ट है । ११६ सूक्तके १२ मंत्रकी टीकामें भी ऐसी ही कथा है । सायणने दोनों स्थानोंमें ऐसा उपाख्यान किया है—"अथर्वा ऋषिके पुत्र दधीचिको इन्द्रने मधुविद्या सिखा कर कहा था कि, यदि वह विद्या किसीको सिखाओगे तो तुम्हारा सिर काट लिया जायगा । उधर अश्विनीकुमारोंने मधुविद्या सीखनेकी इच्छासे दधीचिका सिर काट लिया और उन्हें घोड़ेका सिर काट कर पहना दिया । घोड़ेके सिरसे ही दधीचिने कुमारोंको विद्या बता दी । अनन्तर क्रोधमें आकर इन्द्रने वही घोड़ावाला मस्तक काट लिया । इधर कुमारोंने दधीचिको पहला कटा हुआ और अन्यत्र रखा हुआ सिर पहना दिया । दधीचिकी मृत्युके अनन्तर असुरोंने उत्पात मचाना आरम्भ किया । यह देख कर उस घोड़ेके मृत मस्तकको खोज कर इन्द्रने उसके सिरकी हड्डीका वज्र बनाकर वृत्रादिको मारा था ।" सायणाचार्यके इस उपाख्यानसे पौराणिक उपाख्यानके साथ थोड़ीसी विभिन्नता है ; जो हो, परन्तु पुराणके अधिकांश उपाख्यानोंका मूल रूप वेदोंमें पाया जाता है—इसमें सन्देह नहीं । इसीसे लोग पुराणोंको वेदोंका व्याख्या-ग्रन्थ मानते हैं ।

* सायणाचार्यने यहाँ निरुक्त (२।६) उद्धृत किया है—"आदित्यतः अस्य दीप्तिर्भवति" अर्थात् सूर्यकी ही एक किरण चन्द्रमामें प्रकाश होती है । इससे विदित होता है कि, आर्य ही ज्योतिषकी इस बातके आदि ज्ञाता हैं ।

त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उप मिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० ॥

१४ अनुवाक । ८५ सूक्त । मरुद्गण देवता हैं । त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं ।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥
गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥४॥

---

१९ हे बलिष्ठ देव इन्द्र ! स्तुति-परायण मनुष्यकी तुम प्रशंसा करो । हे मघवन् ! तुम्हें छोड़कर और कोई सुखदाता नहीं है । इसलिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।

२० हे निवास-स्थान-दाता इन्द्र ! तुम्हारे भूतगण और सहायक-रूप मरुद्गण या मरुद्गण हमारा कभी विनाश नहीं करें । हे मनुष्य-हितैषी इन्द्र ! हम मंत्रद्रष्टा हैं; तुम हमारे लिये धन ला दो । *

---

१ गमन-वेलामें मरुत् लोग, स्त्रियोंकी तरह, अपने शरीरको सजाते हैं; वे गतिशील रुद्रके पुत्र हैं । उन्होंने हितकर कार्य द्वारा आकाश और पृथिवीको वर्द्धित किया है । वीर और घर्षणशील मरुद्गण यज्ञमें सोमपान द्वारा आनन्द प्राप्त करते हैं ।

२ वे मरुद्गण देवों द्वारा अभिषिक्त होकर महत्त्व प्राप्त कर चुके हैं । रुद्र पुत्रोंने आकाशमें स्थान प्राप्त किया है । पूज-नीय इन्द्रकी पूजा करके तथा इन्द्रको वीर्यशाली करके पृश्नि या पृथिवीके पुत्र मरुतोंने ऐश्वर्य प्राप्त किया था ।

३ गो या पृथिवीके पुत्र मरुद्गण जब अलंकारों द्वारा अपनेको शोभा-सम्पन्न करते हैं, तब दीप्त मरुद्गण अपने शरीरमें उज्ज्वल अलंकार धारण करते हैं । वे सारे शत्रुओंका विनाश करते हैं; और, मरुतोंके मार्गका अनुगमन करके वृष्टि होती है ।

४ सुन्दर यज्ञसे युक्त मरुद्गण आयुधके द्वारा विशेष रूपसे दीप्तिमान् होते हैं । वे स्वयं स्थिर होकर पर्वत आदिको भी, अपने बल द्वारा, उत्पाटित करते हैं । जिस समय तुम लोग रथमें बिन्दु-चिह्नित मृग संयोजित करते हो, उस समय हे मरुद्गण ! तुम लोग मनकी तरह वेगवान् और वृष्टि-सेचन-कार्यमें नियुक्त होते हो ।

---

* १९ सूक्तके १ मंत्रमें दैत्योंकी तरह शत्रुओंकी उपासनाकी बात है ।

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिंमरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य विष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ ६ ॥
तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥
शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसन्दृशो नरः ॥ ८ ॥
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आगच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।

५ अन्नके लिये मेघको वर्षणार्थ प्रेरण करके बिन्दुचिह्नित मृगको रथमें लगाओ। उस समय उज्ज्वल सूर्यके पाससे वारि-धारा छूटती है तथा चमकी तरह जलसे सारी भूमि भींग जाती है।

६ मरुतो! तुम्हारे वेगवान् और शीघ्रगामी घोड़े तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें। तुम लोग शीघ्र-गन्ता हो—हाथमें धन लेकर आओ। मरुतो! बिछाये हुए कुशोंपर बैठो और मधुर सोमरसका पान कर तृप्त बनो।

७ मरुद्गण अपने बलपर बढ़े हैं। अपनी महिमाके कारण स्वर्गमें स्थान प्राप्त कर चुके हैं। इसी प्रकार वास-स्थान विस्तीर्ण कर चुके हैं। जिनके लिये विष्णु मनोरथदाता और आह्लादकर यज्ञकी रक्षा करते हैं, वे ही मरुत् लोग, पक्षियोंकी तरह, शीघ्र आकर इस प्रसन्नता-दायक कुशपर बैठें।

८ शूरों, युद्धार्थियों तथा कीर्ति या अन्नके प्रेमी पुरुषोंकी तरह शीघ्रगामी मरुद्गण संग्राममें लिप्त हुए हैं। सारा विश्व इन मरुतोंसे डरता है। वे नेता हैं एवं राजाकी तरह उग्र-रूप हैं।

९ शोभन-कर्मा त्वष्टाने जो सुनिर्मित, सुवर्णमय और अनेक-धारा-सम्पन्न वज्र इन्द्रको दिया था, उसे ही, इन्द्रने, लड़ाईमें कार्य-साधन करनेके लिये, लेकर जल-युक्त मेघ या वृत्रको वध किया था तथा वारि-धारा गिरायी थी।

१० मरुतोंने अपने बलपर कूपको ऊपर उठाकर पथनिरोधक पर्वतको भिन्न किया था। शोभन-दानशील मरुतोंने वीणा बाजा बजा कर तथा सोमपानसे प्रसन्न होकर रमणीय धन दिया था। *

११ मरुतोंने उस गोतमकी ओर कूपको टेढ़ा किया तथा पिपासित गोतम ऋषिके लिये जलका सिञ्चन किया। विचित्र दीप्तिसे युक्त मरुत् लोग रक्षाके लिये आये एवं जीवनोपाय जल द्वारा मेधावी गोतमकी तृप्ति की।

* "एक बार गोतम ऋषिने पिपासा-पीड़ित होकर मरुतोंसे पानीके लिये प्रार्थना की। मरुतोंने दूरस्थित एक कूप

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥

८६ सूक्त । मरुद्गण देवता हैं । गायत्री छन्द है ।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३ ॥
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित् सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥
पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७ ॥

---

१२ मरुतो ! पृथिवी आदि तीनों लोकोंमें अपने स्तोताओंको देने लायक जो तुम्हारे पास धन है, उसे तुमलोग हव्य-दाताको प्रदान करो । वह धन हमें दो । हे अभीष्टफलप्रद ! हमें वीर-पुत्र आदिसे युक्त धन दो ।

---

१ हे उज्ज्वल मरुद्गण ! अन्तरीक्षसे आकर तुम जिसके यज्ञ-गृहमें सोमपान करते हो, वह मनुष्य शोभन रक्षकोंसे युक्त होता है ।

२ हे यज्ञवाहक मरुद्गण ! यज्ञ-परायण यजमानकी स्तुति अथवा मेधावीका आह्वान सुनो ।

३ यजमानके ऋत्विक् लोगोंने मरुतोंको, हव्य-प्रदान द्वारा, उत्साहित किया है । वह यजमान नाना गौओंवाले गोष्ठमें जाता है ।

४ यज्ञके दिनोंमें वीर मरुतोंके लिये यज्ञमें सोम अभिषुत किया जाता है एवं मरुतोंकी प्रसन्नताके लिये स्तोत्र पठित होता है ।

५ सर्व-शत्रु-जेता मरुद्गण स्तोताकी स्तुति सुनें एवं स्तोता अन्न प्राप्त करें ।×

६ मरुद्गण ! हम सर्व-ज्ञाता मरुतों या तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर तुम्हें अनेक वर्षोंसे हव्य देते हैं ।

७ पूजनीय मरुद्गण ! जिसका हव्य तुम ग्रहण करते हो, वह सौभाग्यशाली है ।

को लाकर गोतम ऋषिके पास रख दिया और ऋषिके पास चहबच्चा (आहव) बनाकर और कूपको टेढ़ा कर उसमें जल भर दिया । ऋषिने जल पान कर तृप्ति प्राप्त की ।"—सायण । ११६ सूक्तके ९ मंत्रमें भी इसी आख्यानकी चर्चा है । मूलमें जो "वाणम्" शब्द है, उसका अर्थ सायणने वीणा किया है; परन्तु मैक्समूलरने शब्द किया है । विल्सनकी भी यही बात है । ग्रिफिथने "बंसी" अर्थ किया है—"Blowing upon their pipe."

× मैक्समूलरने मंत्रके "सूरं" शब्दका अर्थ सूर्य और "इषः" का अर्थ मेघ किया है—'As the flowing rain-clouds pass over the sun," परन्तु ग्रिफिथका कुछ दूसरा ही अर्थ है—"Strength be his that reaches over to the sun."

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥
यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् । ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥

८७ सूक्त । मरुद्गण देवता हैं । जगती छन्द हैं ।

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १ ॥
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केनचित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥
स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो या ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥

---

८ हे प्रकृत-बल-सम्पन्न नेता मरुद्गण ! तुम्हारे स्तुति-तत्पर और मंत्र उच्चारण करनेके कारण परिश्रमसे उत्पन्न स्वेद-सम्पन्न एवं अपने अभिलाषी स्तोताओंकी अभिलाषा समझो ।

९ सत्य-बल-सम्पन्न मरुद्गण ! तुम उज्ज्वल माहात्म्य प्रकट करो तथा उसके द्वारा राक्षस आदिको विनष्ट करो ।

१० सार्वभौम अन्धकारको हटाओ; राक्षस आदि सब भक्षकोंको दूर करो; जो अभीष्ट ज्योति हमें चाहिये, उसे प्रकाशित करो ।

---

१ मरुद्गण शत्रु-घातक, प्रकृष्ट-बल-सम्पन्न, उच्चघोष-युक्त, सर्वोत्कृष्ट, संघीभूत, ऋजीष (ऋजीष)-सोम-पायी, यजमानों द्वारा सेवित और मेघ आदिके नेता हैं । मरुद्गण, आभरण द्वारा, सूर्य-किरणोंकी तरह प्रकाशित हुए ।

२ मरुद्गण ! जिस समय पक्षीकी तरह किसी मार्गसे शीघ्र दौड़कर पासके आकाशमण्डलमें तुम लोग गतिशील मेघोंको एकत्र करते हो, उस समय सब मेघ तुम्हारे रथोंमें आसक्त होकर वारि वर्षण करते हैं; इसलिये तुम अपने पूजकके ऊपर मधुके समान स्वच्छ जलका सिञ्चन करो ।

३ मंगल-विधायिनी वृष्टिकी तरह जिस समय मरुत् लोग मेघोंको तैयार करते हैं, उस समय मरुद्गण द्वारा वर्षित मेघोंको नियमित हुए देखकर, पति-रहिता स्त्रीकी तरह, पृथिवी काँपने लगती है । ऐसे विहरणशील, गति-विशिष्ट और प्रदीप्त-शस्त्र-युक्त मरुद्गण पर्वत आदिको कम्पित करके अपनी महिमा प्रकट करते हैं ।

४ मरुद्गण स्वयमेव संचालित हैं । श्वेत-बिन्दु-युक्त मृग मरुतोंका अश्व है । मरुत् लोग तरुण, वीर्यशाली और क्षमता-सम्पन्न हैं । मरुतो, तुम सत्यरूप हो, ऋणसे मुक्त करते हो । तुम निन्दा-रहित और जल वर्षण करनेवाले हो । तुम हमारे यज्ञके रक्षक हो ।

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥

८८ सूक्त । मरुद्गण देवता हैं । प्रस्तार, पंक्ति, विराट् आदि छन्द हैं ।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥
श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥
अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४ ॥

---

५ अपने पूर्वजों द्वारा उपदिष्ट होकर हम कहते हैं कि, सोमकी आहुतिके साथ मरुतोंको स्तुति-वाक्य प्राप्त होता है। मरुल्लोग, वृत्र-वध-कार्यमें, इन्द्रकी स्तुति करते हुए उपस्थित थे और इस तरह यज्ञ-योग्य नाम धारण किया था।

६ जीवोंके उपभोगके लिये, वे, मरुद्गण, दीप्तिमान् सूर्यकी किरणोंके साथ वारि-वर्षण करना चाहते हैं। वे स्तुतिवाले ऋत्विकोंके साथ आनन्द-दायक हव्यका भक्षण करते हैं। स्तुति-युक्त, वेगवान् और निर्भीक मरुद्गणने सर्वप्रिय-मरुद्गण-सम्बन्ध विशिष्ट स्थानको प्राप्त किया है।

---

१ मरुद्गण, तुम बिजली या दीप्तिसे युक्त, शोभन गमनवाले, अस्त्रवाले और अश्व-संयुक्त मेघ या रथपर आरोहण करके आओ। शोभनकर्मा इन्द्र ! प्रभूत अन्नके साथ, पक्षीकी तरह, हमारे पास आओ।

२ मरुद्गण अरुण और पिङ्गलवाले रथ-प्रेरक घोड़ों द्वारा किस स्तोताका कल्याण करनेके लिये जाते हैं ? सोनेकी तरह दीप्तिमान् और अस्त्र-धारणकारी तथा अस्त्रवाले मरुद्गण रथ-चक्र द्वारा भूमिको पीड़ित करते हैं।

३ मरुद्गण, ऐश्वर्य-प्राप्तिके लिये तुम्हारे शरीरमें शत्रुओंका संहारक अस्त्र है। मरुद्गण वन, वृक्ष आदिकी तरह यज्ञको ऊपर करते हैं। सुजन्मा मरुद्गण, तुम्हारे लिये प्रभूत-धन-शाली यजमान लोग सोम-निष्पन्नकारी पत्थरको धन-सम्पन्न करते हैं।

४ जलाभिलाषी गोतमगण, तुम्हारे जलके दिन आये हैं और आकर जल-निष्पाद्य यज्ञको द्युतिमान् किया है। गोतमोंने स्तुतिके साथ हव्य दान करके जलपानार्थ कूपको उठाया था।

एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रतिष्टोभति वाघतो न वाणी।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥

---

८९ सूक्त। विश्वदेवगण देवता हैं। जगती, विराट्, त्रिष्टुप् आदि छन्द हैं।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम्।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥
तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥

---

५ मरुद्गण हिरण्मय-चक्र-रथपर आरूढ़, लौहमय चक्र-धाराले युक्त, इधर-उधर दौड़नेवाले और प्रबल-शत्रु-हन्ता हैं; उन्हें देखकर गोतम ऋषिने जिस स्तोत्रका उच्चारण किया था, वह यही स्तुति है।

६ मरुद्गण, तुम लोगोंमेंसे प्रत्येकको योग्य स्तुति स्तव करता है। ऋषियोंकी वाणीने इस समय, अनायास, इन ऋचाओंसे, तुम्हारी स्तुति की है; क्योंकि तुम लोगोंने हमारे हाथपर बहु-विध अन्न स्थापित किया है।

---

१ कल्याणवाही, अहिंसित, अप्रतिहत और शत्रु-बाधक समस्त यज्ञ चारों ओरसे हमें प्राप्त हों या हमारे पास आवें जो हमें न छोड़ कर प्रतिदिन हमारी रक्षा करते हैं; वे ही देवता सदा हमें परिवर्द्धित करें।

२ यजमान-प्रिय देवता लोग कल्याण-दायक अनुग्रह हमारे सामने ले आवें और उनका दान भी हमारे सामने आवे। हम उन देवोंका अनुग्रह प्राप्त करें और वे हमारी आयु बढ़ावें।

३ उन देवोंको पूर्वके वेदात्मक वाक्य द्वारा हम बुलाते हैं। भग, मित्र, अदिति, दक्ष, अस्रिध या मरुद्गण, अर्यमा, वरुण, सोम और अश्विद्वयको बुलाते हैं। सौभाग्यशालिनी सरस्वती हमारे सुखका सम्पादन करें।

४ हमारे पास वायुदेव कल्याण-दायक भेषज ले आवें; माता मेदिनी और पिता द्युलोक भी ले आवें। सोम-निष्पन्नी और सुखकर प्रस्तर भी उस औषधको ले आवें। ध्यान द्वारा प्राप्त करने लायक अश्विनीकुमारद्वय, तुम लोग हमारी याचना सुनो।

५ उस ऐश्वर्यशाली, स्थावर और जंगमके अधिपति और यज्ञतोषक इन्द्रको, अपनी रक्षाके लिये, हम बुलाते हैं। जैसे पूषा हमारे धनकी वृद्धिके लिये रक्षण-शील हैं, वैसे ही अहिंसित पूषा हमारे मंगलके लिये रक्षक हों।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥ ७ ॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० ॥

६ अपरिमेय-स्तुति-पात्र इन्द्र और सर्वज्ञ पूषा हमें मंगल दें। तृक्षके पुत्र अरिष्टनेमि (कश्यप) या अहिंसित रथनेमि-युक्त गरुड़ तथा बृहस्पति हमें मंगल प्रदान करें।

७ श्वेतबिन्दु-चिह्नित अश्ववाले, पृश्नि (पृथिवी या गौ) के पुत्र, शोभन-गति-वाले, यज्ञगामी, अग्नि-जिह्वापर अवस्थित, बुद्धिवाले और सूर्यके समान प्रकाशवाले मरुत् देव हमारी रक्षाके लिये यहाँ आवें।

८ देवगण, हम कानोंसे मंगल-प्रद वाक्य सुनें, यजनीय देवगण, हम आँखोंसे मंगलवाहक वस्तु देखें, हम दृढ़ाङ्ग शरीरसे सम्पन्न होकर तुम्हारी स्तुति करके प्रजापति द्वारा निर्दिष्ट आयु प्राप्त करें। *

९ देवगण, मनुष्योंके लिये (आप लोगोंके द्वारा) १०० वर्षकी आयु ही कल्पित है। इसी बीच तुमलोग शरीरमें बुढ़ापा उत्पन्न करते हो और इसी बीच पुत्र लोग पिता हो जाते हैं। इस निर्दिष्ट आयुके बीच हमें विनष्ट नहीं करना।

१० अदिति (अदीना या अखण्डनीया पृथिवी या देवमाता) आकाश, अन्तरीक्ष, माता, पिता और समस्त देव हैं। अदिति पञ्चजन है और अदिति जन्म और जन्मका कारण है।×

* सायणाचार्यने निर्दिष्ट आयुको ११६ या १२० वर्षोंको बताया है। परन्तु अगले ही मंत्रमें उल्लेख है कि, मनुष्योंके लिये देवों द्वारा १०० वर्षकी आयु निर्दिष्ट है।

× "पञ्चजनाः" का अर्थ सायणने दो तरहसे किया है। एक अर्थ है—गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस। दूसरा अर्थ है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद। ७ सूक्त, ९ ऋचा और १०० सूक्त, ११ ऋचामें भी सायणने ऐसा ही अर्थ किया है। "निरुक्त"—कार यास्कने भी इन दोनों अर्थोंको लिखा है। यास्कका मत है कि, "औपमन्यु चौथ पाँच वर्णोंका अर्थ मानते हैं।"

९० सूक्त। बहुदेवता देवता हैं। गायत्री छन्द है।

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १ ॥

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः। व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥ २ ॥

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः। बाधमाना अप द्विषः ॥ ३ ॥

वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः। पूषा भगो वन्द्यासः ॥ ४ ॥

उत नो धियो गो अग्राः पूषन्विष्णवेवयावः। कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ ॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ७ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

९१ सूक्त। सोम देवता हैं। गायत्री, उष्णिक् और त्रिष्टुप् छन्द हैं।

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १ ॥

---

१ वरुण (निशाभिमानी देव) और मित्र (दिवाभिमानी देव) उत्तम मार्ग जानकर हमें अकुटिल गतिसे ले जायँ तथा देवोंके साथ समान प्रेमसे युक्त अर्यमा भी हमें ले जायँ।

२ वे धन देते हैं। वे मूढ़ता-शून्य होकर अपने तेज द्वारा सदा अपने कार्योंकी रक्षा करते हैं।

३ वे अमरगण, हमारे शत्रुओंका विनाश करके हमें सुख प्रदान करें। हम मरण-धर्मा मनुष्य हैं।

४ वन्दनीय इन्द्र, मरुद्गण, पूषा और भग देवगण उत्तम फल-लाभके लिये हमारा पथ दिखा दें।

५ पूषन्, विष्णु और मरुद्गण, हमारा यज्ञ पशु-ग्राहक करो और हमें विनाश-शून्य बनाओ।

६ यजमानके लिये समस्त वायु और नदियाँ मधु (या कर्मफल) वर्षण करती हैं। सारी ओषधियाँ भी माधुर्य-युक्त हों।

७ हमारी रात्रि और उषा मधुर या मधुर-फल-दाता हों। पार्थिव मनुष्य माधुर्य-विशिष्ट हों। जो आकाश सबका रक्षक है, वह भी मधु-युक्त हो।

८ हमारे लिये समस्त वनस्पति मधुर हों। सूर्य मधुर हों। सारी गायें मधुर हों।

९ मित्र, वरुण अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र और (वामनावतारमें) विस्तीर्ण-पाद-क्षेपी विष्णु हमारे लिये सुखकर हों

---

१ सोमदेव! अपनी बुद्धिसे हम तुम्हें अच्छी तरह जानते हैं। तुम हमें सरल मार्गसे ले जाओ। इन्दु अर्थात् हे सोम, तुम्हारे द्वारा लाये जाकर हमारे पितरोंने देवोंके बीच रत्न प्राप्त किया था।

त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ २ ॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ३ ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ ॥
त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ ८ ॥
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ॥ ११ ॥
गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥ १२ ॥

---

२ सोम, अपने यज्ञके द्वारा शोभन यज्ञसे संयुक्त और अपने बल द्वारा शोभन बलसे युक्त हो। तुम सर्वज्ञ हो। तुम अभीष्ट फलके वर्षणसे वर्षण-कारी हो; और, तुम महिमामें महान् यजमानके अभिमत फलका प्रदर्शन करके, यजमानके द्वारा दिये गये अन्नसे तुम बहुल अन्नसे सम्पन्न हो।

३ सोम (चन्द्र), वरुण राजाके सारे कार्य तुम्हारे ही हैं। तुम्हारा तेज विस्तीर्ण और गम्भीर है। प्रिय बन्धुके समान तुम सबके संस्कारक हो। अर्यमाकी तरह तुम सबके वर्द्धक हो।

४ सोम, द्युलोक, पृथिवी, पर्वत, ओषधि और जलमें तुम्हारा जो तेज है, उसी तेजसे युक्त हो कर सुमना और क्रोध-रहित राजन्, हमारा हव्य ग्रहण करो।

५ सोम, तुम सत्कर्ममें वर्त्तमान ब्राह्मणोंके अधिपति हो। तुम राजा हो। तुम शोभन यज्ञ हो।

६ स्तुति-प्रिय और सारी ओषधियोंके पालक सोम, यदि तुम हमारे जीवनधनकी अभिलाषा करो, तो हम नहीं मरेंगे।

७ सोम, तुम वृद्ध और तरुण याजकको, उसके जीवनके उपयोग योग्य, धन देते हो।

८ हे राजा सोम, हमें दुःख देनेमें अभिलाषी लोगोंसे हमें बचाओ। तुम्हारे जैसे व्यक्तिका मित्र कभी विनष्ट नहीं होता।

९ सोम, तुम्हारे पास यजमानोंके लिये सुखकर जो रक्षण हैं, उनके द्वारा हमारी रक्षा करो।

१० सोम, तुम हमारा यह यज्ञ और स्तुति ग्रहण करके आओ और हमें वर्द्धित करो।

११ सोम, हमलोग स्तुति-ज्ञाता हैं, स्तुति द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं। सदय होकर तुम आओ।

१२ सोम, तुम हमारे धन-वर्द्धक, रोग-हन्ता, धन-दाता, सम्पद्वर्द्धक और सुमित्र-युक्त होओ।

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥ १३ ॥
यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥ १४ ॥
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥
आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ १६ ॥
आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥
सन्ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सन्वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ १८ ॥
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥ १९ ॥
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २० ॥
अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २१ ॥

---

१३ सोम, जैसे गाय सुन्दर तृणसे तृप्त होती है, जैसे मनुष्य अपने घरमें तृप्त होता है, उसी प्रकार तुम भी हमारे हृदयमें तृप्त होकर अवस्थान करो ।

१४ सोमदेव, जो मनुष्य बन्धुताके कारण तुम्हारी स्तुति करता है, हे अतीत-ज्ञाता और निपुण सोम, तुम उसपर अनुग्रह करते हो ।

१५ सोम, हमें अभिशाप या निन्दनसे बचाओ । पापसे बचाओ । हमें सुख देकर हमारे हितैषी बनो ।

१६ सोम, तुम वर्द्धित हो, तुम्हारी शक्ति चारो ओरसे तुम्हें प्राप्त हो । तुम हमारे अन्नदाता बनो ।

१७ अतीव मदसे युक्त सोम, सारे लतावयवों द्वारा वर्द्धित हो । शोभन अन्नसे युक्त होकर तुम हमारे सखा बनो ।

१८ सोम, तुम शत्रु-नाशक हो । तुममें रस, यज्ञान्न और वीर्य संयुक्त हों । तुम वर्द्धित होकर हमारे अमरत्वके लिये स्वर्गमें उत्कृष्ट अन्न धारण करो ।

१९ यजमान लोग हव्य द्वारा जो तुम्हारे तेजकी पूजा करते हैं, वह समस्त तेज हमारे यज्ञको व्याप्त करे । धन-वर्द्धक, पाप-त्राता, वीर पुरुषोंसे युक्त और पुत्र-रक्षक सोम, तुम हमारे घरमें आओ ।

२० जो सोमदेवको हव्य देता है, उसे सोम गौ और तेज घोड़ा देते हैं; और, उसे लौकिक-कार्य-दक्ष, गृहकार्य-परायण, यज्ञानुष्ठान-तत्पर माता द्वारा आदृत और पिताका नाम उज्ज्वल करनेवाला पुत्र प्रदान करते हैं ।

२१ सोम, तुम युद्धमें अजय हो, सेनाके बीच विजयी हो, स्वर्गके प्रापयिता हो । तुम वृष्टि-दाता, बल-रक्षक, यज्ञमें अवस्थाता, सुन्दर निवास और यशसे युक्त और जयशील हो । तुम्हें लक्ष्य कर हम प्रफुल्ल हों ।

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववथ ॥ २२ ॥
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ ॥ २३ ॥

९२ सूक्त । उषा और शेष तृचके अश्विद्वय देवता हैं । जगती, उष्णिक् और त्रिष्टुप् छन्द हैं ।

एता उत्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥ ४ ॥

२२ सोम, तुमने सारी औषधियाँ, वृष्टि, जल और सारी गायें बनायी हैं । तुमने इस व्यापक अन्तरीक्षको विस्तृत किया है और ज्योति द्वारा उसका अन्धकार विनष्ट किया है ।

२३ बलशाली सोम, अपनी कान्तिमयी बुद्धि द्वारा हमें धनका अंश प्रदान करो । कोई शत्रु तुम्हारी हिंसा न करे । लड़ाई करनेवाले दोनों पक्षोंमें तुम्हीं बलशाली हो । लड़ाईमें हमें दुष्टतासे बचाओ ।

---

१ उषा देवताओंने आलोक द्वारा प्रकाश किया है और वे अन्तरीक्षकी पूर्व दिशामें प्रकाश करते हैं । जैसे अपने सारे अस्त्रोंको योद्धा लोग परिमार्जित करते हैं, वैसे ही अपनी दीप्तिके द्वारा संसारका संस्कार करके गमनशीला, दीप्तिमती और माताएँ (उषा देवताएँ) प्रतिदिन गमन करती हैं ।

२ अरुण भानु-रश्मियाँ (उषाएँ) उदित हुईं; अनन्तर रथमें जोतने लायक शुभ्रवर्ण रश्मियों या गायोंको उषा देवताएँ रथमें लगाती हैं एवं पूर्वकी तरह सारे प्राणियोंको ज्ञान-युक्त बनाया । इसके पश्चात् दीप्तिमती उषाओंने श्वेतवर्ण सूर्यको आश्रय किया ।

३ नेतृ-स्थानीया उषा देवताएँ उज्ज्वल अस्त्रधारी योद्धाओंकी तरह हैं और उद्योग द्वारा ही दूर देशों तकको, अपने तेजसे, व्याप्त करती हैं । वे शोभन-कर्म-कर्त्ता, सोमदाता और दक्षिणा-दाता यजमानको सारा अन्न देती हैं ।

४ नर्त्तकी या नाईकी तरह उषा अपने रूपको प्रकाशित करती हैं; और जैसे दोहन-कालमें गायें अपना अधस्तन भाग प्रकट करती हैं, उसी प्रकार उषा भी अपना वक्ष प्रकट करती हैं । जैसे गायें गोष्ठमें शीघ्र जाती हैं; उसी प्रकार उषाने भी पूर्व दिशामें जाकर समस्त भुवनोंको प्रकाश करके अन्धकारको वियुक्त किया ।

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिव स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७ ॥
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया विभाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९ ॥
पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० ॥
व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा विभाति ॥ ११ ॥

५ पहले उषाका उज्ज्वल तेज पूर्व दिशामें दिखाई देता है, अनन्तर सारी दिशाओंमें व्याप्त होता और अन्धकारको दूर करता है। जैसे पुरोहित यज्ञमें आज्य द्वारा यूप-काष्ठको प्रकट करता है, उसी प्रकार उषा अपना रूप प्रकट करती हैं। स्वर्ग-पुत्री उषा दीप्तिमान् सूर्यकी सेवा करती हैं।

६ हम रात्रिके अन्धकारको पार कर चुके हैं। उषाने सारे प्राणियोंके ज्ञानको प्रकाशित किया है। प्रकाशमयी उषा, तोषामोदकारीकी तरह, प्रीति प्राप्त करनेके लिये, अपनी दीप्तिके द्वारा मानों हस रही हैं। आलोक-विलसिताङ्गी उषाने, हमारे सुखके लिये, अन्धकारका विनाश किया है।

७ दीप्तिमती और सत्य वचनोंकी उत्पादयित्री आकाश-पुत्री (उषा) की गोतमवंशीय लोग स्तुति करते हैं। उषे, तुम हमें पुत्र-पौत्र, दास-परिजन, अश्व और गौसे युक्त अन्न दो।

८ हे उषे, हम यश, वीर (सहायक), दास और अश्वसे संयुक्त धन प्राप्त करें। सुभगे, तुम सुन्दर यज्ञमें स्तोत्र द्वारा प्रीत होकर, हमें अन्न देकर, वही यथेष्ट धन प्रकट करो।

९ उज्ज्वल उषा सारे भुवनोंको प्रकाशित करके, आलोक द्वारा, पश्चिम दिशामें विस्तृत होकर, दीप्तिमती हो रही हैं। उषा सारे जीवोंको अपने-अपने कार्योंमें लगानेके लिये जगा देती हैं। उषा बुद्धिमान् लोगोंकी बातें सुनती हैं।

१० जैसे व्याध-स्त्री उड़ती चिड़ियाका पक्ष काटकर हिंसा करती है, उसी प्रकार पुनः-पुनः आविर्भूत, नित्य और एक-रूप-धारिणी उषा देवी अनुदिन सारे प्राणियोंके जीवनका ह्रास करती हैं।

११ आकाशको, अन्धकारसे हटाकर, सबके पास उषा जीवों द्वारा विदित होती हैं। उषा गमनकारिणी अथवा भगिनी रात्रिको अन्तर्हित करती हैं। प्रणयी (सूर्य) की स्त्री उषा अनुदिन मनुष्योंकी आयुका ह्रास करके, विशेष रूपसे, प्रकाशित होती हैं।

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत्।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२ ॥
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति। येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १३ ॥
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि। रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥
युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः। अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥
अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत्। अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः। आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी। उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥

---

९३ सूक्त। अग्नि और सोम देवता हैं। अनुष्टुप्, गायत्री, जगती और त्रिष्टुप् छन्द हैं।

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम्। प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥
अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति। तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

---

१२ जैसे पशु-पालक पशुओंको चराता है, वैसे ही सुभगा और पूजनीया उषा अपना तेज विस्तृत करती हैं और नदीकी तरह विशाल उषा सारे जगत्को व्याप्त करती हैं। उषा देवोंके यज्ञका अनुष्ठान कराकर, सूर्य-रश्मिके साथ, दृष्ट होती हैं।

१३ अन्नयुक्त उषे, हमें विचित्र धन प्रदान करो, जिसके द्वारा हम पुत्रों और पौत्रोंका पालन कर सकें।

१४ गौ, अश्व और सत्य वचनसे युक्त तथा दीप्तिमती उषे, आज यहाँ हमारा धनयुक्त यज्ञ जैसे हो, वैसे प्रकाशित हो।

१५ अन्नयुक्त उषे, आज अरुण-वर्ण घोड़े या गौ योजित करो और हमारे लिये सारा सौभाग्य लाओ।

१६ शत्रु-मर्दक अश्विनीकुमारो, हमारे घरको गौ और रमणीय धनसे युक्त करनेके लिये समान-मनोयोगी होकर अपने रथको हमारे घरकी तरफ ले चलो।

१७ अश्विद्वय, तुम लोगोंने आकाशसे प्रशंसनीय ज्योति प्रेरित की है। तुम हमारे लिये शक्तिशाली अन्न ले आओ।

१८ प्रकाशमान, आरोग्य-प्रद, सुवर्ण-रथ-युक्त एवं शत्रु-विजयी अश्विनीकुमारोंको, सोमपान करानेके लिये, उषाकालमें उनके घोड़े जाग कर यहाँ ले आवें।

---

१ अभीष्टवर्षी अग्नि और सोम, मेरे इस आह्वानको सुनो, स्तुति ग्रहण करो और हव्य-दाताको सुख प्रदान करो।

२ अग्नि और सोम, जो तुम्हें स्तुति समर्पण करता है, उसे बलवान् गौ और सुन्दर अश्व दान करो।

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥
अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥

३ अग्नि और सोम, जो तुम लोगोंको आहुति और हव्य प्रदान करता है, वह पुत्र-पौत्रादिके साथ सारी वीर्यशाली आयु प्राप्त हो ।

४ अग्नि और सोम, तुमने जिस वीर्यके द्वारा पणिके पाससे गो-रूप अन्न, अपहृत किया था, जिस वीर्यके द्वारा बृसयके पुत्र (वृत्र) का वध करके, सबके उपकारके लिये, एकमात्र ज्योतिःपूर्ण सूर्यको प्राप्त किया था, वह सब हमें विदित हैं ।×

५ अग्नि और सोम, समान-कर्म-सम्पन्न होकर, आकाशमें, तुमने इन उज्ज्वल नक्षत्र आदिको धारण किया है, तुमने दोषाक्रान्त नदियोंको, प्रकाशित दोषसे, मुक्त किया है या संशोधित किया है ।

६ अग्नि और सोम, तुममेंसे अग्निको मातरिश्वा (वायु) आकाशसे लाये हैं और सोमको अद्रि (पर्वत) के ऊपरसे श्येन पक्षी (बाज) बल-पूर्वक लाया है। स्तोत्रोंके द्वारा वर्द्धित होकर, यज्ञके लिये, तुम लोगोंने भूमि विस्तीर्ण की है।

७ अग्नि और सोम, प्रदत्त अन्न भक्षण करो; हमारे ऊपर अनुग्रह करो। अभीष्टवर्षी, हमारी सेवा ग्रहण करो । हमारे लिये सुख-प्रद और रक्षण-युक्त बनो एवं यजमानका रोग और भय हटाओ ।

८ अग्नि और सोम, जो यजमान देवता-परायण चित्तसे हव्य द्वारा अग्नि और सोमकी पूजा करता है, उसके व्रतकी रक्षा करो । उसे पापसे बचाओ तथा उस यज्ञ-रत व्यक्तिको प्रभूत सुख दो ।

९ अग्नि और सोम, तुम सारे देवोंमें प्रशंसनीय, समान-धन-युक्त और एकत्र आह्वान-योग्य हो । तुम हमारी स्तुति सुनो ।

× बहुत लोगोंका कथन है कि, वेदका "बृसय" ग्रीकोंके "ब्रिसिस" का Brises है।

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥ १० ॥
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आप्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १२ ॥

१५ अनुवाक । ९४ सूक्त । अग्नि देवता हैं । यहाँसे ९८ सूक्ततकके अङ्गिराके पुत्र कुत्स ऋषि हैं । त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं ।

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥
यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥

१० अग्नि और सोम, जो तुम्हें घृत प्रदान करता है, उसे प्रभूत धन दो ।

११ अग्नि और सोम, हमारा यह हव्य ग्रहण करो और एकत्र आगमन करो ।

१२ अग्नि और सोम, हमारे अश्वोंको रक्षा करो । हमारी क्षीर आदि हव्यकी उत्पादिका गायें वर्द्धित हों । हम धनशाली हैं; हमें बल प्रदान करो । हमारा यज्ञ धन-युक्त हो ।

---

१ हम पूजनीय और सर्व-भूतज्ञ अग्निके रथकी तरह, बुद्धि द्वारा, इस स्तुतिको प्रस्तुत करते हैं । अग्निकी अर्चनासे हमारी बुद्धि उत्कृष्ट होती है । हे अग्नि, तुम्हारे हमारे मित्र रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे ।

२ अग्नि, जिसके लिये तुम यज्ञ करते हो, उसकी अभिलाषा पूर्ण होती है और वह उत्पीड़ित न होकर निवास करता, महाशक्ति धारण करता और वर्द्धित होता है । उसे कभी दरिद्रता नहीं मिलती । हे अग्नि, तुम्हारे हमारे बन्धु होनेपर हम हिंसित नहीं होंगे ।

३ अग्नि, हम तुम्हें अच्छी तरह प्रज्वलित कर सकें । तुम हमारा यज्ञ साधन करो; क्योंकि तुममें फेंका हुआ हव्य देवता लोग खाते हैं । तुम आदित्योंको ले आओ । उन्हें हम चाहते हैं । अग्नि, तुम्हारे मित्र होनेपर हम हिंसित नहीं होंगे ।

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम्।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ ॥
त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ६ ॥
यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन्तळिदिवाति रोचसे।
राज्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ७ ॥
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥
वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ९ ॥
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १० ॥

४ अग्नि, हम इन्धन इकट्ठा करते हैं। तुम्हें ज्ञात कराकर हव्य देते हैं। हमारी आयुर्वृद्धिके लिये तुम यज्ञ सम्पन्न करो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

५ उन (अग्नि) की किरणें प्राणियोंकी रक्षा करती हुई विचरण करती हैं। द्विपद और चतुष्पद जन्तु उन (अग्नि) की किरणोंमें विचरण करते हैं। तुम विचित्र दीप्तिसे युक्त और सारी वस्तुएँ प्रदर्शित करते हो। तुम उषासे भी महान् हो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

६ अग्नि, तुम अध्वर्यु, मुख्य होता, प्रशास्ता, पोता और जन्मसे ही पुरोहित हो। ऋत्विक्के सारे कार्योंसे तुम अवगत हो। इसलिये तुम यज्ञ सम्पूर्ण करो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।×

७ अग्नि, तुम सुन्दर हो, तो भी सबके समान हो। तुम दूर-स्थित हो, तो भी पास ही दीप्यमान हो। अग्नि-देव, तुम रातके अन्धकारको मर्दन करके प्रकाशित होते हो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

८ अग्निके अङ्गभूत देव, सोमका अभिषव करनेवाले यजमानका रथ सबसे आगे करो। हमारा अभिशाप शत्रुओंको परास्त करे। हमारी यह स्तुति समझो और हमें प्रवृद्ध करो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

९ सांघातिक अस्त्र द्वारा तुम दुष्टों और बुद्धि-विहीनोंका विनाश करो। दूरवर्ती और निकटस्थ शत्रुओंका विनाश करो। अनन्तर अपने स्तुति-कर्ता यजमानके लिये सुगम मार्ग कर दो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

१० अग्नि, जिस समय तुम दीप्यमान, लोहितवर्ण और वायुगति दोनों घोड़ोंको रथमें संयुक्त करते हो, उस समय तुम वृषभकी तरह शब्द करते हो और वनके सारे वृक्षोंको धूमरूप केतु (पताका) द्वारा व्याप्त करते हो। अग्नि, तुम्हारे बन्धु होनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

× अध्वर्यु हव्य दान करते, होता देवोंको बुलाते और पोता यज्ञमें होनेवाले दोषोंका शोधन करते हैं।

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ११ ॥
अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १२ ॥
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३ ॥
तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १४ ॥
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥ १५ ॥
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १६ ॥

---

११ तुम्हारे शब्द सुनकर चिड़ियाँ भी उड़ती हैं। जिस समय तुम्हारी शिखाएँ तिनके जलाकर चारों दिशाओंमें विस्तृत होती हैं, उस समय सारा वन तुम्हारे और तुम्हारे रथके लिये सुगम हो जाता है। अग्नि, तुम्हारे मित्र होनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

१२ इस स्तोताको मित्र और वरुण धारण करें। अन्तरीक्षचारी मरुतोंका क्रोध अत्यधिक होता है। हमें सुखी करो और इन महान् मरुतोंका मन प्रसन्न हो। अग्नि, तुम्हारे बन्धु रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

१३ द्युतिमान् अग्नि, तुम सारे देवोंके परम बन्धु हो। तुम सुशोभन और यज्ञके सारे धनोंके निवास-स्थान हो। तुम्हारे विस्तृत यज्ञ-गृहमें हम अवस्थान करें। अग्नि, तुम्हारे बन्धु रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

१४ अपने स्थानपर प्रज्वलित सोमरस द्वारा आहूत होकर जिस समय तुम पूजित होते हो, उस समय तुम सुखक उपभोग करते हो। तुम हमारे लिये सुखकर होकर हव्य-दाताको रमणीय फल और धन दान करो। अग्नि, तुम्हारे बन्धु रहनेपर हम हिंसित नहीं होंगे।

१५ शोभन धनसे युक्त और अखण्डनीय अग्नि, सब यज्ञोंमें वर्त्तमान जिस यजमानको तुम पापसे उद्धार करते और कल्याणवाही बल प्रदान करते हो, वह समृद्ध होता है। हम भी तुम्हारे स्तोता हैं। हम भी पुत्र-पौत्रादिके साथ तुम्हारे धनसे सम्पन्न हों।

१६ अग्निदेव, तुम सौभाग्य जानते हो। इस कार्यमें तुम हमारी आयु बढ़ाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और आकाश हमारी इस आयुकी रक्षा करें।

षष्ठ अध्याय समाप्त

सप्तम अध्याय

९५ सूक्त। अग्नि देवता हैं। त्रिष्टुप् छन्द है।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः॥ १॥
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति॥ २॥
त्रीणि जाना परिभूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्वि दधावनुष्ठु॥ ३॥
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान् कविर्निश्चरति स्वधावान्॥ ४॥
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते॥ ५॥

---

१ विभिन्न रूपोंसे संयुक्त दोनों समय (दिन और रात), शोभन प्रयोजनके कारण, विचरण करते हैं। दोनों दोनोंके वत्सकी रक्षा करते हैं। एक (रात्रि) के पाससे सूर्य अन्न प्राप्त करते और दूसरे (दिन) के पाससे शोभन दीप्तिसे युक्त होकर प्रकाशित होते हैं।

२ दसों अँगुलियाँ इकट्ठी होकर अनवरत काष्ठ-घर्षण करके वायुके गर्भ-स्वरूप और सब भूतोंमें वर्त्तमान अग्निको उत्पन्न करती हैं। यह अग्नि तीक्ष्ण-तेजा, यशस्वी और सारे लोकमें दीप्यमान हैं। इन अग्निको सारे स्थानोंमें ले जाया जाता है।

३ इन अग्निके तीन जन्म-स्थान हैं—(१) समुद्र, (२) आकाश और (३) अन्तरीक्ष। अग्निने (सूर्य-रूपसे) ऋतुओंका विभाग करके पृथिवीके सारे प्राणियोंके हितके लिये पूर्व दिशाका यथाक्रम निष्पादन किया है अर्थात् सूर्य-काल (ऋतु) और दिक्—दोनोंको बनाया है।

४ जल, वन आदिमें अन्तर्हित अग्निको तुममेंसे कौन जानता है? पुत्र होकर भी विद्युद्रूप अग्नि अपनी माताओं (जल-रूपिणी) को हव्य द्वारा जन्म दान करते हैं। महान् मेधावी और हव्य-युक्त अग्नि अनेक जलोंके गर्भ (सन्तान)-रूप हैं। सूर्य-रूप अग्नि समुद्रसे निकलते हैं।

५ कुटिल (मेघ-जलके) पार्श्ववर्त्ती यशस्वी अग्नि ऊपर जलकर, शोभन दीप्तिके साथ, प्रकाशित होकर बढ़ते हैं। अग्निके दीप्ति या त्वष्टाके साथ उत्पन्न होनेपर उभय (काष्ठ) भीत होते और सिंह या सहनशीलके सामने आकर उनकी सेवा करते हैं।

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः॥ ६॥
उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन्।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति॥ ७॥
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः।
कविर्बुध्नं परिमर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव॥ ८॥
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान॥ ९॥
धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम्।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु॥ १०॥
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ ११॥

---

६ उभय (काष्ठ या दिवारात्रि) सुन्दरी स्त्रीकी तरह उन (अग्नि) की सेवा करते और बोलती हुई गौकी तरह, पासमें रहकर, उनको वत्सकी तरह पालित करते हैं। दक्षिण भागमें अवस्थित ऋत्विक् लोग हव्य द्वारा जिस अग्निका सेवन करते हैं, वह सब बलोंके बीच बलाधिपति हुए हैं।

७ अग्नि, सूर्यकी तरह, अपनी किरण-रूपिणी भुजाओंको बार-बार विस्तृत करते हैं तथा वही भयंकर अग्नि उभय (दिवारात्रि) को अलंकृत करके निज-कर्म साधित करते हैं। वह सारी वस्तुओंसे दीप्त और साररूप रस ऊपर खींचते हैं। वह माताओं (जलों) के पाससे आच्छादक अभिनव रस बनाते हैं।

८ जिस समय अग्नि अन्तरीक्षमें गमनशील जल द्वारा संयुक्त होकर दीप्त और उत्कृष्ट रूप धारण करते हैं, उस समय वह मेधावी और सर्वलोक-धारक अग्नि (सारे जलोंके) मूलभूत (अन्तरिक्षको) तेज द्वारा आच्छादित करते हैं। उज्ज्वल अग्नि द्वारा विस्तारित वह दीप्ति तेजःपुञ्ज हुई थी।

९ अग्नि, तुम महान् हो। सबको पराजित करनेवाला तुम्हारा दीप्यमान और विस्तीर्ण तेज अन्तरिक्षको व्याप्त किये हुए है। अग्नि, हमारे द्वारा प्रज्वालित होकर अपने अहिंसित और पालन-क्षम तेज द्वारा हमारा पालन करो।

१० आकाशगामी जल-संघको प्रवाह रूपमें अग्नि युक्त करते और उसी निर्मल जल-संघ द्वारा पृथिवीको व्याप्त कर डालते हैं। अग्नि जठरमें अन्नको धारण करते और इसी लिये (वृष्टिजात) अभिनव शस्यके बीचमें निवास करते हैं।

११ विशुद्धकारी अग्नि, काष्ठों द्वारा वृद्धि प्राप्त कर हमें धन-युक्त अन्न देनेके लिये दीप्तिमान बनो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्नकी पूजा करें।

९६ सूक्त । अग्नि देवता हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ १ ॥
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २ ॥
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥
स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ५ ॥
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥

१ बल या काष्ठ-घर्षण द्वारा उत्पन्न अग्नि तुरत ही, पुरातनकी तरह, सत्य ही सारे मेधावियोंका यज्ञ ग्रहण करते हैं। जल और शब्द उस विद्युद्रूप अग्निको मित्र जानते हैं। देवोंने उन धन-दाता अग्निको दूत-रूपसे नियुक्त किया था।

२ अग्निने आयु या मनुके प्राचीन और स्तुति-गर्भ मन्त्रसे तुष्ट होकर मानवी प्रजाकी सृष्टि की थी। उन्होंने आच्छादक तेज द्वारा आकाश और अन्तरीक्षको व्याप्त किया है। देवोंने उन धन-दाता अग्निको दूत-रूपसे नियुक्त किया था।

३ मनुष्यो, स्वामी अग्निके पास जाकर उनकी स्तुति करो। वह देवोंमें मुख्य यज्ञ-साधक हैं। वह हव्य द्वारा आहूत और स्तोत्र द्वारा तुष्ट होते हैं। वह अन्नके पुत्र, प्रजा-पोषक और दानशील हैं। देवोंने उन धनद अग्निको दूत नियुक्त किया था।

४ वह अन्तरीक्षस्थ अग्नि अनेक वरणीय पुष्टि प्रदान करते हैं। अग्नि स्वर्ग-दाता, सर्वलोक-रक्षक और द्यावा-पृथिवीके उत्पादक हैं। अग्नि हमारे पुत्रको अनुष्ठान-मार्ग दिखा दें। देवोंने उन धन-प्रदाता अग्निको दूत बनाया था।

५ दिवारात्रि परस्पर रूपोंका बार-बार परस्पर विनाश करके भी ऐक्य भावसे एक ही शिशु (अग्नि) को पुष्ट करते हैं। वह दीप्तिमान् अग्नि आकाश और पृथिवीमें प्रभा विकसित करते हैं। देवोंने उन धनद अग्निको दूत नियुक्त किया था।

६ अग्नि धन-मूल, निवास-हेतु, अर्थ-दाता, यज्ञ-केतु और उपासककी अभिलाषाके सिद्धि-कर्त्ता हैं। अमर देवोंने उन धन-दाता अग्निको दूत बनाया था।

७ पहले और इस समय अग्नि सारे धनोंका आवास-स्थान हैं। जो कुछ उत्पन्न हुआ है या होगा, उसके निवास-स्थान हैं। जो कुछ है और भविष्यत्‌में जो अनेकानेक पदार्थ उत्पन्न होंगे, उनके रक्षक हैं। देवोंने उन धनद अग्निको दूत-रूपसे नियुक्त किया है।

द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्रयंसत्।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

९७ सूक्त। अग्नि देवता हैं। गायत्री छन्द है।

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिं। अप नः शोशुचदघम्॥ १ ॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥
प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ॥ ४ ॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम् ॥ ५ ॥
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

---

८ धनदाता अग्नि जंगम धनका भाग हमें दान करें। धनद अग्नि स्थावर धनका अंश हमें दें। धनद अग्नि हमें वीरोंसे युक्त अन्न दान करें। धनद अग्नि हमें दीर्घ आयु दान करें।

९ विशुद्ध कर्त्ता अग्नि, इस प्रकार काष्ठोंसे वृद्धि प्राप्त कर तुम हमें धन-युक्त अन्न देनेके लिये प्रभा प्रकाशित करो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्नकी पूजा करें।

---

१ अग्नि, हमारे पाप नष्ट हों। हमारा धन प्रकाश करो। हमारे पाप नष्ट हों।×

२ शोभनीय क्षेत्र, शोभन मार्ग और धनके लिये हम तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारे पाप विनष्ट हों।

३ इन स्तोताओंमें जैसे कुत्स उत्कृष्ट स्तोता हैं, उसी तरह हमारे स्तोता भी उत्कृष्ट हैं। हमारे पाप नष्ट हों।

४ अग्नि, तुम्हारे स्तोता पुत्र-पौत्रादि प्राप्त करते हैं; इस लिये हम भी तुम्हारी स्तुति करके पुत्र-पौत्रादि लाभ करेंगे। हमारे पाप नष्ट हों।

५ शत्रु-विजयी अग्निको दीप्तियाँ सर्वत्र जाती हैं; इस लिये हमारे पाप नष्ट हों।

६ अग्नि, तुम्हारा मुख (शिखा) चारो ओर है। तुम हमारे रक्षक बनो। हमारे पाप नष्ट हों।

×"Que notre faute soit effaei" Longlois. "Nostrum eripietur scelus" Rosen. "May our sin be repented of". wilson.

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा: स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥

९८ सूक्त । अग्नि देवता हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥
वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥

९९ सूक्त । अग्नि देवता हैं । आर्ष-त्रिष्टुप् छन्द है ।
जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥

---

७ सर्वतोमुख अग्नि, जैसे नौकासे नदीको पार किया जाता है, वैसे ही हमारे शत्रुओंसे हमें पार करा दो । हमारे पाप नष्ट हों ।

८ नदी-पारकी तरह हमारे कल्याणके लिये तुम हमें शत्रुसे पार कराकर हमें पालन करो । हमारे पाप नष्ट हों ।

---

१ हम वैश्वानर अग्निके अनुग्रहमें रहें । वह सारे भुवनों द्वारा पूजनीय राजा हैं । इन दो काष्ठोंसे उत्पन्न होकर ही वैश्वानरने संसारको देखा और सूर्यके साथ एकत्र गमन किया ।

२ सूर्य-रूपसे आकाशमें और गार्हपत्यादि रूपसे पृथिवीमें अग्नि वर्त्तमान हैं । अग्निने सारे शस्योंमें रहकर, उन्हें पकानेके लिये, उनमें प्रवेश किया है । वही बलशाली वैश्वानर अग्नि दिन और रात्रिमें हमें शत्रुसे बचावें ।

३ वैश्वानर, तुम्हारे सम्बन्धमें यह यज्ञ सफल हो । हम बहुमूल्य धन प्राप्त हों । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस धनकी पूजा करें ।

---

१ हम सर्वभूतज्ञ अग्निको उद्देश्य कर सोमका अभिषव करते हैं । जो हमारे प्रति शत्रुकी तरह आचरण करते हैं, उनका धन अग्नि दहन करें । जैसे नौकासे नदी पार की जाती है, उसी तरह वह हमें सारे दुःखोंसे पार करा दें । अग्नि हमें पापोंसे पार करा दें ।

१०० सूक्त । इन्द्र देवता हैं । वृषागिरके ऋजाश्व,अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधा नामक पुत्र ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥
स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥
स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥

---

१ जो इन्द्र अभीष्टवर्षी, वीर्यशाली, दिव्य लोक और पृथिवीके सम्राट् और वृष्टि-दाता तथा रणक्षेत्रमें आह्वान-के योग्य हैं, वह मरुतोंके साथ, हमारी रक्षामें तत्पर हों ।

२ सूर्यकी तरह जिनकी गति, दूसरेके लिये, अप्राप्य है, जो संग्राममें शत्रु-हन्ता और रिपु-शोषक हैं और जो, अपने गमनशील सखा मरुतोंके साथ, यथेष्ट परिमाणमें अभीष्ट द्रव्य दान करते हैं, वह इन्द्र, मरुतोंके साथ, हमारी रक्षामें तत्पर हों ।

३ सूर्य-किरणोंकी तरह जिसकी सतेज और दुष्प्रापणीय किरणें वृष्टि-जलका दोहन करके चारो ओर फैल जाती हैं, वही शत्रु-पराजयी और अपने पौरुषसे लब्ध-विजय इन्द्र, मरुतोंके साथ हमारी रक्षामें तत्पर हों ।

४ वह गमनशील लोगोंमें अत्यन्त शीघ्रगामी, अभीष्ट-दाताओंमें प्रधान अभीष्ट-दाता और मित्रोंमें उत्तम मित्र होकर पूजनीयोंमें विशेष पूजा-पात्र और स्तुति-पात्रोंमें श्रेष्ठ हुए हैं । वह मरुतोंके साथ हमारे रक्षणमें तत्पर हों ।

५ इन्द्र, रुद्र-पुत्र मरुतोंकी सहायतासे, बलशाली होकर, मनुष्योंके संग्राममें शत्रुओंको परास्त करके तथा अपने सहवासी मरुतोंकी अन्नोत्पादक वृष्टि भेजकर, मरुतोंके साथ, हमारी रक्षामें तत्पर बनो ।

६ शत्रु-हन्ता, संग्राम-कर्त्ता, सत्लोकाधिपति और बहुत लोकों द्वारा आहूत इन्द्र हम ऋत्विकोंको आज सूर्यका आलोक या प्रकाश भोग करने दें (और शत्रुओंको अन्धकार दें) और वह, मरुतोंके साथ, हमारी रक्षामें परायण हों ।

७ सहायक मरुत् संग्राममें इन्द्रको, शब्द द्वारा, उत्तेजित करते हैं । मनुष्य इन्द्रको धन-रक्षक बनावें । इन्द्र, सर्व-फल-दायी कर्मोंके ईश्वर हैं । वह, मरुतोंके साथ, हमारे रक्षण-परायण हों ।

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥
स सव्येन यमति व्राधतश्चित् स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥
स जामिभिर्यत् समजाति मीह्ळेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥
स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १२ ॥
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३ ॥
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत् क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥

---

८ लड़ाईके मैदानमें, रक्षा और धनकी प्राप्तिके लिये, नेता लोग इन्द्रकी शरण ग्रहण करते हैं; क्योंकि, इन्द्र दृष्टि-प्रतिबन्धक अन्धकारमें आलोक प्रदान करते अथवा संग्राममें विजय देते हैं। इन्द्र, मरुतोंके साथ, हमारी रक्षामें परायण हों।

९ इन्द्र वाम हस्त द्वारा हिंसकोंको निवारण करते और दक्षिण हस्त द्वारा यजमानका हव्य ग्रहण करते हैं। वह स्तोत्र द्वारा स्तुत होकर धन प्रदान करते हैं। इन्द्र, मरुतोंके साथ, हमारी रक्षामें तत्पर हों।

१० वह अपने सहायक मरुतोंके साथ धन दान करते हैं। आज इन्द्र, अपने रथ द्वारा, सारे मनुष्योंसे परिचित हो रहे हैं। इन्द्रने अपने, पराक्रमसे, दुष्ट शत्रुओंको अभिभूत किया है। वह, मरुतोंके साथ, हमारी रक्षामें तत्पर हों।

११ अनेकों द्वारा आहूत होकर बन्धुओंके संग मिलकर या जो बन्धु नहीं हैं, उनको साथ लेकर समर-क्षेत्रमें इन्द्र जाते हैं तथा उन शरणागत पुरुषों और उनके पुत्र-पौत्रोंका जय-साधन करते हैं। वह मरुतोंके साथ हमारी रक्षामें तत्पर हों।

१२ इन्द्र वज्र-धारी, दस्यु-हन्ता, भीम, उग्र, सहस्र-ज्ञान-युक्त, बहुस्तुति-भाजन और महान् हैं। इन्द्र, सोम-रसकी तरह, बल द्वारा पञ्च श्रेणी (चार वर्ण और पञ्चम वर्ग निषाद) के रक्षक हैं। वह मरुतोंके साथ हमारे रक्षण-परायण हों।

१३ इन्द्रका वज्र शत्रुओंको रुलाता है। इन्द्र शोभन जल-दान करते हैं। वह सूर्यकी तरह दीप्तिमान् हैं। वह गरजते हैं। वह सामयिक कर्ममें रत रहते हैं। धन और धन-दान इन्द्रकी सेवा करते हैं। मरुतोंके साथ वह हमारी रक्षामें तत्पर हों।

१४ सारे बलोंका उपमानभूत जिसका बल उभय (पृथिवी और अन्तरीक्ष) लोकोंका सदा, चारो ओरसे, पालन करता है, वह हमारे यज्ञसे परितुष्ट होकर हमारे पापोंसे हमें पार करा दें। वह मरुतोंके साथ हमारी रक्षामें तत्पर हों।

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १५ ॥
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥
एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत् सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

१०१ सूक्त । इन्द्र देवता हैं । यहाँसे ११५ सूक्ततक अङ्गिराके पुत्र कुत्स ऋषि हैं । त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं ।

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

---

१५ देव, मनुष्य या जल-समूह जिस देव (इन्द्र) के बलका अन्त नहीं पाते, वह अपने बल द्वारा पृथिवी और आकाशसे भी अधिक हो गये हैं । वह, मरुतोंके साथ, हमारी रक्षामें परायण हों ।

१६ दीर्घावयव, अलङ्कारधारी, आकाशवासी और रोहितवर्ण एवं श्यामवर्ण दोनों इन्द्रके घोड़े, ऋज्राश्व नामक राजर्षिको धन देनेके लिये, अभीष्टदाता इन्द्रसे युक्त, रथका सम्मुख भाग धारण करके प्रसन्न-वदन मनुष्य-सेना द्वारा परिचित होते हैं ।

१७ अभीष्ट-दाता इन्द्र, वृषागिरके पुत्र ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधा तुम्हारी प्रीतिके लिये तुम्हारा यह स्तोत्र उच्चारण करते हैं ।

१८ इन्द्रने, अनेकों द्वारा आहूत होकर और गतिशील मरुतोंसे युक्त होकर, पृथिवी-निवासी दस्युओं या शत्रुओं और शिम्युओं या राक्षसोंको प्रहार करके, हननशील वज्र द्वारा वध किया । अनन्तर श्वेतवर्ण मित्रों या अलंकार द्वारा दीप्ताङ्ग मरुतोंके साथ क्षेत्रोंका भाग कर लिया । शोभन-वज्र-युक्त इन्द्र सूर्य एवं जल-समूहको प्राप्त हुए ।

१९ सब कालोंमें वर्त्तमान इन्द्र हमारे पक्षसे बोलें । हम भी अकुटिलगति होकर अन्न भोग करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश उसे पूजें ।

---

१ जिन इन्द्रने ऋजिश्वा राजाके साथ कृष्ण नामके असुरकी गर्भवती स्त्रियोंको निहत किया था, उन्हीं हृष्ट इन्द्रके उद्देशसे, अन्नके साथ, स्तुति अर्पित करो । हम रक्षण पानेकी इच्छासे उन अभीष्ट-दाता और दक्षिण हाथमें वज्र-धारी इन्द्रको, मरुतोंके साथ, अपना सखा होनेके लिये, आह्वान करते हैं ।

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि सन्दधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥

२ प्रवृद्ध क्रोधके साथ जिन इन्द्रने विगत-भुज वृत्र या व्यंस नामक असुरका बध किया था। जिन्होंने शम्बर और यज्ञ-रहित पिप्रुका बध किया था और जिन्होंने दुर्जन शुष्णका समूल नाश किया था, उन्हीं इन्द्रको, मरुतोंके साथ, अपना सखा होनेके लिये, हम बुलाते हैं।

३ जिनके विपुल बलका द्यौ और पृथिवी अनुधावन करती हैं, जिनके नियमसे वरुण और सूर्य चलते हैं और जिनके नियमके अनुसार नदियाँ प्रवाहित हैं, उन्हीं इन्द्रका, मरुतोंके साथ, अपना सखा होनेके लिये, हम बुलाते हैं।

४ जो अश्वोंके अधिपति, गोपोंके ईश, स्वतंत्र, स्तुति प्राप्त कर जो सारे कर्मों में स्थिर और अभिषव-शून्य दुर्द्धर्ष शत्रुओंके हन्ता हैं, उन्हीं इन्द्रको, मरुतोंके साथ, अपना सखा होनेके लिये, हम बुलाते हैं।

५ जो गतिशील और निश्वास-सम्पन्न जीवोंके अधिपति हैं और जिन्होंने अङ्गिरा आदि ब्राह्मणोंके लिये पणि द्वारा अपहृत गौका सर्व-प्रथम उद्धार किया था तथा जिन्होंने दस्युओंको निकृष्ट करके बध किया था, उन्हीं इन्द्रको, मरुतोंके साथ, अपना बन्धु होनेके लिये, हम बुलाते हैं।

६ जो शत्रुओं और भीरुओंके आह्वान योग्य हैं, जिन्हें समरसे भागनेवाले और समरमें विजयी, दोनों ही आह्वान करते हैं तथा जिन्हें सारे प्राणी, अपने-अपने कार्योंके सम्मुख, स्थापित करते हैं, उन्हीं इन्द्रको, मरुतोंके साथ, सखा होनेके लिये, हम बुलाते हैं।

७ सूर्य-रूप आलोकमय इन्द्र सारे प्राणियोंके प्राण-स्वरूप रुद्र-पुत्र मरुतोंको ग्रहण कर उदित होते हैं और उन्हीं रुद्र-पुत्र मरुतों द्वारा वाक्य-वेग-युक्त होकर विस्तारित होते हैं। प्रख्यात इन्द्रको स्तुति-लक्षण वाक्य पूजित करते हैं। उन्हीं इन्द्रको, मरुतोंके साथ, सखा होनेके लिये, हम आह्वान करते हैं।

यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आयाह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

१०२ सूक्त । इन्द्र देवता हैं ।

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥
अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥

---

८ मरुत्संयुक्त इन्द्र, तुम उत्कृष्ट घरमें ही हृष्ट हो अथवा सामान्य स्थानमें ही हृष्ट हो हमारे यज्ञमें आगमन करो। सत्यधन इन्द्र, तुम्हारे लिये उत्सुक होकर हम हव्य प्रदान करते हैं।

९ शोभन बलसे युक्त इन्द्र, हम तुम्हारे लिये उत्सुक होकर सोमका अभिषव करते हैं। तुम्हें स्तुति द्वारा पाया जाता है। हम, तुम्हारे उद्देशसे, हव्य प्रदान करते हैं। अश्व-युक्त इन्द्र, मरुतोंके साथ दलबद्ध होकर इस यज्ञ-कुशपर बैठकर हृष्ट बनो।

१० इन्द्र, अपने घोड़ोंके साथ प्रसन्न हो अपने दोनों शिप्र, हनु या जबड़े खोलो; सोम पानके लिये अपनी जिह्वा और उपजिह्वा खोलो। हे सुशिप्र वा सुनासिक इन्द्र, तुम्हें यहाँ घोड़े ले आवें। तुम हमारे प्रति तुष्ट होकर हमारा हव्य ग्रहण करो।

११ जिन इन्द्रका, मरुतोंके साथ, स्तोत्र है, उन शत्रु-हन्ता इन्द्र द्वारा रक्षित होकर तुम उनसे अन्न प्राप्त करो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्नकी पूजा करें।

---

१ तुम महान् हो। तुम्हारे उद्देशसे मैं इस महती स्तुतिको सम्पादन करता हूँ; क्योंकि तुम्हारा अनुग्रह मेरी स्तुति पर निर्भर करता है। ऋत्विकोंने सम्पत्ति और धन लाभके लिये स्तुति-बलद्वारा उन शत्रु-विजयी इन्द्रको हृष्ट किया है।

२ सात नदियाँ इन्द्रकी कीर्ति धारण करती हैं। आकाश, पृथ्वी और अन्तरीक्ष उनका दर्शनीय रूप धारण करते हैं। इन्द्र, सूर्य, और चन्द्र हमारे सामने, प्रकाश देने और हमारा विश्वास उत्पन्न करनेके लिये, बार-बार एकके बाद एक विचरण करते हैं।

तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम सङ्गमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
उत्ते शतान् मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥ ७ ॥
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥

३ इन्द्र, अपने अन्तःकरणसे हम तुम्हारी बहुत स्तुति करते हैं। तुम्हारे जिस विजयी रथको शत्रुओंके युद्धमें देखकर हम प्रसन्न होते हैं, हमारे धन-लाभके लिये उसी रथकी प्ररक्षा करो। मघवन्, हम तुम्हारी कामना करते हैं। हमें सुख दो।

४ तुम्हें सहायक पाकर हम अवरोधक शत्रुओंको परास्त करेंगे। संग्राममें हमारे अंशकी रक्षा करो। मघवन्, हम सरलतासे धन पा सकें—ऐसा उपाय कर दो। शत्रुओंकी शक्ति तोड़ दो।

५ धनाधिपति, ये जो अपनी रक्षाके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं और तुम्हें बुलाते हैं, वे नाना प्रकारके हैं। इनमें हमें ही, धन देनेके लिये, रथपर चढ़ो। इन्द्र, तुम्हारा मन व्याकुलता-रहित और जय-शील है।

६ तुम्हारी भुजाएँ, जय द्वारा, गौके लिये लाभकारी हैं या गौको जय करनेवाली हैं। तुम्हारा ज्ञान असीम है। तुम श्रेष्ठ हो और पुरोहितोंके कार्योंमें सैकड़ों रक्षण-कार्य करते हो। इन्द्र युद्ध-कर्त्ता और स्वतंत्र हैं। वह सारे प्राणियोंके बलके परिमाण-स्वरूप हैं। इसीलिये धन-लाभार्थी मनुष्य इन्द्रको विविध प्रकारसे बुलाते हैं।

७ इन्द्र, तुम मनुष्यको जो अन्नदान करते हो, वह शतसंख्यक धनसे भी अधिक है अथवा उससे भी अधिक है वा सहस्रसंख्यक धनसे भी अधिक है। तुम परिमाण-रहित हो। हमारे स्तुति-वचनोंने तुम्हें दीप्त किया है। पुरन्दर, तुमने शत्रुओंको हनन किया है।

८ नर-रक्षक इन्द्र, तुम तिगुनी हुई रस्सीकी तरह सारे प्राणियोंके बलके परिमाण-स्वरूप हो। तुम तीनों लोकोंमें तीन प्रकार (सूर्य, विद्युत् और अग्नि) के तेज हो। तुम इस संसारको चलानेमें पूर्ण समर्थ हो; क्योंकि, इन्द्र, तुम बहुत समयसे, जन्मावधि, शत्रु-शून्य हो।

९ तुम देवोंमें प्रथम हो। तुम संग्राममें शत्रु-जयी हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। वह इन्द्र हमारे युद्ध-योग्य, तेजस्वी और विभेद-कारी रथको संग्राममें अन्य रथोंके आगे कर दें।

त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च।
त्वामुग्रमवसे संशिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

१०३ सूक्त। इन्द्र देवता हैं। त्रिष्टुप् छन्द है।

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्।
क्षमेदमन्यद्दिव्यन्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥

१० तुम जय प्राप्त करते हो और विजित धनको छिपाकर रखते नहीं। धनद इन्द्र, तुम उग्र हो। क्षुद्र और विशाल युद्धमें, रक्षाके लिये, स्तोत्र द्वारा हम तुम्हें तीव्र करते हैं। इसलिये इन्द्र, हमें युद्धके लिये आह्वानमें उत्तेजित करो।

११ सदा वर्त्तमान इन्द्र हमारे पक्षसे बोलें। हम भी अकुटिल-गति होकर अन्न भोग करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश वह पूजें।

१ इन्द्र, पहले मेधावियोंने तुम्हारे इस प्रसिद्ध परम बलको साक्षात् धारण किया था। इन्द्रकी अग्नि-रूप एक ज्योति पृथिवीपर और दूसरी सूर्य-रूप आकाशमें है। युद्धमें दोनों पक्षोंकी ध्वजाएँ जैसे मिलती हैं, उसी तरह उक्त उभय ज्योतियाँ संयुक्त होती हैं।

२ इन्द्रने पृथ्वीको धारण और विस्तृत किया है। इन्द्रने वज्र द्वारा वृत्रका बधकर वृष्टि-जल बाहर किया है। अहिको मारा है। रौहिण नामक असुरका विदारण किया है। इन्द्रने अपने कार्य द्वारा विगत-भुज वृत्रका नाश किया है।

३ उन्होंने वज्र-स्वरूप अस्त्र लेकर वीर्य कार्यमें उत्साह-पूर्ण होकर दस्युओंके नगरोंका विनाश करके विचरण किया था। वज्रधर इन्द्र, हमारी स्तुति जानकर दस्युओंके प्रति अस्त्र निक्षेप करो। इन्द्र, आर्योंका बल और यश बढ़ाओ।

४ वज्रधर और अरिमर्दन इन्द्र, दस्युओंके विनाशके लिये निकलकर, यशके लिये, जो बल धारण किया था, कीर्त्तन-योग्य उस बलको धारणकर धनवान् इन्द्र, स्तोता यजमानोंके लिये मनुष्योंके युगोंका, सूर्य-रूपसे, निष्पादन करते हैं।

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम्।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

१०४ सूक्त। इन्द्र देवता हैं।

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा निषीद स्वानो नार्वा।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥

५ इन्द्रके इस प्रवृद्ध और विस्तीर्ण वीर्यको देखो। उनकी शक्तिपर श्रद्धा करो। उन्होंने गौ और अश्व प्राप्त किया उन्होंने औषधियों, जलों और वनोंको प्राप्त किया।

६ प्रभूत-कर्मा, श्रेष्ठ, अभीष्टदाता और सत्य-बल इन्द्रको लक्ष्यकर हम सोम अभिषव करते हैं। जैसे पथ-निरोधक चौर पथिकोंके पाससे धन ले लेता है, वैसे ही वीर इन्द्र धनका आदर करके यज्ञ-हीन मनुष्योंके पाससे उस धनका भाग-कर लेकर यज्ञ-परायण मनुष्योंके पास वह धन देते जाते हैं।

७ इन्द्र, तुमने वह प्रसिद्ध वीर-कार्य किया था। उस निद्रित अहिको वज्र द्वारा जागरित किया था। उस समय देव-रमणियोंने तुम्हें हृष्ट देखकर हर्ष प्राप्त किया था। गतिशील मरुद्गण और सारे देवगण तुम्हें हृष्ट देखकर हृष्ट हुए थे।

८ इन्द्र, तुमने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्रका वध किया है और शम्बरके नगरोंका विनाश किया था। अतएव मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी उस प्रार्थित वस्तुको पूजित करें।

---

१ इन्द्र, तुम्हारे बैठनेके लिये जो वेदी प्रस्तुत हुई है, उसपर शब्दायमान अश्वकी तरह बैठो। अश्वोंको बाँधनेवाली रस्सियोंको छुड़ाकर अश्वोंको मुक्त कर दो। वह अश्व, यज्ञ-काल आनेपर, दिन-रात, तुम्हें वहन करते हैं।

२ रक्षणके लिये ये मनुष्य इन्द्रके निकट आये हैं। इन्द्र उन्हें तुरत, उसी समय, अनुष्ठान-मार्गमें जाने देते हैं। देवता-लोग दस्युओंका क्रोध विनष्ट करें और हमारे सुख-साधन-स्वरूप यज्ञमें अनिष्ट-निवारक इन्द्रको आने दें।

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ ३ ॥
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्रपूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥
प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात्।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥ ५ ॥
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
अधामन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ॥ ८ ॥

---

३ कुयव नामक असुर दूसरेके धनका पता जानकर स्वयं अपहरण करता है। वह जलमें रहकर स्वयं फेन-युक्त जलको चुराता है। कुयवकी दो स्त्रियाँ उसी जलमें स्नान करती हैं। वे स्त्रियाँ शिफा नामक नदीके गम्भीर निम्न तलमें विनष्ट हों।

४ अमु या उपद्रवके लिये इधर-उधर जानेवाला कुयव जलके बीच रहता है। उसका निवास-स्थान गुप्त था। वह शूर, पूर्व-अपहृत जलके साथ, वृद्धि प्राप्त करता और दीप्त होता है। अञ्जसी, कुलिशी और वीर-पत्नी नामकी तीनों नदियाँ स्वकीय जलसे उसे प्रीत करके, जल द्वारा, उसे धारण करती हैं।

५ वत्स-प्रिय गौ जैसे अपनी शाला या गोष्ठका पथ जानती है, उसी प्रकार हमने भी उस असुरके घरकी ओर गये हुए रास्तेको देखा है। उस असुरके बार-बार किये गये उपद्रवसे हमें बचाओ। जैसे कामुक धनका त्याग करता है, उसी प्रकार हमें नहीं छोड़ना।

६ इन्द्र, हमें सूर्य और जल-समूहके प्रति भक्ति-पूर्ण करो। जो लोग, पाप-शून्यताके लिये, जीव मात्रके प्रशंसनीय हैं, उनके प्रति भक्ति-पूर्ण करो। हमारी गर्भ-स्थित सन्तानको हिंसित नहीं करना। हम तुम्हारे महान् बलपर श्रद्धा करते हैं।

७ अन्तःकरणसे हम तुम्हें जानते हैं। तुम्हारे उस बलपर हमने श्रद्धा की है। तुम अभीष्ट-दाता हो; हमें प्रभूत धन प्रदान करो। इन्द्र तुम बहुत लोगोंके द्वारा आहूत हो। हमें धन-विहीन घरमें नहीं रखना। भूखोंको अन्न और जल दो।

८ इन्द्र, हमें नहीं मारना। हमें नहीं छोड़ना। हमारे प्रिय भक्ष्य, उपभोग आदि नहीं लेना। हे समर्थ धनपति इन्द्र, हमारे गर्भ-स्थित अपत्योंको नष्ट नहीं करना। घुटनेके बल चलनेवाले अपत्योंको नष्ट नहीं करना।

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ६ ॥

१०५ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता हैं । इस सूक्तके और १०६ सूक्तके आप्त्य त्रित भी ऋषि माने जाते हैं । त्रिष्टुप्, यवमध्या महाबृहती और पंक्ति छन्द हैं ।

चन्द्रमा अप्स्वंतरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥
अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥
मोषु देवा अदः स्वरव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शम्भुवः शूने भूम कदाचन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥
अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥

---

६ हमारे सामने आओ । लोगोंने तुम्हें सोम-प्रिय बना डाला है । सोम तैयार है; इसे पान कर हृष्ट बनो । विस्तीर्णाङ्ग होकर जठरमें सोम-रसकी वर्षा करो । जैसे पिता पुत्रकी बात सुनता है, उसी प्रकार हमारे द्वारा आहूत होकर हमारी बात सुनो ।

१ जलमय अन्तरीक्षमें वर्त्तमान चन्द्रमा, सुन्दर चन्द्रिकाके साथ आकाशमें दौड़ते हैं । सुवर्ण-नेमिरश्मियो, कूपमें पतित हमारी इन्द्रियाँ तुम्हारा पद नहीं जानतीं । द्यावा-पृथिवी, हमारे इस स्तोत्रको जानो ।

२ धनाभिलाषी निश्चय ही धन पाता है । स्त्री पास ही पतिको पाती है, सहवास करती है; और, गर्भसे सन्तान उत्पन्न होती है । द्यावा-पृथिवी, हमारे इस दुःखको जानो अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे रहित हमारे कष्टको समझो ।

३ देवगण, हमारे स्वर्गस्थ पूर्व पुरुष स्वर्गसे च्युत न हों; हम कहीं सोम-पायी पितरोंके सुखके लिये पुत्रसे निराश न हों । द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो ।

४ देवोंमें सर्व-प्रथम यज्ञार्ह अग्निकी मैं याचना करता हूँ । वह दूत-रूपसे मेरी याचना देवोंको बतावें । अग्नि, तुम्हारी पहलेकी वदान्यता कहाँ गयी ? इस समय कौन नूतन पुरुष उसे धारण करते हैं ? हे द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो ।

५ सूर्य द्वारा प्रकाशित इन तीनों लोकोंमें ये देववृन्द रहते हैं । हे देवगण, तुम्हारा सत्य कहाँ है और असत्य कहाँ है ? तुम्हारी प्राचीन आहुति कहाँ है ? द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय समझो ।

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८ ॥
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥
अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १० ॥
सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११ ॥

६ तुम्हारा सत्य-पालन कहाँ है ? वरुणकी अनुग्रह-दृष्टि कहाँ है ? महान् अर्यमाका वह मार्ग कहाँ है, जिसके द्वारा हम पाप-मति व्यक्तियोंका अतिक्रम कर सकें ? द्यावा-पृथिवी, मेरी यह अवस्था या दुःख जानो अर्थात् दुःख-महोदधिमें पतित मेरे लिये ये सब वस्तुएँ लुप्त-सी हो गयी हैं—इस बातके द्यावा-पृथिवी साक्षी हैं ।

७ प्राचीन समयमें सोम अभिषुत होनेपर जो मैंने कतिपय स्तोत्र उच्चारण किये थे, वही हैं। जैसे पिपासित मृगको व्याघ्र खा जाता है, वैसे ही मुझे दुःख खा रहा है । द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो ।

८ जैसे दो सपत्नियाँ (सौतें) दोनों ओर खड़ी होकर स्वामीको सन्ताप देती हैं, वैसे ही कुएँकी दीवारें मुझे सन्ताप दे रही हैं । जैसे चूहा सूता काटता है, हे शतक्रतो, वैसे ही तुम्हारे स्तोताको—मुझे दुःख काटता है । द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो ।

९ ये जो सूर्यकी सात किरणें हैं, उनमें मेरी नाभि, मर्मात्मा या वासस्थान है । यह बात आप्त्य त्रित जानते हैं तथा कुएँसे निकलनेके लिये रश्मि-समूहकी स्तुति करते हैं । द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो ।

१० विशाल आकाशमें ये जो अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र और विद्युत् आदि पाँच अभीष्ट-दाता हैं, वे मेरे इस प्रशंसनीय स्तोत्रको शीघ्र देवोंके पास ले जाकर लौट आवें । द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो ।

११ सर्वव्यापी आकाशमें सूर्यकी रश्मियाँ हैं । विशाल जल-राशिपार करते समय, मार्गमें, सूर्य-रश्मियाँ अरण्य-कुक्कुर या वृकको निवारण करती हैं । द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो×

×सायणाचार्यके मतसे—त्रित ऋषिके कुएँमें गिरनेके पहले, उनको खानेके लिये, एक जंगली वृक बड़ी नदी पार करने गया । अनन्तर सूर्य-रश्मियोंको देखकर भक्षणका अवसर न आनकर लौट गया ।

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥
सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १४ ॥
ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ ॥
असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १६ ॥
त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७ ॥
अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८ ॥

---

१२ देवगण, तुम्हारे भीतर वह नव्य, प्रशंसनीय और सुवाच्य बल है। उसके द्वारा वहनशील नदियाँ सदा जल-सञ्चालन करती और सूर्य अपना सर्वदा विद्यमान आलोक विस्तार करते हैं। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१३ अग्नि, देवोंके साथ तुम्हारा वही प्रशंसनीय बन्धुत्व है। तुम अत्यन्त विद्वान् हो। मनुके यज्ञकी तरह हमारे यज्ञमें बैठकर देवोंका यज्ञ करो। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१४ मनुके यज्ञकी तरह हमारे यज्ञमें बैठकर देवोंके आह्वानकारी, अतिशय विद्वान् और देवोंमें मेधावी अग्निदेव देवोंको हमारे हव्यकी ओर शास्त्रानुसार प्रेरण करें। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१५ वरुण रक्षा-कार्य करते हैं। उन (वरुण) मार्ग-दर्शकके पास हम याचना करते हैं। अन्तःकरणसे स्तोता वरुणको लक्ष्यकर मननीय स्तुतिका प्रचार करता है। वही स्तुति-पात्र वरुण हमारे सत्य-स्वरूप हों। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१६ यह जो सूर्य, आकाशमें, सर्व-सिद्ध पथ-स्वरूप हैं, देवगण, उन्हें तुम लोग नहीं लाँघ सकते। मनुष्य-गण, तुम लोग उन्हें नहीं जानते। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१७ कुँएमें गिरकर त्रितने, रक्षाके लिये, देवोंका आह्वान किया। बृहस्पतिने त्रितका पाप-रूप कुँएसे उद्धार करके उसका आह्वान सुना था। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१८ अरुण-वर्ण वृकने, एक समय, मुझे मार्गमें जाते देखा था। जैसे अपना कार्य करते—करते, पीठ पर वेदना होने पर, कोई उठ खड़ा होता है, वैसे ही मुझे देखकर वृक भी उठ खड़ा हुआ था। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

एताङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभिष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

१६ अनुवाक । १०६ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता हैं ।

आप्त्य त्रित अथवा अङ्गिराके पुत्र कुत्स ऋषि हैं । त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १ ॥
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २ ॥
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३ ॥
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥

---

१९ इस घोषणा-योग्य स्तोत्रके द्वारा इन्द्रको पाकर हम लोग, वीरोंके साथ मिलकर, समरमें शत्रुओंको परास्त करेंगे । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश, हमारी यह प्रार्थना पूजित करें ।

---

१ रक्षाके लिये हम इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि और मरुद्गणको बुलाते हैं । जैसे संसारमें लोग रथको दुर्गम पथसे उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवता लोग हमें, पापोंसे उद्धार कर, पालन करें ।

२ आदित्यगण, युद्धमें हमारी सहायताके लिये, तुम लोग आओ और युद्धमें हमारी विजयके कारण बनो । जैसे संसारमें लोग रथको दुर्गम पथसे उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह दाता देवगण, हमें, पापोंसे उद्धार कर, पालन करें ।

३ जिनकी स्तुति सुख-साध्य है, वे पितृगण हमारी रक्षा करें । देवोंकी पितृ-मातृ-स्वरूपा और यज्ञ-वर्द्धयित्री द्यावा-पृथिवी हमारी रक्षा करें । जैसे संसारमें लोग रथको दुर्गम पथसे उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह दाता देवगण, हमें, पापोंसे उद्धार कर, पालन करें ।

४ मनुष्योंके प्रशंसनीय और अन्नवान् अग्निको इस समय हम जलाकर स्तुति करते हैं । वीर और विजयी पूषाके पास, सुखकर स्तोत्र द्वारा, याचना करते हैं । जैसे संसारमें लोग रथको दुर्गम पथसे उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवगण, हमें, पापोंसे उद्धार कर, पालन करें ।

बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाह्ळ ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ६ ॥
देवैर्नो देव्यदितिर्निपातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ७ ॥

१०७ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृलयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २ ॥
तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत् सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रोवरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥

---

५ बृहस्पतिदेव, हमें सदा सुख प्रदान करो। मनुष्योंके रोगोंके उपशम और भयोंके दूरीकरणकी जो उपकारिणी क्षमता तुममें है, उसकी भी हम याचना करते हैं। जैसे संसारमें लोग रथको दुर्गम पथसे उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवगण हमें, पापोंसे उद्धार कर, पालन करें।

६ कूपमें पतित कुत्स ऋषिने, बचनेके लिये, वृत्र-हन्ता और शचीपति इन्द्रका आह्वान किया था। जैसे संसारमें लोग रथको दुर्गम पथसे उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवगण हमें पापोंसे उद्धार कर पालन करें।

७ देवोंके साथ अदिति देवी हमारा पालन करें। सबके रक्षक दीप्यमान सविता जागरूक होकर हमारी रक्षा करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी यह प्रार्थना पूजित करें।

---

१ हमारा यज्ञ देवोंको सुखी करे। आदित्यगण, तुष्ट हो। तुम्हारा अनुग्रह हमारी ओर प्रेरित हो और वही अनुग्रह दरिद्र मनुष्यके लिये प्रभूत धनका कारण हो।

२ अङ्गिरा ऋषियों द्वारा गाये गये मंत्रोंसे स्तुत होकर देवगण, रक्षाके लिये, हमारे पास आवें। धन लेकर इन्द्र, प्राणवायुके साथ मरुत् लोग तथा आदित्योंको लेकर अदिति हमें सुख प्रदान करें।

३ जिस अन्नके लिये हम याचना करते हैं, उसे इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा और सविता हमें दें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्नकी पूजा करें।

१०८ सूक्त। इन्द्र और अग्नि देवता हैं।

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य॥ १॥
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम्।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम्॥ २॥
चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्॥ ३॥
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम्॥ ४॥
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य॥ ५॥
यदब्रवं प्रथमं वां वृणानोऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य॥ ६॥

---

१ इन्द्र और अग्नि, तुम लोगोंके जिस अतीव विचित्र रथने सारे भुवनको उज्ज्वल किया है, उसी रथपर एक साथ बैठकर आओ; अभिषुत सोम पान करो।

२ इस बहुव्यापक और अपनी गुरुतासे गम्भीर जो सारे भुवनका परिमाण है, इन्द्र और अग्नि, तुम लोगोंके पीने योग्य सोम वही परिमाण हो; तुम लोगोंकी अभिलाषा अच्छी तरह पूर्ण करे।

३ तुम लोगोंने अपना कल्याणवाही नाम-द्वय एकत्र किया है। वृत्र-हन्तृ-द्वय, वृत्र-वधके लिये, तुम लोग एक साथ हुए थे। अभीष्ट-दाता इन्द्र और अग्नि, तुम लोग एकत्र होकर और बैठकर अभिषिक्त सोम, अपने उदरोंमें, सेचन करो।

४ अग्निके अच्छी तरह प्रज्वलित होनेपर दोनों अध्वर्युओंने पात्रसे घृत सेचन करके कुश विस्तार किया है। इन्द्र और अग्नि, चारो ओर अभिषिक्त तीव्र सोम-रस द्वारा आकृष्ट होकर, कृपाके लिये, हमारी ओर आओ।

५ इन्द्र और अग्नि, तुम लोगोंने जो कुछ वीर-कार्य किया है, जितने रूप-विशिष्ट जीवोंकी सृष्टि की है, जो कुछ वर्षण किया है तथा तुमलोगोंका जो कुछ प्राचीन कल्याणकर बन्धुत्व है, वह सब ले आकर अभिषुत सोम पीओ।

६ पहले ही कहा था कि, तुम दोनोंको वरण करके तुम्हें सोम द्वारा प्रसन्न करूँगा, वही अकपट श्रद्धा देखकर आओ; अभिषुत सोम पान करो। यह सोम हमारे ऋत्विकोंकी विशेष आहुतिके योग्य हो।×

× यहाँ असुर शब्दका ऋत्विक् अर्थ किया जाता है।

यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद्ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद्द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८ ॥
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १० ॥
यदिन्द्राग्नी दिविष्ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११ ॥
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥

७ यज्ञ-पात्र इन्द्र और अग्नि, यदि अपने घरमें प्रसन्न होकर रहते हो, यदि पूजक वा राजाके प्रति तुष्ट होकर रहते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, इन सारे स्थानोंसे आकर अभिषुत सोम पान करो।

८ इन्द्र और अग्नि, यदि तुम लोग तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरुगणके बीच रहते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सब स्थानोंसे आकर अभिषुत सोम पान करो ।

९ इन्द्राग्नी, यदि तुम लोग निम्न पृथिवी, अन्तरीक्ष अथवा आकाशमें रहते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सारे स्थानोंसे आकर अभिषुत सोम पान करो।

१० इन्द्राग्नी, तुम लोग यदि उच्च पृथिवी (आकाश), मध्य पृथिवी (अन्तरीक्ष) अथवा निम्न पृथिवीपर अवस्थान करते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सब स्थानोंसे आकर अभिषुत सोम पान करो।×

११ इन्द्र और अग्नि, यदि तुम आकाश, पृथ्वी, पर्वत, शस्य अथवा जलमें अवस्थान करते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सब स्थानोंसे आकर अभिषुत सोम पान करो।

१२ इन्द्र और अग्नि, सूर्यके उदित होनेपर दीप्तिमान् अन्तरीक्षमें यदि तुम लोग अपने तेजसे हृष्ट होते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सारे स्थानोंसे आकर अभिषुत सोम पान करो।

१३ इन्द्र और अग्नि, इस तरह अभिषुत सोम पान करके हमें समस्त धन दान करो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे इस प्रार्थित धनकी पूजा करें।

× नवम और दशम मंत्र एकसे हैं—केवल दो-एक शब्द इधर-उधर किये हुए हैं।

१०९ सूक्त । देवता, ऋषि और छन्द पूर्वकी ही तरह हैं ।

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥
मा च्छेद्म रश्मींरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥

---

१ इन्द्र और अग्नि, मैं धनकी इच्छा करके तुम लोगोंको ज्ञाति वा बन्धुकी तरह जानता हूँ। तुमने ही मुझे प्रकृष्ट बुद्धि दी है; अन्य किसीने भी नहीं। फलतः मैंने ध्यान-निष्पन्न और अन्नेच्छा-सूचक स्तुति, तुम्हें लक्ष्य कर, की है।

२ इन्द्र और अग्नि, तुम लोग अयोग्य जामाता अथवा श्यालककी अपेक्षा भी अधिक, बहुविध, धन दान करते हो—ऐसा सुना है। इस लिये हे इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे सोम-प्रदान-कालमें पठनीय एक नया स्तोत्र निष्पादन करता हूँ।

३ हम पुत्र-पौत्रादि-रूप रज्जु कभी न काटें—ऐसी प्रार्थना करके और पितरोंकी तरह शक्तिशाली पुत्र आदि उत्पादन करके उत्पादन-समर्थ यजमान इन्द्र और अग्निकी सुख-पूर्वक स्तुति करते हैं। शत्रु-हिंसक इन्द्र और अग्नि स्तुतिके पास उपस्थित रहते हैं।

४ इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे लिये दीप्तिमती प्रार्थनाकी कामना करके तुम्हारे हर्षके लिये सोम रसका अभिषव करते हैं। तुम अश्व-सम्पन्न शोभन-बाहु-युक्त और सुपाणि हो। तुम लोग शीघ्र आकर उदकस्थ माधुर्य द्वारा हमारा सोम-रस संयुक्त करो।

५ इन्द्र और अग्नि, स्तोताओंके बीच धन-विभागमें रत रहकर वृत्र-हननमें अतीव बल-प्रकाश किया था—यह सुना है। सर्व-दर्शि-द्वय, तुम लोग हमारे इस यज्ञमें कुशपर बैठकर तथा अभिषुत सोमपान करके हृष्ट बनो।

६ युद्धके समय बुलानेपर तुम लोग आकर अपने महत्त्व द्वारा सारे मनुष्योंमें बड़े बनो। पृथिवी, आकाश, नदी और पर्वत आदिकी अपेक्षा बड़े बनो। इन्द्र और अग्नि, तुम अन्य सारे भुवनोंकी अपेक्षा बड़े हो।

७ वज्र-हस्त इन्द्र और अग्नि, धन ले आओ, हमें दो और कार्य द्वारा हमारी रक्षा करो। सूर्यकी जिन रश्मियोंके द्वारा हमारे पूर्व पुरुष इकट्ठे हुए थे, वे ये ही हैं।

पुरन्दरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

११० सूक्त। ऋभुगण देवता हैं। त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं।

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुः दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥
तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥

८ वज्रहस्त पुरन्दर इन्द्र और अग्नि, हमें धन दान करो। लड़ाईमें हमें बचाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी यह प्रार्थना पूजित करें।

१ ऋभुगण, पहले मैंने बार-बार यज्ञानुष्ठान किया है; इस समय फिर करता हूँ एवं उसमें तुम्हारी प्रशंसाके लिये अत्यन्त मधुर स्तोत्र पढ़ा जाता है। यहाँ सारे देवोंके लिये यह सोम-रस प्रस्तुत हुआ है। स्वाहा शब्दके उच्चारणके साथ, अग्निमें उस रसके अर्पित होनेपर, उसे पान कर तृप्त बनो।

२ ऋभुगण, तुम मेरे जाति-भ्राता हो। जिस समय तुम लोगोंका ज्ञान अपरिपक्व था, उस पूर्वतन समयमें तुम लोग उपभोग्य सोम-रसकी इच्छा की थी। हे सुधन्वाके पुत्र, उस समय अपने कर्म या तपस्याके महत्त्व द्वारा तुम लोग हवि-र्दानशील सविताके घर आये थे।×

३ जिस समय तुम लोग प्रकाशमान सविताको अपने सोम-पानकी इच्छा बता आये थे तथा त्वष्टाके बनाये उस एक सोम-पात्रके चार टुकड़े किये थे, उस समय सविताने तुम्हें अमरता प्रदान की थी।※

४ ऋभुओंने शीघ्र कर्मानुष्ठान किया था एवं ऋत्विकोंके साथ मिले थे; इसलिये मनुष्य होकर भी अमरत्व प्राप्त किया था। उस समय सुधन्वाके पुत्र ऋभु लोग सूर्यकी तरह दीप्तिमान् होकर, सांवत्सरिक यज्ञोंमें, हव्याधिकारी हुए।

× ऋभुगण सुधन्वा नामके अङ्गिराके पुत्र हैं और इस सूक्तके ऋषि कुत्स भी अङ्गिरा वंशके हैं; इस लिये कुत्सके ऋभु लोग जाति-भ्राता हुए। यास्कका भी यही मत है। निरुक्त ११।१६

※ यहाँ असुरका अर्थ त्वष्टा है।

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेन एकं पात्रमृभवो जेहमानम्।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥
आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥ ६ ॥
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत संवत्सेनासृजता मातरं पुनः।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥ ८ ॥
वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमादर्षि राधः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

---

५ ऋभुगणने पार्श्व-वर्त्तियोंके स्तुति-पात्र होकर उत्कृष्ट सोम-रसकी आकांक्षा करके, और देवोंमें हव्यकी कामना करके उसी प्रकार तीक्ष्ण अस्त्र द्वारा एक यज्ञ-पात्रको चार भागोंमें विभक्त किया था, जिस प्रकार मान-दण्ड लेकर खेत मापा जाता है।

६ हम अन्तरीक्षके नेता ऋभुओंको पात्र-स्थित घृत अर्पित करते एवं ज्ञान द्वारा स्तुति करते हैं। ऋभुओंने एक सूर्यकी तरह क्षिप्र-कारिता और दिव्य लोकका यज्ञान्न प्राप्त किया था।

७ नव-बलशाली ऋभु लोग हमारे रक्षक हैं। अन्न और वास-गृहके दाता ऋभु लोग हमारे निवास-हेतु हैं; इसलिये ऋभुगण हमें वरदान दें। ऋभु आदि देववृन्द, हम लोग तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर, अनुकूल दिनमें, अभिषव-विहीन शत्रुओंकी सेनाको परास्त करें।

८ ऋभुगण, तुमने चमड़ेसे गौको आच्छादित किया था और उस गौके साथ बछड़ेका फिर योग कर दिया था। सुधन्वाके पुत्र और यज्ञके नेता शोभन कर्म द्वारा तुमने वृद्ध माता-पिताको फिर युवा कर दिया था।x

९ इन्द्र, ऋभुओंके साथ मिलकर तुम अन्न-दानके समय हमें अन्न दान करते हो—विचित्र धन-दान करते हो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस धनको पूजित करें

---

x अपना नन्हासा बछड़ा छोड़कर किसी ऋषिकी गौ मर गयी थी, बछड़ेका वैकल्य देखकर ऋषिने ऋभुओंकी स्तुति की। ऋभुओंने तुरत उस गौकी तरह ही एक गौ बना दी और उसे मरी गौके चमड़ेसे ढक दिया। अपनी माँ जानकर बछड़ा गौसे मिल गया। २० सूक्तके ४ मंत्रमें भी युवा बनानेकी बातका उल्लेख है।

१११ सूक्त । देवता आदि पूर्ववत् ।

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २ ॥
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं संमहेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥
ऋभुक्षणमिन्द्रं मा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४ ॥
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

११२ सूक्त । अश्विद्वय देवता हैं ।

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥

---

१ उत्तम-ज्ञानशाली और शिल्पी ऋभुओंने अश्विनीकुमारोंके लिये सुनिर्मित रथ प्रस्तुत किया था और इन्द्रके वाहक हरि नामके बलवान् दोनों घोड़ोंको बनाया था। ऋभुओंने अपने माता-पिताको यौवन और बछड़ेको सहचरी गौका दान किया था।

२ हमारे यज्ञके लिये उज्ज्वल अन्न प्रस्तुत करो। हमारे यज्ञ और बलके लिये सन्तान-हेतु-भूत अन्न प्रस्तुत करो, जिससे हम सारी वीर सन्ततियोंके साथ आनन्दसे रहें। हमारे बलके लिये ऐसा ही अन्न हो।

३ नेता ऋभुगण, हमारे लिये अन्न प्रस्तुत करो। हमारे रथके लिये धन तैयार करो। हमारे घोड़ेके लिये अन्न प्रस्तुत करो।। संसार हमारे जयशील धनको प्रतिदिन पूजा करे और हम संग्राममें, अपने बीच उत्पन्न या अनुत्पन्न, शत्रुओंको परास्त कर सकें।

४ अपनी रक्षाके लिये महान् इन्द्रको तथा ऋभु, विभु, वाज और मरुतोंको, सोम-पानार्थ, हम बुलाते हैं। मित्र, वरुण और अश्विनीकुमारोंको भी बुलाते हैं। वे हमारे धन, यज्ञ, कर्म और विजयको सिद्ध कर दें।

५ संग्रामके लिये हमें ऋभु धन दें। समर-विजयी वाज हमारी रक्षा करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी यह प्रार्थना पूजित करें।

---

१ मैं अश्विनीकुमारोंको पहले बतानेके लिये द्यावा-पृथिवीकी स्तुति करता हूँ। अश्वि-द्वयके आनेपर उनकी पूजाके लिये प्रदीप्त और शोभन कान्तिसे युक्त अग्निकी स्तुति करता हूँ। अश्वि-द्वय, तुम लोग संग्राममें अपना भाग पानेके लिये जिन सब उपायोंके साथ शंख बजाते हो, उन सब उपायोंके साथ आओ।

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ ॥
याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६ ॥
याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ७ ॥

---

२ जैसे न्याय-वाक्योंमे युक्त पण्डितके पास शिक्षाके लिये खड़े होते हैं, हे अश्वि-द्वय, वैसे ही अन्य देवोंमें अनासक्त स्तोता लोग, शोभन स्तुतिके साथ, अनुग्रह-प्राप्तिकी आशामें, तुम्हारे रथके पास खड़े होते हैं। अश्वि-द्वय, तुम लोग जिन उपायोंके साथ यज्ञ-सम्पादनके लिये सुमति लोगोंकी रक्षा करते हो, उन उपायोंके साथ, आओ।

३ नेतृ-द्वय, तुम लोग स्वर्गीय-अमृत-लब्ध बल द्वारा तीनों भुवनोंमें रहनेवाले मनुष्योंका शासन करनेमें समर्थ हो। जिन सब उपायों द्वारा तुमने प्रसव-रहित शत्रुकी गौओंको दुग्धवती किया था, अश्वि-द्वय, उन उपायोंके साथ, आओ।

४ चारो ओर विचरण करनेवाले वायु अपने पुत्र और द्विमातृक अग्निके बलद्वारा युक्त होकर और शीघ्रगामियोंके बीच अतीव शीघ्र-गन्ता होकर जिन सारे उपायों द्वारा सारे स्थानोंमें व्याप्त हुए हैं तथा जिन सब उपायों द्वारा कक्षीवान् ऋषि विशिष्ट-ज्ञान युक्त हुए थे, उन उपायोंके साथ, आओ।

५ जिन उपायोंसे तुम लोगोंने असुरों द्वारा कूपमें फेंके हुए और पाशसे बाँधे हुए रेभ नामक ऋषिको जलसे बचाया था एवं इसी प्रकार वन्दन नामके ऋषिको भी जलसे बचाया था तथा जिन उपायों द्वारा असुरों द्वारा अन्धकारमें निक्षिप्त आलोकेच्छु कण्व ऋषिकी रक्षा की थी, अश्वि-द्वय, उन उपायोंके साथ, आओ।

६ कूपमें फेंककर असुर लोग जिस समय अन्तक नामके राजर्षिको हिंसा कर रहे थे, उस समय तुम लोगोंने जिन उपायों द्वारा उनकी रक्षा की थी, जिन सब व्यथा-शून्य नौका-रूप उपायोंके द्वारा समुद्रमें निमग्न तुग्र-पुत्र भुज्युकी रक्षा की थी और जिन सब उपायों द्वारा असुरों द्वारा पीड्यमान कर्कन्धु और वय्य नामके मनुष्योंकी रक्षा की थी, उनके साथ, आओ।

७ जिन उपायों द्वारा शुचन्ति नामक व्यक्तिको धनवान् और शोभन-गृह-सम्पन्न किया था, जिन उपायों द्वारा असुरों द्वारा शतद्वार नामके घरमें प्रक्षिप्त और अग्नि द्वारा दह्यमान अत्रिके गात्र-दाही उत्तापको भी सुखकर किया था और जिन उपायों द्वारा पृश्निगु और पुरुकुत्स नामक व्यक्तियोंकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ, आओ।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८ ॥
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ९ ॥
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १० ॥
याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११ ॥
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२ ॥
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३ ॥

---

८ अभीष्ट-वर्षिद्वय, जिन सब कर्मों द्वारा पङ्गु परावृज ऋषिको गमन-समर्थ किया था, अन्ध ऋजाश्वको दृष्टि समर्थ किया था और भग्नजानु श्रोणको गमन-समर्थ किया था तथा जिन कार्योंद्वारा वृकसे गृहीत वर्त्तिका नामकी स्त्री-पक्षीको मुक्त किया था, अश्विद्वय, उन उपायोंसे आओ ।

९ अजर अश्विनीकुमारद्वय, जिन उपायों द्वारा मधुमयी नदीको प्रवाहित किया था, जिन उपायों द्वारा वसिष्ठको प्रीत और कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्य नामके ऋषियोंकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

१० जिन उपायों द्वारा धनवती और जंघा टूटनेके कारण चलनेमें असमर्थ, अगस्त्य-पुरोहित खेल ऋषिकी पत्नी, विश्पलाको बहुधन-युक्त समरमें जानेमें समर्थ किया था तथा जिन उपायों द्वारा अश्व ऋषिके पुत्र और स्तोत्र-तत्पर वश ऋषिकी रक्षा की थी, उनके साथ आओ ।

११ दानशील अश्विद्वय, जिन उपायों द्वारा दीर्घतमाकी उशिज नामक स्त्रीके पुत्र वणिक्-वृत्ति दीर्घश्रवाको मेघसे जल दिया था तथा उशिजके पुत्र स्तोता कक्षीवान्की रक्षा की थी, उनके साथ आओ ।

१२ जिन उपायों द्वारा नदियोंके तटोंको जल-पूर्ण किया था, अपने अश्व-रहित रथको, विजयके लिये, चलाया था तथा तुम्हारे जिन उपायोंसे कण्वपुत्र त्रिशोक नामक ऋषिने अपनी अपहृत गौका उद्धार किया था, अश्विद्वय, उन उपायोंके साथ आओ ।

१३ जिन उपायों द्वारा दूरवर्त्ती सूर्यके पास, उन्हें ग्रहणके अन्धकारसे मुक्त करने लिये, जाते हो यथा क्षेत्रपतिके कार्यमें मान्धाता राजर्षिकी रक्षा की थी और जिन उपायों द्वारा अन्न दान कर भरद्वाज ऋषिकी रक्षा की थी, उनके साथ आओ ।

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १४॥
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १५॥
याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १६॥
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १७॥
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १८॥
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १९॥

---

१४ जिन उपायों द्वारा महान्, अतिथि-वत्सल और असुरोंके डरसे जलमें पैठे हुए दिवोदासको, शम्बर असुरके हनन-कालमें, बचाया था तथा जिन उपायों द्वारा नगर-विनाश-रूप समरमें पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्यु ऋषिकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

१५ जिन उपायों द्वारा पानरत और स्तुति-पात्र विखनः-पुत्र वम्रकी रक्षा की थी, स्त्री पा जानेपर कलि नामके ऋषिकी रक्षा की थी और जिन उपायों द्वारा अश्व-शून्य पृथि नामके वेन राजर्षिकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

१६ नेतृद्वय, जिन उपायों द्वारा शयु, अत्रि और पहले मनुको गमन-मार्ग दिखानेकी इच्छा की थी और स्यूमरश्मि ऋषिके लिये उनके शत्रु के ऊपर तीर चलाया था, अश्विद्वय, उन उपायोंके साथ आओ।

१७ जिन उपायों द्वारा पठर्वा नामके राजर्षि शरीर-बलसे संग्राममें काष्ठ-युक्त प्रज्वलित अग्निकी तरह दीप्तिमान् हुए थे और जिन उपायों द्वारा युद्ध-क्षेत्रमें शर्यात राजाकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उन उपायोंके साथ आओ।

१८ अङ्गिरा, अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करो। अश्विद्वय, जिन उपायोंसे तुम लोग अन्तःकरणसे प्रसन्न हुए थे, जिनसे पणि द्वारा अपहृत गौके प्रच्छन्न स्थानमें सारे देवोंसे पहले गये थे और जिनसे अन्न देकर शूर मनुकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उन उपायोंके साथ आओ।

१९ जिन उपायोंसे विमद ऋषिको भार्या दी थी, जिनसे अरुण-वर्ण गायें प्रदान की थीं और जिनसे पिजवन-पुत्र सुदास राजाको उत्कृष्ट धन दिया था, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम्।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २०॥
याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम्।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २१॥
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः।
याभीरथाँ अवथा याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २२॥
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम्।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २३॥
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥ २४॥
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ २५॥

---

२० जिन उपायोंसे हव्य-दाताको सुख प्रदान करते हो, जिनसे तुग्र-पुत्र भुज्यु और देवोंके शमिता अध्रिगुकी रक्षा की थी तथा जिनसे ऋतस्तुभ ऋषिको सुखकर और पुष्टिकर अन्न दिया था, उनके साथ आओ।

२१ जिन उपायों द्वारा सोमपाल कृशानुकी, युद्धमें, रक्षा की थी, जिनसे युवा पुरुकुत्सके अश्वको वेग प्रदान किया था और मधुमक्षिकाओंको मधु दिया था, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

२२ गौकी प्राप्तिके लिये जिन उपायों द्वारा युद्ध-कालमें मनुष्यकी रक्षा करते हो और जिनसे क्षेत्र और धनकी प्राप्तिमें सहायता करते हो तथा जिन उपायोंसे मनुष्य या यजमानके रथों और अश्वोंकी रक्षा करते हो, अश्विद्वय, उन उपायोंके साथ आओ।

२३ शतक्रतु अश्विद्वय, जिन उपायोंसे अर्जुन अर्थात् इन्द्रके पुत्र कुत्स, तुर्वीति और दभीतिकी रक्षा की थी तथा जिन उपायों द्वारा ध्वसन्ति और पुरुषन्ति नामके ऋषियोंको बचाया था, उन उपायोंके साथ आओ।

२४ अश्विद्वय, हमारे वाक्यको विहित-कर्म-युक्त करो; अभीष्ट-वर्षी दस्रद्वय, हमारी बुद्धिको वेद-ज्ञान-समर्थ करो। हम आलोक-विहीन रात्रिके शेष-प्रहरमें, रक्षाके लिये, तुम्हें बुलाते हैं। हमारे अन्न-लाभमें वृद्धि कर दो।

२५ अश्विनीकुमारद्वय, दिन और रातमें हमें विनाश-रहित सौभाग्य द्वारा बचाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थनाको पूजित करें।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय

११३ सूक्त । उषा और रात्रि देवता हैं ।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्टविभ्वा
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एव राज्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्ण चरत आमिनाने ॥ २ ॥
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भवनानि विश्वा ॥ ४ ॥
जिह्मश्ये चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम् ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भवनानि विश्वा ॥ ५ ॥

---

१ ज्योतियोंमें श्रेष्ठ यह ज्योति (उषा) आयी हैं । उषाकी विचित्र और जगत्प्रकाशक रश्मि भी व्याप्त होकर प्रकाशित हुई है । जैसे रात्रि सविता द्वारा प्रसूत हैं, वैसे ही रात्रिने भी उषाकी उत्पत्तिके लिये जन्म-स्थानकी कल्पना की है अर्थात् रात्रि सूर्यको सन्तान हैं और उषा रात्रिकी सन्तान हैं।

२ दीप्तिमती शुभ्रवर्णा सूय-माता उषा आयी हैं । कृष्णवर्णा रात्रि अपने स्थानको गयी हैं । रात्रि और उषा दोनों ही सूर्यकी बन्धुत्व-सम्पन्ना और भरण-रहिता हैं । एक दूसरके पीछे आती हैं और एक दूसरेका वर्ण विनाश करती हैं ।

३ इन दोनों भगिनियों (उषा और रात्रि) का एक ही अनन्त सञ्चरण-मार्ग दीप्तिमान् सूर्य द्वारा आदिष्ट है । वे दोनों एकके पश्चात् एक उसी मार्गपर विचरण करती हैं । सारे पदार्थोंकी उत्पादयित्री रात्रि और उषा, विभिन्न रूप धारण करनेपर भी, समानमनः-सम्पन्ना हैं । वे परस्परको बाधा नहीं देतीं और कभी स्थिर होकर अवस्थित नहीं करतीं ।

४ हम प्रभा-संयुक्ता सूनृत-वाक्य-नेत्री विचित्रा उषाको जानते हैं; उन्होंने हमारा द्वार खोल दिया है । उन्होंने सारे संसारको आलोक-पूर्ण करके हमारे धनको प्रकाशित कर दिया है । उन्होंने सारे भुवनोंको प्रकाशित किया है ।

५ जो लोग टेढ़े होकर सोये थे, उनमेंसे किसीको भोगके लिये, किसीको यज्ञके लिये और किसीको धनके लिये—सबको अपने-अपने कर्मोंके लिये उषाने जागरित किया है । जो थोड़ा देख सकते हैं, उनकी विशेष रूपसे दृष्टिके लिये उषा अन्धकार दूर करती हैं । विस्तीर्ण उषाने सारे भुवनोंको प्रकाशित कर दिया है ।

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६ ॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥ ७ ॥
परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कञ्चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥
उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९ ॥
कियात्या यत् समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥
ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११ ॥
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥

---

६ किसीको धनके लिये, किसीको अन्नके लिये, किसीको महायज्ञके लिये और किसीको अभीष्ट-प्राप्तिके लिये उषा जगाती है। उन्होंने विविध जीविकाओंके प्रकाशके लिये सारे भुवनोंको प्रकाशित किया है।

७ वह नित्य-यौवन-सम्पन्ना, शुभ्रवसना, आकाश-पुत्री उषा अन्धकार दूर करती हुई मनुष्योंकि दृष्टिगोचर हुई हैं। वह सारे पार्थिव धनोंकी अधीश्वरी हैं। सुभगे, तुम आज यहाँ अन्धकार दूर करो।

८ पहलेकी उषाएँ जिस अन्तरीक्ष—मार्गसे गयी हैं, उसीसे उषा जाती हैं और आगे अनन्त उषाएँ भी उसी पथका अनुधावन करेंगी। उषा अन्धकारको दूर करके तथा प्राणियोंको जागृत करके मृतवत् संज्ञा-शून्य लोगोंको चैतन्य प्रदान करती हैं।

९ उषा, तुमने होमार्थ अग्नि प्रज्वलित की है, सूर्यके आलोकसे अन्धकारको दूर कर दिया है और यजमान मनुष्योंको अन्धकारसे मुक्त कर दिया है; इस लिये तुमने देवोंका उपकारी कार्य किया है।

१० कबसे उषा उत्पन्न होती हैं और कबसे उत्पन्न होंगी? वर्त्तमान उषा पूर्वकी उषाओंका साग्रह अनुकरण करती हैं और आगामिनी उषाएँ इन दीप्तिमती उषाका अनुधावन करेंगी।

११ जिन मनुष्योंने अतीव प्राचीन समयमें, आलोक प्रकाशित करते हुए उषाको देखा था, वे इस समय नहीं हैं। हम उषाको देखते हैं; आगे जो लोग उषाको देखेंगे, वे आ रहे हैं।

१२ उषा विद्वेषी मिथ्याचरोंको दूर करती हैं, यज्ञका पालन करती हैं, यज्ञके लिये आविर्भूत होती हैं, सुख देती हैं और सुनृत शब्द प्रेरण करती हैं। उषा कल्याण-वाहिनी हैं और देवोंका वाञ्छित यज्ञ धारण करती हैं। उषा, तुम उत्तम रूपसे आज इस स्थानपर आलोक प्रकाशित करो।

शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३ ॥
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥
आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ॥
उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा ॥ १८ ॥
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि ।
प्रशस्तिकृद्ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥

१३ पहले उषा प्रतिदिन उदित होती थीं; आज भी धनवती उषा इस जगत्‌को अन्धकार-मुक्त करती हैं; इसी प्रकार आगे भी दिन-दिन उदित होंगी; क्योंकि वह अजरा और अमरा होकर अपने तेजसे विचरण करती हैं।

१४ आकाशकी विस्तृत दिशाओंको आलोक-पूर्ण तेज द्वारा उषा दीप्तिमान् करती हैं। उषाने रात्रिके काले रूपको दूर किया है। सोये हुए प्राणियोंको जगाकर उषा अरुण अश्ववाले रथमें आ रही हैं।

१५ उषा पोषक और वरणीय धन लाकर और सबको चैतन्य देकर विचित्र रश्मि प्रकाशित करती हैं। वह पहलेकी उषाओंकी उपमा-रूपिणी हैं और आगामिनी प्रभावती उषाओंकी प्रारम्भ-स्वरूपिणी। वह किरण प्रकाश करती हैं।

१६ मनुष्यो, उठो; हमारा शरीर-संचालक जीवन आ गया है। अन्धकार गया; आलोक आया। उषाने सूर्यको जानेके लिये मार्ग बना दिया है। उषा, जिस देशमें अन्न दान करके वर्द्धन करती हो, वहाँ हम जायँगे।

१७ स्तुति-वाहक स्तोता प्रभावती उषाकी स्तुति करके सुग्रथित वेद-वाक्य उच्चारण करते हैं। धनवती उषा, आज उस स्तोताका अन्धकार नष्ट करो और उसे सन्तति-युक्त अर्थ दान करो।

१८ जो गो-संयुक्त और सर्व-वीर-सम्पन्न उषाएँ वायुकी तरह शीघ्र सूनृत स्तुतिके समाप्त होनेपर हव्यदाता मनुष्यका अन्धकार विनष्ट करती हैं, वे ही अश्व-दात्री उषाएँ सोमाभिषव-कारीके प्रति प्रसन्न हों।

१९ उषा, तुम देवोंकी माता हो, अदितिकी प्रतिस्पर्द्धिनी हो। तुम यज्ञका प्रकाश करो; विस्तीर्ण होकर किरण दान करो। हमारे स्तोत्रकी प्रशंसा करके हमारे ऊपर उदित हो। सबकी वरणीया उषे, हमें जनपदमें आविर्भूत करो।

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्ती जानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥

११४ सूक्त । रुद्र देवता हैं । जगती और त्रिष्टुप् छन्द हैं ।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १ ॥
मृळा नो रुद्रोत नोमयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेलो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥

२० उषाएँ जो कुछ विचित्र और ग्रहण-योग्य धन लाती हैं, वह यज्ञ-सम्पादक स्तोताके कल्याण-स्वरूप है। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थनाको पूजित करें।

१ महान् कपर्दी या जटाधारी और वीरोंके विनाश-स्थान रुद्रको हम यह मननीय स्तुति अर्पण करते हैं, ताकि द्विपद और चतुष्पद स्वस्थ रहें और हमारे इस ग्राम में सब लोग पुष्ट और रोग-शून्य रहें।

२ रुद्र, तुम सुखी हो; हमें सुखी करो। तुम वीरोंके विनाशक हो। हम नमस्कारके साथ तुम्हारी परिचर्या करते हैं। पिता या उत्पादक मनुने जिन रोगोंसे उपशम और जिन भयोंसे उद्धार पाया था; रुद्र, तुम्हारे उपदेशसे हम भी वह पावें।

३ अभीष्ट-दाता रुद्र, तुम वीरोंके क्षयकारी अथवा ऐश्वर्यशाली मरुतोंसे युक्त हो। हम देव-यज्ञ द्वारा तुम्हारा अनुग्रह प्राप्त करें। हमारी सन्तानोंके सुखकी कामना करके उनके पास आओ। हम भी प्रजाका हित देखकर तुम्हें हव्य देंगे।

४ रक्षणके लिये हम दीप्तिमान्, यज्ञ-साधक, कुटिलगति और मेधावी रुद्रका आह्वान करते हैं। वह हमारे पाससे अपना क्रोध दूर करें। हम उनका अनुग्रह चाहते हैं।

५ हम उन स्वर्गीय उत्कृष्ट वराहकी तरह दृढाङ्ग, अरुणवर्ण, कपर्दी, दीप्तिमान् और उज्ज्वल रूपधर रुद्रको नमस्कार द्वारा बुलाते हैं। हाथमें वरणीय भेषज धारण करके वह हमें सुख, वर्म और गृह प्रदान करें।

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ॥ ६॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥ ७॥
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥ ८॥
उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे॥ ९॥
आरे ते गोघ्नमुत पुरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः॥ १०॥
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ ११॥

६ मधुसे भी अधिक मधुर यह स्तुति-वाक्य मरुतोंके पिता रुद्रके उद्देशसे उच्चारित किया जाता है। इससे स्तोता-की वृद्धि होती है। मरण-रहित रुद्र, मनुष्योंका भोजन-रूप अन्न हमें प्रदान करो। मुझे, मेरे पुत्रको और पौत्रको सुख दान करो।

७ रुद्र, हममेंसे बूढ़ेको नहीं मारना, बच्चेको नहीं मारना, सन्तानोत्पादक युवकको नहीं मारना तथा गर्भस्थ शिशुको भी नहीं मारना। हमारे पिताका बध नहीं करना, माताकी हिंसा नहीं करना तथा हमारे प्रिय शरीरमें आघात नहीं करना।

८ रुद्र, हमारे पुत्र, पौत्र, मनुष्य, गौ और अश्वको नहीं मारना। रुद्र, क्रुद्ध होकर हमारे वीरोंकी हिंसा नहीं करना; क्योंकि हव्य लेकर हम सदा ही तुम्हें बुलाते हैं।

९ जैसे चरवाहे सायंकाल अपने स्वामीके पास पशुओंको लौटा देते हैं, रुद्र, वैसे ही मैं तुम्हारा स्तोत्र तुम्हें अर्पण करता हूँ। मरुतोंके पिता, हमें सुख दो। तुम्हारा अनुग्रह अत्यन्त सुखकर और कल्याण-वाही हो। हम तुम्हारा रक्षण चाहते हैं।

१० वीरोंके विनाशक रुद्र, तुम्हारा गो-हनन-साधन और मनुष्य-हनन-साधन अस्त्र दूर रहे। हम तुम्हारा दिया सुख पावें। हमें सुखी करो। दीप्तिमान् रुद्र, हमारे पक्षसे कहना। तुम पृथिवी और अन्तरीक्षके अधिपति हो। हमें सुख दो।

११ हमने रक्षा-कामना करके कहा है। उन रुद्र देवको नमस्कार है। मरुतोंके साथ रुद्र हमारा आह्वान सुनें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थनाको पूजित करें।

११५ सूक्त। सूर्य देवता हैं।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥
तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सञ्जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

१ विचित्र तेजः-पुञ्ज तथा मित्र, वरुण और अग्निके चक्षुःस्वरूप सूर्य उदित हुए हैं। उन्होंने द्यावा-पृथिवी और अन्तरीक्षको अपनी किरणोंसे परिपूर्ण किया है। सूर्य जंगम और स्थावर—दोनोंकी आत्मा हैं।

२ जैसे पुरुष स्त्रीका अनुगमन करता है, वैसे ही सूर्य भी दीप्तिमती उषाके पीछे-पीछे आते हैं। इसी समय देवाभिलाषी मनुष्य बहु-युग-प्रचलित यज्ञ-कर्मका विस्तार करते हैं; सुफलके लिये कल्याण-कर्मको सपन्न करते हैं।

३ सूर्यके कल्याण-रूप हरि नामके विचित्र घोड़े इस पथसे जाते हैं। वे सबके स्तुति-भाजन हैं। हम उनको नमस्कार करते हैं। वे आकाशके पृष्ठ-देशमें उत्थित हुए हैं। वे घोड़े तुरत ही द्यावा-पृथिवी—चारों दिशाओंका परिभ्रमण कर डालते हैं।

४ सूर्यदेवका ऐसा ही देवत्व और माहात्म्य है कि, वह मनुष्योंके कर्म समाप्त होनेके पहले ही अपने विशाल किरण-जालका उपसंहार कर डालते हैं। जिस समय सूर्य अपने रथसे हरि नामके घोड़ोंको खोलते हैं, उस समय सारे लोकोंमें रात्रि अन्धकार-रूप आवरण विस्तृत करती है।

५ मित्र और वरुणको देखनेके लिये आकाशके बीच सूर्य अपना ज्योतिर्मय रूप प्रकाशित करते हैं। सूर्यके हरि नामके घोड़े एक ओर अपना अनन्त दीप्तिमान् बल धारण करते हैं, दूसरी ओर कृष्ण वर्ण अन्धकार करते हैं।×

६ सूर्य-किरणो, सूर्योदय होनेपर आज हमें पापसे छुड़ाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थनाको पूजित करें। ⊛

× अनेक भाष्यकारोंने "हरित" का अर्थ किरण किया है।

⊛ ९४ से ९६, ९८ और १०० से १०३ तथा १०५ से ११५ सूक्तोंके अन्तमें "तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः" है।

१७ अनुवाक् । ११६ सूक्त । अश्विद्वय देवता है । यहाँसे १२५ सूक्ततक दीर्घतमाके
अपत्य कक्षीवान् ऋषि हैं । छन्द पूर्ववत् त्रिष्टुप् है ।

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥
वीलुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः ॥ ४ ॥
अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥
यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥

---

१ यज्ञके लिये जिस प्रकार यजमान कुशका विस्तार करता है तथा वायु मेघको नाना दिशाओंमें प्रेरित करता है, उसी प्रकार मैं नासत्यद्वय या अश्विद्वयको प्रभूत स्तोत्र प्रेरित करता हूँ । अश्विनीकुमारोंने शत्रु-सेना द्वारा दुष्प्राप्य रथ द्वारा युवक विमद राजर्षिको, स्वयंवरमें प्राप्त, स्त्रीको विमदके पास पहुंचा दिया था ।

२ नासत्यद्वय, तुम लोग बलवान् और शीघ्रगामी अश्व द्वारा नीत और देवोंके उत्साहसे उत्साहित हुए थे। तुम्हारे रथ-वाहक गर्दभने यमके प्रिय सहस्र युद्धोंमें जय लाभ किया था ।

३ जैसे कोई म्रियमाण मनुष्य धनका त्याग करता है, वैसे ही तुग्र नामके राजर्षिने बड़े कष्टसे अपने पुत्र भुज्युको, सेनाके साथ, शत्रु-जयके लिये, नौका द्वारा समुद्र (-स्थित द्वीप) में भेजा । मध्य-समुद्रमें निमग्न भुज्युको, अश्विद्वय, तुमने अपनी नौका द्वारा उसके पास पहुँचाया था । तुम्हारी नौका जलके ऊपर अन्तरीक्षमें चलनेवाली और अप्रविष्ट जलवाली है अर्थात् तुम्हारी नौकामें जल नहीं पैठता ।

४ नासत्यद्वय, तुमने शीघ्रगामी शतचक्र-विशिष्ट और छः अश्वोंसे युक्त रथ-त्रयपर भुज्युको वहन किया था। वह रथ तीन दिन, तीन राततक आर्द्र सागरके जल-शून्य प्रदेशमें लाये थे ।

५ अश्विद्वय, तुम लोगोंने अवलम्बन-शून्य, भूप्रदेश-रहित, ग्रहणीय शाखादि-वस्तु-रहित सागरमें यह कार्य किया था । सौ डाँडोंवाली नौकामें भुज्युको बैठाकर तुम्हारे पास लाये थे ।

६ अश्विद्वय, अघाश्व अश्वके पति पेदु नामके राजर्षिको तुमने जो श्वेतवर्ण अश्व दिया था, उस अश्वने पेदुका नित्य प्रति जय-रूप मंगल साधन किया था । तुम्हारा वह दान महान् और कीर्तनीय हुआ था । पेदुका वह उत्तम अश्व हमारा सदा पूजनीय है ।

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥
हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥
परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० ॥
तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥
तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ १२ ॥

७ नेतृद्वय, तुमने अङ्गिराके कुलमें उत्पन्न कक्षीवान्‌को, स्तुति करनेपर, प्रचुर बुद्धि दी थी। सुरापात्रके आधारसे जैसे सुरा निकाली जाती है, वैसे ही तुम्हारे सेचन-समर्थ अश्वके खुरसे तुमने शतकुम्भ सुराका सिञ्चन किया था।

८ तुमने हिम या जल द्वारा शतद्वार-पीड़ा-यंत्र-गृहमें फँसे हुए अत्रिकी, चारो ओरको, असुरों द्वारा प्रज्वालित और दीप्यमान अग्निका निवारण किया था तथा अग्निको अन्नयुक्त और बल-प्रद खाद्य दिया था। अश्विनीकुमारद्वय, अत्रि जो निम्नाभिमुख होकर अन्धकारमय पीड़ा-यंत्र-गृहमें प्रक्षिप्त हुए थे, उन्हें तुमने संगियोंके साथ सुखसे वहाँसे उठाया था।

९ नासत्यद्वय, तुम मरुभूमिमें गोतम ऋषिके पास कूप उठा लाये थे और कूपका तल-भाग ऊपर तथा मुख-भाग नीचे किया था। उस कूपसे तृष्णातुर गोतमके पान और सहस्र धन लाभके लिये जल निर्गत हुआ था।

१० अश्विद्वय, जैसे शरीरका आवरण (कवच आदि) खोल फेंका जाता है, वैसे ही तुमने जीर्ण च्यवन ऋषिकी शरीरव्यापिनी जरा खोल फेंकी थी। दस्रद्वय, तुमने पुत्रादि द्वारा परित्यक्त ऋषिके जीवनको बढ़ाया था; अनन्तर उन्हें कन्याओंका पति बना दिया था।

११ नेता नासत्यद्वय, तुम्हारा वह इष्ट वरणीय कार्य हमारे लिये प्रशंसनीय और आराध्य है—जो तुमने जानकर गुप्त धनकी तरह छिपे उन वन्दन ऋषिको पिपासित पथिकोंके द्रष्टव्य कूपसे निकाला था।

१२ नेतृद्वय, जैसे मेघ-गर्जन आसन्नवृष्टि प्रकटित करता है, मैं धन-प्राप्तिके लिये, तुम्हारे उस उग्र कर्मको वैसे ही प्रकटित करता हूँ—जो अथर्वाके पुत्र दधीचि ऋषिने घोड़ेका मस्तक पहनकर तुम्हें यह मधु-विद्या सिखायी थी। ‡

‡ ८४ सूक्तकी १३ ऋचाका अर्थ देखिये।

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरन्धिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरानासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥
शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेव तिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७ ॥
यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥

१३ बहु-लोक-पालक नासत्यद्वय, तुम अभिमत-फल-दाता हो। बुद्धिमती वध्रिमती नामकी ऋषि-पुत्रीने पूजनीय स्तोत्र द्वारा तुम्हें बार-बार पुकारा था। जैसे शिष्य शिक्षककी कथा सुनता है, तुमने वैसे ही वध्रिमतीका आह्वान सुना था। अश्विद्वय, पुत्राभिलाषिणी नपुंसक-पतिका वध्रिमतीको तुमने हिरण्यहस्त नामका पुत्र प्रदान किया था।

१४ नेता नासत्यद्वय, तुमने वृक अथवा सूर्यके मुखसे वर्त्तिका नामक पक्षी अथवा उषाको छुड़ाया था। हे बहुलोक-पालक, तुमने स्तोत्र-तत्पर मेधावीको प्रकृत ज्ञान देखने दिया था।

१५ खेल राजाको स्त्री विश्पलाका एक पैर, युद्धमें, पक्षीके पंखकी तरह, कट गया था। अश्विद्वय, तुमने रातो रात, विश्पलाके जानेके लिये तथा शत्रु-न्यस्त धन-लाभके लिये, उसे लौहमय जंघा दे दी थी।

१६ जिन ऋज्राश्व राजर्षिने अपनी वृकी (वृककी स्त्री) को खानेके लिये सौ भेड़ोंको काट डाला था, उनको उनके पिता (वृषागिर) ने क्रुद्ध होकर नेत्र-हीन कर दिया था। ऋज्राश्वके दोनों नेत्र किसी भी वस्तुको देखनेमें असमर्थ हो गये थे। भिषज-दक्ष नासत्यद्वय, तुमने ऋज्राश्वकी आँखें अच्छी कर दीं।

१७ अश्विद्वय, सारे देवोंमें तुम्हारे शीघ्रगामी घोड़ोंके होनेसे सूर्य-पुत्री सूर्या तुम्हारे द्वारा विजित हो गयी और तुम्हारे रथपर आरोहण किया। घुड़दौड़के जितानेवाले काष्ठ-खण्डके पास तुम्हारे घोड़ोंके पहुँचनेसे सारे देवोंने हृदयके साथ इस कार्यका अनुमोदन किया। नासत्यद्वय, तुमने सम्पत् प्राप्त की। ❋

१८ अश्विद्वय, राजर्षि दिवोदासके, हव्यान्न प्रदान कर तुम्हें, बुलानेपर तुम उनके घर गये थे। उस समय तुम्हारा सेव्य रथ धन-संयुक्त अन्न ले गया था। वृषभ और ग्राह उस रथमें युक्त हुए थे।

❋ विवाहका समय आनेपर सूर्या सोम राजाको दी जानेवाली थी। परन्तु सब देवोंने उसे चाहा। घुड़-दौड़की बाजी लगी। अश्विद्वयके घोड़े जीत गये। सूर्या उन्हें ही मिली।

रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥ १९ ॥
परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वतां अजरयू अयातम् ॥ २० ॥
एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥
दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥

---

१९ नासत्यद्वय, तुम शोभन-बल-सम्पन्न और शोभन अपत्य और वीर्यसे युक्त होकर तथा समान प्रीति-युक्त होकर महर्षि जन्हुकी सन्तानोंके पास आये थे। सन्तानोंने हव्यान्न प्रदान किया था तथा दैनिक सोमाभिषवके प्रातःसवन आदि तीन भाग धारण किये थे।

२० नासत्यद्वय, तुम अजर हो। जिस समय जाहुष राजा शत्रुओं द्वारा चारो ओरसे घेरे गये थे, उस समय अपने सर्व-भेदकारी रथ द्वारा रातो-रात उन्हें सुगम्य पथसे बाहर कर ले गये थे; और, शत्रुओं द्वारा दुरारोह पर्वतोंपर गये थे।

२१ अश्विद्वय, तुमने वश नामक ऋषिको, एक दिनमें हजार शोभन धन पानेके लिये, रक्षा की थी। अभीष्ट-वर्षक अश्विद्वय, तुमने इन्द्रके साथ मिलकर पृथुश्रवा राजाके क्लेशदायका शत्रुओंको मारा था।

२२ ऋचत्कके पुत्र शर नामक स्तोताके पानके लिये तुमने कूपके नीचेसे जलको ऊपर किया था। नासत्यद्वय, श्रान्त शयु नामक ऋषिके लिये प्रसव-शून्य गौको, अपने कार्य्य द्वारा, दुग्धवती बनाया था।

२३ नासत्यद्वय, कृष्ण-पुत्र और ऋजुता-तत्पर विश्वकाय नामक ऋषिके तुम्हारी रक्षाकी लालसामें, स्तुति करनेपर अपनेकार्यों द्वारा, तुमने, नष्ट पशुकी तरह, उनके विष्णापु नामक विनष्ट पुत्रको दिखा दिया था।

२४ असुरों द्वारा पाशसे बद्ध, कूपमें निक्षिप्त और शत्रुओं द्वारा आहत होकर रेभ नामक ऋषिके दस रात नौ दिन जलमें पड़े रहनेसे व्यथासे सन्तप्त और जलसे विप्लुत होनेपर तुमने उन्हें उसी प्रकार कूएँसे निकाल लिया था, जिस प्रकार अध्वर्यु स्रुवसे सोम निकालता है।

२५ अश्विद्वय, तुम्हारे पूर्व-कृत कार्योंका मैंने वर्णन किया। मैं शोभन गौ और वीरसे युक्त होकर इस राष्ट्रका अधिपति बनूँ। जैसे गृहस्वामी निष्कंटक घरमें प्रवेश करता है, मैं भी वैसेही नेत्रोंसे स्पष्ट देखकर और दीर्घ आयु भोग कर बुढ़ापा पाऊँ।

११७ सूक्त। अश्विद्वय देवता हैं।

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥
यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सन्तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥
सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥
तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥ ६ ॥

---

१ अश्विद्वय, तुम्हारे चिरन्तन होता तुम्हारे हर्षके लिये मधुर सोमरसके साथ तुम्हारी अर्चना करता है। कुशके ऊपर हव्य स्थापित किया हुआ है; ऋत्विकों द्वारा स्तुत और प्रस्तुत हुआ है। नासत्यद्वय, अन्न और बल लेकर पास आओ।

२ अश्विद्वय, मनकी अपेक्षा भी वेगवान् और शोभन-अश्व-युक्त रथ सारे प्रजावर्गके सामने जाता है और जिस रथसे तुम लोग शुभकर्मा लोगोंके घर जाते हो, नेतृद्वय, उसीपर हमारे घर पधारो।

३ नेतृद्वय, अभीष्ट-वर्षकद्वय, तुमलोग शत्रुओंको हिंसा करके और क्लेशदायिनी दस्यु-मायाका आनुपूर्विक निवारण करके पाँच श्रेणियों (चार वर्ण और पञ्चम निषाद) द्वारा पूजित अत्रि ऋषिको शतद्वार-यन्त्र-गृहके पाप-तुषानलसे, सन्तानादिके साथ, मुक्त किया था।

४ नेतृद्वय, अभीष्ट-वर्षकद्वय, दुर्दान्त दानवों द्वारा जलमें निगूढ़ रेभ ऋषिको तुम लोगोंने निकालकर पीड़ित अश्वकी तरह, उनका विनष्ट अवयव, अपनी दवाओंसे, ठीक किया था। तुम्हारे पहलेके काम जीर्ण नहीं हुए।

५ दस्र अश्विद्वय, पृथिवीके ऊपर सुप्त मनुष्यकी तरह और अन्धकारमें क्षय-प्राप्त सूर्यके शोभन दीप्तिमान् आभूषणकी तरह तथा दर्शनीय उस कूपमें प्रक्षिप्त वन्दन ऋषिको तुम लोगोंने निकाला था।

६ नेता नासत्यद्वय, अङ्गिरोवंशीय कक्षीवान् मैं मनोऽनुकूल द्रव्यकी प्राप्तिकी तरह तुम्हारा अनुष्ठान उद्घोषित करूँगा; क्योंकि तुमने शीघ्र-गामी घोड़ेके खुरोंसे निकाले हुए मधुसे संसारमें सैकड़ों घड़े पूरे कर दिये थे।

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥
एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥
सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३ ॥

७ नेतृद्वय, कृष्णके पुत्र विश्वकायके, तुम लोगोंको स्तुति करनेपर, विनष्ट पुत्र विष्णापुको तुम लोग लाये थे। अश्विद्वय, कोढ़ होनेके कारण बुढ़ापेतक पितृ-गृहमें अविवाहिता रहनेपर घोषा नामकी ब्रह्म-वादिनी स्त्रीको, कोढ़ दूर कर, पति प्रदान किया था।

८ अश्विद्वय, तुमने कुष्ठरोग-ग्रस्त श्याव या श्यामवर्ण ऋषिको अच्छा कर दीप्तिमती स्त्री दी थी। आंखें न रहनेसे कवि नहीं चल सकते थे; तुमने उन्हें आंखें दी थीं। अभीष्ट-वर्षिद्वय, बहरे नृषद-पुत्रको तुमने कान दिये थे; यह कार्य प्रशंसनीय है।

९ बहु-रूप-धारी अश्विद्वय, तुमने राजर्षि पेदुको शीघ्रगामी अश्व दिया था। वह घोड़ा हजारो तरहके धन देता था। वह बलवान् शत्रुओं द्वारा अपराजेय, शत्रु-हन्ता, स्तुति-पात्र और विपद्में रक्षक था।

१० दानवीर अश्विनीकुमारो, तुम्हारी ये वीर-कीर्तियाँ सबको जाननी चाहिये। तुम द्यावा-पृथिवी—रूप वर्त्तमान हो। तुम्हारा आह्लादकर घोषणीय मन्त्र निष्पन्न हुआ है। अश्विद्वय, जिस समय अङ्गिराकुलके यजमान तुम्हें बुलाते हैं, उस समय अन्न लेकर आओ तथा मुझ यजमानको बल दो।

११ पोषक नासत्यद्वय, कुम्भके पुत्र अगस्त्य ऋषिकी स्तुतिसे स्तुत होकर और मेधावी भरद्वाज ऋषिको अन्नदान कर तथा अगस्त्य द्वारा मंत्र-वर्द्धित होकर तुमने विश्पलाको नीरोग किया था।

१२ आकाश-पुत्रद्वय, अभीष्ट-वर्षक, काव्य (उशना) की स्तुति सुननेके लिये कहाँ उसके घरकी ओर जाते हो? हिरण्यपूर्ण कलशकी तरह कूपमें गिरे रेभ ऋषिको तुमने दसवें दिन उबारा था।

१३ अश्विद्वय, भैषज्यरूप कार्य द्वारा तुमने बुद्ध च्यवन ऋषिको युवा किया था। नासत्यद्वय, सूर्य-पुत्री सूर्या, कान्तिके साथ, तुम्हारे रथपर चढ़ी थी।

युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ १५ ॥
अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥
शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥ १७ ॥
शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥
मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत् पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥

१४ दुःख-विदारक-द्वय, तुग्र जैसे पहले स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करते थे, अनन्तर फिर भी उसी तरह तुम लोगोंकी अर्चना करते थे; क्योंकि उनके पुत्र भुज्युको तुम विक्षिप्त समुद्रसे गमनशील नौका और शीघ्रगति अश्वद्वारा ले आये थे ।

१५ अश्विद्वय, पिता तुग्र द्वारा समुद्रमें भेजे हुए और जलमें डूबते हुए भुज्युने, सरलतासे समुद्र-पार होकर, तुम्हारा आह्वान किया था । मनोवेग-सम्पन्न अभीष्ट-वर्षिद्वय, तुम लोग उत्कृष्ट-अश्व-युक्त रथपर भुज्युको लाये थे ।

१६ अश्विद्वय, जिस समय तुम लोगोंने वृकके मुखसे वर्तिका नामकी चिड़ियाको छुड़ाया था, उस समय उसने तुम्हारा आह्वान किया था । तुम लोग जयशील रथ द्वारा जाहुषको लेकर पर्वत-प्रदेश चले गये थे । तुमने विष्वाङ् असुरके पुत्रको विषयुक्त तीर द्वारा हत किया था ।

१७ जब कि, ऋज्राश्वने वृकीके लिये सौ भेंड़ोंका वध किया था, तब उनके क्रुद्ध पिताने उन्हें अन्धा बना दिया था । इसके अनन्तर तुमने उन्हें नेत्र प्रदान किया था । देखनेके लिये तुम लोगोंने अन्धको चक्षु दिया था ।

१८ उस अन्धको चक्षु द्वारा सुख देनेकी इच्छासे वृकीने तुम्हें आह्वान किया था—अश्विद्वय, अभीष्ट-वर्षिद्वय, नेतृद्वय, ऋज्राश्वने, तरुण जारकी तरह, अमितव्ययी होकर एक सौ एक भेंड़ोंको खण्ड-खण्ड किया था ।

१९ अश्विद्वय, तुम्हारा रक्षा-कार्य सुखका कारण है; हे स्तुति-पात्र, तुमने रोगियोंके अंगोंको ठीक किया है; इसलिये प्रभूत-बुद्धि-शालिनी घोषाने, तुम्हें रोग-निवृत्तिके लिये, बुलाया था । अभीष्ट-दातृद्वय, अपने रक्षण-कार्योंके साथ आओ ।

अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्॥ २० ॥
यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥ २१ ॥
आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम्॥ २२ ॥
सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम्॥ २३ ॥
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम्।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू॥ २४ ॥
एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन्।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम॥ २५ ॥

२० दस्रद्वय, शयु ऋषिके लिये तुमने कृशा, प्रसव-शून्या और दुग्ध-रहिता गौको दुग्ध-पूर्ण किया था। तुमने अपने कर्म द्वारा पुरुमित्र राजाकी कुमारीको विमद ऋषिकी स्त्री बनाया था।

२१ अश्विद्वय, तुमने विद्वान् मनु या आर्य मनुष्यके लिये हल द्वारा खेत जुतवाकर, यव वपन कराकर, अन्नके लिये वृष्टि-वर्षण करके तथा वज्रद्वारा दस्युका बध करके उसके लिये विस्तीर्ण ज्योति प्रकाश की।

२२ अश्विद्वय, तुमने अथर्वा ऋषिके पुत्र दधीचि ऋषिके स्कन्धपर अश्वका मस्तक जोड़ दिया था। दधीचिने भी सत्य-रक्षा कर त्वष्टा या इन्द्रसे प्राप्त मधुविद्या तुम्हें सिखायी थी। दस्रद्वय, वही विद्या तुम लोगोंमें प्रवर्ग्य-विद्या-रहस्य हुई थी। ❋

२३ मेधावि-द्वय, मैं सदा तुम्हारी कृपाके लिये प्रार्थना करता हूँ। तुम मेरे सारे कार्योंकी रक्षा करते हो। नासत्य-द्वय, हमें विशाल, सन्तान-समेत और प्रशंसनीय धन दो।

२४ दानशील और नेता अश्विद्वय, तुमने वध्रिमतीको हिरण्यहस्त नामका पुत्र दिया था। दानशील अश्विद्वय, तुमने तीन भागोंमें विभक्त श्याव ऋषिको जीवित किया था।

२५ अश्विद्वय, तुम्हारे इन प्राचीन कार्योंको पूर्वज कह गये हैं। अभीष्ट-दातृद्वय, हम भी तुम्हारी स्तुति करके वीर पुत्र आदिसे युक्त होकर यज्ञको सम्पन्न करते हैं।

❋ मधुविद्या और प्रवर्ग्य-विद्याका विवरण छान्दोग्योपनिषत् में है।

११८ सूक्त । अश्विनीकुमारद्वय देवता हैं ।

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥
प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥
उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात् पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

१ अश्विद्वय, श्येन पक्षीकी तरह शीघ्रगामी, सुखकर और धन युक्त तुम्हारा रथ हमारे सम्मुख आवे। अभीष्ट-वर्षक-द्वय, तुम्हारा वह रथ मनुष्यके मनकी तरह वेगवान्, त्रिबन्धुर या त्रिबन्धनाधारभूत और वायु-वेगी है।

२ अपने त्रिबन्धुर, त्रिकोण या तीनों लोकोंमें वर्त्तमान, त्रिचक्र और शोभन-गति रथपर हमारे सम्मुख आओ। अश्विद्वय, हमारी गायोंको दुग्धवती करो। हमारे घोड़ोंको प्रसन्न करो। हमारे वीर पुत्र आदिको वर्द्धित करो।

३ दस्रद्वय, अपने शीघ्रगामी और शोभन-गति रथ द्वारा आकर सेवा-परायण स्तोताका यह मंत्र सुनो। अश्विद्वय, क्या पहलेके विद्वान् यह नहीं बोले थे कि, तुम स्तोताओंकी दरिद्रता दूर करनेके लिये सर्वदा जाते हो?

४ अश्विद्वय, रथमें योजित, शीघ्रगन्ता, उछलनेमें बहादुर और श्येन पक्षीकी तरह वेग-विशिष्ट तुम्हारे घोड़े तुम्हें लेकर आवें। नासत्यद्वय, जलकी तरह शीघ्रगति अथवा आकाशचारी गृध्रकी तरह शीघ्रगति वे घोड़े तुम्हें हव्यान्नके सामने ले आ रहे हैं।

५ नेतृद्वय, प्रसन्न होकर सूर्यकी युवती पुत्री तुम्हारे रथपर चढ़ी थी। तुम्हारे पुष्टाङ्ग, अन्न-प्रदान-समर्थ, शीघ्रगामी और दीप्तिमान् घोड़े तुम्हें हमारे घरकी ओर ले आवें।

६ अपने कार्यद्वारा तुमने बन्दन ऋषिको बचाया था। कामवर्षिद्वय, अपने कार्य द्वारा तुमने रेभ ऋषिको निकाला था। तुमने तुग्र-पुत्र भुज्युको समुद्रसे पार कराया था। च्यवन ऋषिको फिर युवक बना दिया था।

७ अश्विद्वय, तुमने रोके हुए अत्रिकी प्रदीप्त अग्नि-शिखाको निवारित किया था और उन्हें रसवान् अन्न प्रदान किया था। स्तुति ग्रहण करके तुमने अन्धकारमें प्रविष्ट कण्व ऋषिको चक्षु प्रदान किया था।

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम्॥ ८॥
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम्।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम्॥ ९॥
ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम्॥ १०॥
आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ॥ ११॥

११९ सूक्त। अश्विद्वय देवता हैं।

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः॥ १॥
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत्॥ २॥

८ अश्विद्वय, प्रार्थना करनेपर प्राचीन शयु ऋषिकी दुग्धरहिता गौको दुग्धवती किया था। तुमने वृक-रूप पापसे वर्त्तिकाको छुड़ाया था। तुमने विश्पलाको एक जंघा बना दी थी।

९ अश्विद्वय, तुमने पेदु राजाको श्वेतवर्ण घोड़ा दिया था। वह अश्व इन्द्र-प्रदत्त, शत्रु-हन्ता और सं ग्राममें शब्द करनेवाला था। वह अरि-मर्दन, उग्र और सहस्र या अनेक प्रकारके धन देनेवाला था। वह अश्व सेचन-समर्थ और दृढाङ्ग था।

१० नेतृद्वय, शोभन-जन्मा अश्विद्वय, हम धन-याचना करके रक्षाके लिये तुम्हें बुलाते हैं। हमारी स्तुति ग्रहण करके तुम लोग धनशाली रथपर, हमें सुख देनेके लिये, हमारे सम्मुख आओ।

११ नासत्यद्वय, समान-प्रीति-सम्पन्न होकर तथा श्येनपक्षी अथवा प्रशंसनीय गमनकारी अश्वके नूतन वेगकी तरह हमारे निकट आओ। अश्विद्वय, हव्य लेकर हम नित्य उषाके उदय-कालमें तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ अश्विद्वय, जीवन धारणके लिये, अन्नके निमित्त, मैं तुम्हारे रथका आवाहन करता हूँ। वह रथ बहु-विधगति-विशिष्ट, मनकी तरह शीघ्रगामी, वेगवान् अश्वसे युक्त, यज्ञ-पात्र, सहस्रकेतु-युक्त, शतधन-युक्त, सुखकर और धनदाता है।

२ उस रथके गमन करनेपर अश्विद्वयकी प्रशंसामें हमारी बुद्धि ऊपर उठ जाती है। हमारी स्तुतियाँ अश्विद्वयको प्राप्त हुई हैं। मैं हव्यको स्वादिष्ट करता हूँ। सहायक ऋत्विक् लोग आते हैं। अश्विद्वय, सूर्य-पुत्री ऊर्जानी तुम्हारे ऊपर चढ़ी हैं।

सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४ ॥
युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥ ५ ॥
युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥
युवं वन्दनं निरृतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥ ७ ॥
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥

३ जिस समय यज्ञ-परायण असंख्य जय-शील मनुष्य संग्राममें धनके लिये परस्पर स्पर्द्धा करके एकत्र होते हैं, हे अश्विद्वय, उस समय तुम्हारा रथ पृथवीपर आता हुआ मालूम पड़ता है। उसी रथपर तुम लोग स्तोताके लिये श्रेष्ठ धन लाते हो ।

४ अभीष्ट-वर्षकद्वय, जो भुज्यु अपने घोड़ोंके द्वारा लाये जाकर समुद्रमें निमज्जित हुए थे, उन्हें तुम लोग स्वयं अपने संयोजित घोड़ोंके द्वारा लाकर उनके पिताके पास उनके दूरस्थ घरमें पहुँचा गये थे। दिवोदासको भी जो तुम लोगों ने महान् रक्षण प्रदान किया था, वह हम जानते हैं।

५ अश्विद्वय, तुम्हारे प्रशंसनीय दोनों घोड़े, तुम्हारे संयोजित रथको, उसकी सीमा—सूर्य—तक सारे देवोंके पहले ही ले गये थे। कुमारी सूर्याने, इस प्रकार विजित होकर, मैत्री भावके कारण, "तुम मेरे पति हो"—कहकर तुम्हें पति बना लिया था।

६ तुमने रेभ ऋषिको, चारो ओरके उपद्रवोंसे, बचाया था। तुमने अत्रिके लिये, हिम द्वारा, अग्निका निवारण किया था। तुमने शयुकी गौको दुग्ध दिया था। तुमने वन्दन ऋषिको दीर्घ आयु द्वारा वर्द्धित किया था।

७ जैसे पुराने रथको शिल्पी नया कर देता है; हे निपुण दस्रद्वय, उसी प्रकार तुमने भी वार्द्धक्य-पीड़ित वन्दनको फिर युवा कर दिया था। गर्भस्थ वामदेवके तुम्हारी स्तुति करनेपर तुमने उन मेधावीको गर्भसे जन्म दिया था। तुम्हारा यह रक्षण-कार्य इस परिचर्या-परायण यजमानके लिये परिणत हो।

८ भुज्युके पिताने उनको छोड़ दिया था। भुज्युने दूर देशमें पीड़ित होनेपर तुम्हारी कृपाके लिये प्रार्थना की। तुम उनके पास गये। फलतः तुम्हारी शोभनीय गति और विचित्र रक्षण-कार्य सबलोग सम्मुख पानेकी इच्छा करते हैं।

उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रतिवामश्व्यं वदत् ॥ ९ ॥
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ १० ॥

१२० सूक्त। अश्विद्वय देवता हैं। गायत्री, ककुप्, काविराट्, उष्णिक्, कृति, विराट् आदि छन्द हैं।

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः। कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥
विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः। नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥
ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य। प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥
वि पृच्छामि पाक्या न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा। पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम्। प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥
श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम्। आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥

९ तुम मधु-युक्त हो। मधु-कामिनी उस मक्षिकाने तुम्हारी स्तुति की है। उशिक्पुत्र मैं कक्षीवान् तुम्हें सोमपानमें प्रसन्नता पानेके लिये बुलाता हूँ। तुमने दधीचि ऋषिका मन तृप्त किया था। उनके अश्व-मस्तकने तुम्हें मधुविद्या प्रदान की थी।

१० अश्विद्वय, तुमने पेदु राजाको बहुजन-वाञ्छित और शत्रु-पराजयी शुभ्रवर्ण अश्व दिया था। वह अश्व युद्ध-रत, दीप्तिमान् युद्धमें अपराजेय, सारे कार्योंमें संयोज्य और इन्द्रकी तरह मनुष्य-विजयी है।

---

१ अश्विद्वय, कौनसी स्तुति तुम्हें प्रसन्न कर सकती है? तुम दोनोंको कौन परितुष्ट कर सकता है? एक अज्ञानी जीव तुम्हारी कैसे सेवा कर सकता है?

२ अनभिज्ञ प्राणी इसी प्रकार उन दोनों सर्वज्ञोंकी परिचर्याके उपायभूत मार्गकी जिज्ञासा करता है। अश्विनी-कुमारोंके सिवा सभी अज्ञ हैं। शत्रु द्वारा आक्रमण-रहित अश्विद्वय शीघ्र ही मनुष्यपर अनुग्रह करते हैं।

३ सर्वज्ञद्वय, हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम अभिज्ञ हो, हमें मननीय स्तोत्र बताओ। वही मैं तुम्हारी कामना करके, हव्य प्रदान करते हुए, स्तुति करता हूँ।

४ मैं तुम्हें ही जिज्ञासा करता हूँ; अपनी पक्व बुद्धिसे जिज्ञासा नहीं करता। दस्रद्वय, "वषट्" शब्दके साथ अग्निमें प्रदत्त, अद्भुत और पुष्टिकर सोम-रस पान करो। हमें प्रौढ़ बल प्रदान करो।

५ तुम्हारी जो स्तुति घोषापुत्र सुहस्त्य और भृगु द्वारा उच्चारित होकर सुशोभित हुई थी, उसी स्तुति द्वारा पज्रवंशीय ऋषि मैं कक्षीवान् तुम्हारी अर्चना करता हूँ। इसलिये यह स्तुतिज्ञ मैं अन्न-कामनामें सफल-मना बनूँ।

६ स्खलद्गति या गति-रहित ऋषि अर्थात् अन्ध ऋज्राश्वकी स्तुति सुनो। शोभनीय कर्मोंके प्रतिपालक, उसने मेरी तरह स्तुति करके चक्षुद्वय प्राप्त किया था। फलतः मेरा मनोरथ भी पूर्ण करो।

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम्।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः॥ ७॥
मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः। स्तनाभुजो अशिश्वीः॥ ८॥
दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतम् वाजवत्यै।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै॥ ९॥
अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः। तेनाहं भूरि चाकन॥ १०॥
अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु। सोमपेयं सुखो रथः॥ ११॥
अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः। उभा ता बस्रि नश्यतः॥ १२॥

१८ अनुवाक्। १२१ सूक्त। इन्द्र देवता है। त्रिष्टुप् छन्द है।
कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन्।
प्र यदानड्विश आहर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः॥ १॥

---

७ तुमने महान् धन दान किया है तथा उसे फिर लुप्त कर डाला है। गृह-दातृद्वय, तुम हमारे रक्षक बनो। पापी वृक वा तस्करसे हमारी रक्षा करो।

८ किसी शत्रुके सामने हमें नहीं अर्पण करना। हमारे घरसे दुग्धवती गायें, बछड़ोंसे अलग होकर, किसी अगम स्थानको न चली जायँ।

९ जो तुम्हें उद्देश्य कर स्तुति करता है, वह मित्रोंकी रक्षाके लिये धन पाता है। हमें अन्नयुक्त धन प्रदान करो तथा धेनु-युक्त अन्न दो।

१० मैंने अन्नदाता अश्विद्वयका अश्व-रहित, परन्तु गमन-समर्थ, रथ प्राप्त किया है। उसके द्वारा मैं अनेक प्रकारके लाभ प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ।

११ धन-पूर्ण रथ, मैं सामने ही हूँ। मुझे समृद्ध करो। इस सुखकर रथको अश्विद्वय, स्तोताओंके सोम-पान स्थानपर ले जाते हैं।

१२ मैं प्रातःकाल स्वप्नसे घृणा करता हूँ और जो धनी दूसरेका प्रतिपालन नहीं करता, उसे भी घृणित समझता हूँ। दोनों शीघ्र नाश प्राप्त होते हैं।

---

१ मनुष्योंके पालन-कर्ता और गो-रूप धनके दाता इन्द्र कब देवाभिलाषी अङ्गिरा लोगोंकी स्तुति सुनेंगे? जिस समय वह गृहपति यजमानके ऋत्विकोंको सामने देखते हैं, उस समय वह यज्ञमें यजनीय होकर प्रभूत उत्साहसे पूर्ण होते हैं।

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून्।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद्द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम्।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥
तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥
अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥
स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात् सूरो अध्वरे परि रोधना गोः।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥
अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम्।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥

२ उन्होंने स्थिर-रूपसे आकाशको धारण किया है। वह असुरों द्वारा अपहृत गायोंके नेता हैं। वह विस्तीर्ण प्रभासे युक्त होकर सारे प्राणियोंके द्वारा सेवनीय हैं और खाद्यके लिये जीवन-धारक वृष्टि-जल प्रेरित करते हैं। महान् सूर्यरूप इन्द्र, अपनी पुत्री उषाके अनन्तर उदित होते हैं। उन्होंने अश्वकी स्त्रीको गौका माता किया था अथवा घोड़ीसे गाय उत्पन्न की थी।

३ वह अरुणवर्ण उषाको रंजित करके हमारा उच्चारित पुरातन मंत्र सुनें। वह प्रति दिन अङ्गिरा गोत्रवालोंको अन्न देते हैं। उन्होंने हननशील वज्र बनाया है। वह मनुष्यों, चतुष्पदों और द्विपदोंके हितके लिये, दृढ़रूपसे, आकाश धारण करते हैं।

४ इस सोमपानसे हृष्ट होकर तुमने स्तुति-पात्र और पणि द्वारा छिपायी हुई गौओंको यज्ञार्थ दान किया था। जिस समय त्रिलोक-श्रेष्ठ इन्द्र युद्धमें रत होते हैं, उस समय वह मनुष्योंके क्लेश-दाता पणि असुरका द्वार, गौओंके निकलनेके लिये, खोल देते हैं।

५ क्षिप्रकारी तुम्हारे लिये जगत्के पालक पिता द्यौ और माता पृथिवी समृद्धिशाली और उत्पादन-शक्ति-युक्त दुग्ध लाये थे। जिस समय उनने दुग्धवती गौओंका विशुद्ध धन-युक्त दुग्ध तुम्हारे सामने रखा था, उस समय तुमने पणिका द्वार खोल दिया था।

६ इस समय इन्द्र प्रकट हुए हैं। वह उषाके समीपमें विद्यमान सूर्यकी किसी तरह दीप्तिमान् हुए हैं। यह शत्रु-विजयी इन्द्र हमें मत्त या प्रसन्न करें। हम भी हव्य अर्पण करके, स्तुति-भाजन सोम-रसको, पात्र द्वारा, यज्ञ-स्थानमें सिञ्चित करके, उसी सोम-रसका पान करें।

७ जिस समय सूर्य-किरण द्वारा प्रकाशित मेघमाला जल-वर्षण करनेको तैयार होती है, उस समय प्रेरक इन्द्र, यज्ञके लिये, वृष्टिके आवरणका निवारण करते हैं। इन्द्र, जिस समय तुम सूर्य-रूपसे कर्मके दिनमें किरण दान करते हो, उस समय गाड़ीवान्, पशु-रक्षक और क्षिप्रगामी अपने-अपने कार्यमें सिद्धि प्राप्त करते हैं।

८ जिस समय ऋत्विक् लोग तुम्हारे वर्द्धनके लिये मनोहर, प्रसन्नकर, बलदायक और तुम्हारे उपभोग्य सोमसे, प्रस्तर द्वारा, रस निकालते हैं, उस समय हर्ष-दायक सोम-रसके उपभोक्ता अपने हरि नामके दोनों घोड़ोंको, दश-यज्ञमें, सोमपान कराओ। तुम युद्ध-निपुण हो। हमारे धनापहारी शत्रुका दमन करो।

त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥ ९ ॥
पुरा यत् सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।
शुष्णस्य चित् परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ॥ १० ॥
अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥ १२ ॥
त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥ १३ ॥
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान्रथ्यो अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥ १४ ॥
मा सा ते अस्मत् सुमतिर्वि दसद्वाज प्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥ १५ ॥

९ तुमने ऋभु द्वारा आकाशसे लाये गये, शीघ्रगामी और लौहमय वज्रको त्वरित-गति शुष्ण असुरके प्रति फेंका था। बहुलोक-पूजा पात्र, उस समय तुम, कुत्स ऋषिके लिये, शुष्णको अनेकानेक हननशील अस्त्रों द्वारा मारते हुए घेरते हो।

१० जिस समय सूर्य अन्धकारके साथ संग्रामसे मुक्त हुए, उस समय हे वज्रधारिन्, तुमने उनके मेघ-रूप शत्रुका विनाश कर दिया। उस शुष्णका जो बल सूर्यको आच्छादित किये हुए था और सूर्यके ऊपर ग्रथित हुआ था, उसे तुमने भग्न कर दिया था।

११ इन्द्र, महान् बली और सर्व-व्यापक द्यौ और पृथिवीने वृत्र वध-कार्यमें तुम्हें उत्साहित किया था। तुमने उस सर्वत्र व्यापक और श्रेष्ठाहार-युक्त वृत्रको महान् वज्रसे, प्रवहमान जलमें, फेंक दिया था।

१२ इन्द्र, तुम मानव-बन्धु हो। तुम जिन अश्वोंकी रक्षा करते हो, उन वायु-तुल्य, शोभन और वाहक अश्वोंपर चढ़ो। कविके पुत्र उशनाने जो हर्षदायक वज्र तुम्हें दिया था, तुमने उसी वृत्र-ध्वंसक और शत्रु-नाशक वज्रको तीक्ष्ण किया है।

१३ सूर्य-रूप इन्द्र, हरि नामक अश्वोंको रोको। इन्द्रका एतश नामका घोड़ा रथका चक्का खींचता है। तुम नौका द्वारा नब्बे नदियोंके पार पहुँचकर वहां यज्ञ-विहीन असुरों या अनार्योंसे कर्त्तव्य कर्म कराओ।

१४ वज्रधर इन्द्र, तुम हमें इस दुर्दान्त दरिद्रतासे बचाओ; समीप-वर्त्ती संग्राममें हमें पापसे बचाओ। उज्ज्वल-कीर्त्ति और सत्यके लिये हमें रथ, अश्व, धन आदि दान करो।

१५ धनके लिये पूजनीय इन्द्र, हमारे पाससे अपना अनुग्रह नहीं हटाना। हमें अन्न पुष्टि दे। मघवन्, तुम धनपति हो। हमें गौ दो। हम तुम्हारी पूजामें तत्पर हैं। हम पुत्र, पौत्र आदिके साथ धन प्राप्त करें।

अष्टम अध्याय समाप्त

प्रथम अष्टक समाप्त

द्वितीय अष्टक छप रहा है

"सानुवाद ऋग्वेद-संहिता"

ऐसा ग्रन्थ आपने नहीं देखा होगा

अत्यन्त सरल

प्र

मूलके

अ

हिन्दूजातिकी

वेदोंकी ज्ञान-गङ्गा

आठ आने पेशगी

स्थायी ग्र

इस कार्यके लिये संसार भ ... न्ध और

आलोचना-ग्रन्थ छपे हैं ... री

विद्वान् और सिद्ध

८) रु० वार्षिक मूल

अर्थ

उस स

प्रस्तर द्वारा,

सोमनाथ कार्या